श्रीमद्भगवद्गीता
Part III
A ९८ 13.

ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (परं स्थानमुपैति चाद्यम्) हे अर्जुन ! सो ध्यानपरायण पुरुष केवल तिन स्वर्गादिक फलोंकाही अतिक्रमण नहीं करै है किंतु सर्वतें उत्कृष्ट तथा सर्वका कारणरूप जो ईश्वरसंबंधी स्थान है तिस स्थानकूंभी प्राप्त होवैहै। अर्थात् सो ध्याननिष्ठ उपासक पुरुष सर्वके कारणरूप ब्रह्मकूंभी प्राप्त होवैहै इति। तहां इस अष्टम अध्यायकरिकै श्रीभगवान्नैं ध्येयत्वरूपकरिकै तत्पदार्थका निरूपण कर्‍या ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमाध्यायप्रारंभः।

तहां पूर्व अष्टम अध्यायविषे यह वार्त्ता कथन करीथी। सुषुम्नानाम मूर्द्धन्या नाडी है गमनका द्वार जिसविषे तथा हृदय, कंठ, भ्रुवोंका मध्य इत्यादिक स्थानोंविषे प्राणोंकी धारणा है जिसविषे तथा सर्व इंद्रियद्वारोंका संयमरूप गुण है जिसविषे ऐसा जो योग है ता योगकरिकै आपणी इच्छापूर्वक इस शरीरतैं उत्क्रमणकूं प्राप्तहुए हैं प्राण जिसके तथा अर्चिरादि मार्गकरिकै ब्रह्मलोकविषे प्राप्तिहुई है जिसकी ऐसा जो उपासक पुरुष है जिस उपासक पुरुषकूं ता ब्रह्मलोकविषे दिव्यभोगोंके भोगतैं अनंतर ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्तिकरिकै ता कल्पके अंतविषे परब्रह्मकी प्राप्तिरूप क्रममुक्तिकी प्राप्ति होवैहै इति। यह वार्त्ता पूर्व अध्यायविषे कथन करीथी। ताके विषे पूर्व यह शंका प्राप्त भईथी जो इस अधिकारी पुरुषकूं इस पूर्व उक्त प्रकारतैंही मुक्तिकी प्राप्ति होवैहै अथवा किसी अन्यप्रकारतैंभी मुक्तिकी प्राप्ति होवैहै इति। ऐसी शंकाके प्राप्तहुये ता शंकाकी निवृत्ति करणेवासतै (अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै श्रीभगवान्का वास्तवस्वरूपके विज्ञानतैं इहांही साक्षात् मोक्षकी प्राप्ति कथन करीथी। तहां तिस साक्षात् मोक्षकी प्राप्तिविषे अनन्य भगवत् भक्तिही असाधारण कारण है। यह वार्त्ताभी (पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया) इस वचनकरिकै कथन करीथी। इत्यादिक सर्व वार्ता पूर्व अष्टम अध्यायविषे निरूपण करीथी। तहां पूर्व उक्त धारणापूर्वक प्राणोंका उत्क्रमण

तथा अर्चिरादिमार्गविषे मन तथा बहुतकालका विलंब इत्यादिक क्लेशोंतैं विनाही साक्षात् मोक्षकी प्राप्तिवासतै श्रीभगवान्‌के वास्तवरूपका तथा ताके भक्तिका विस्तारतैं निरूपण करणेवासतै इस नवम अध्यायका प्रारंभ करीता है। तहां पूर्व अष्टम अध्यायविषे तौ ध्येयब्रह्मका निरूपण करिकै ता ध्येयब्रह्मके ध्यानपरायण पुरुषोंकी गति कथन करी। अब इस नवम अध्यायविषे ज्ञेयब्रह्मका निरूपण करिकै ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंकी गति कथन करीती है। तहां वक्ष्यमाण ज्ञानकी स्तुति वासतै श्रीभगवान्‌नैं प्रथम यह तीन श्लोक कथन करीतेहैं–

श्रीभगवानुवाच।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

(पदच्छेदः) इदम्। तु। ते। गुह्यतमम्। प्रवक्ष्यामि। अनसूयवे। ज्ञानम्। विज्ञानसहितम्। यत्। ज्ञात्वा। मोक्ष्यसे। अशुभात् ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! असूयातैं रहित अर्जुनके ताईं मैं यह अत्यंतगुह्य तथा विज्ञानसहित ज्ञान कथन करताहूं जिसज्ञानकूं प्राप्तहोइकै तूं संसारबंधनतैं मुक्तहोवैगा ॥ १ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! केवल महावाक्यरूप शब्दप्रमाणकरिकै जन्य तथा प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं विषय करणेहारा जो मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका ज्ञान है, जो ज्ञान पूर्वभी अनेकवार हमनै तुम्हारे प्रति कथन कऱ्याहै। तथा आगे कथन करणा है। तथा अभी इस अध्यायविषे कथन कऱ्याजावैगा। सो ज्ञान मैं परमेश्वर तुम्हारे ताईं कथन करताहूं तूं सावधान होइकै श्रवण कर। इहां (इदं तु) यावचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वअध्यायविषे कथन करेहुए सगुणब्रह्मके ध्यानतैं इस ज्ञानविषे विलक्षणताकूं कथन करै है अर्थात् यह आत्मज्ञानही साक्षात् मोक्षके प्राप्तिका साधनहै, पूर्व कथन कऱ्याहुआ ध्यान साक्षात मोक्षके प्राप्तिका साधन है नहीं। काहेतैं जैसे आत्मज्ञान अज्ञानकी निवृत्ति करैहै तैसे सो ध्यान अज्ञानकी निवृत्ति करता नहीं यातैं सो ध्यान साक्षात मोक्षके प्राप्तिका साधन नहीं है। किंतु सो ध्यान तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा इस आत्मज्ञानकूं संपादन करिकैही क्रमकरिकै ता मोक्षकूं उत्पन्न करैहै। यह

वार्त्ता पूर्व अध्यायविषे कह आयेहैं। पुनः कैसा है सो ज्ञान—गुह्यतम है अर्थात् अतिरहस्य होणेतैं सो ज्ञान गोप्य राखणेयोग्य है। अब ता ज्ञानकी गोप्यताविषे तिस ज्ञानका हेतुगर्भित विशेषण कहैं हैं (विज्ञानसहितमिति) हे अर्जुन ! कैसा है सो ज्ञान—विज्ञानसहित है अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके अपरोक्ष अनुभवपर्यंत है। याकारणतैंही सो ज्ञान गोप्य राखणेयोग्य है। ऐसा अतिरहस्यरूपभी यह ज्ञान मैं भगवान् वासुदेव तुम्हारे ताईं कथन करताहूं। अब ता अर्जुनविषे तिस ज्ञानके उपदेशकरणेकी योग्यता बोधन करणेवासतै श्रीभगवान् ता अर्जुनका विशेषण कथन करैंहैं (अनसूयवे इति) हे अर्जुन ! तूं असूयातैं रहित है यातैं इस ज्ञानके उपदेशका तूं अधिकारी है। तहां गुणोंविषे दोषदृष्टि करणी याका नाम असया है। ता असूयातैं तू रहितहै अर्थात् यह कृष्णभगवान् हमारे समीप सर्वदा आपणी ऐश्वर्यता कथनकरिकै आपणी ही स्तुति करताहै या प्रकारकी असूयातैं तूं रहित है। इहां असूयातैं रहितपणा दूसरेभी आर्जवसंयमादिक शिष्यके गुणोंका उपलक्षक है अर्थात् शिष्यके सर्व गुणोंकरिकै संपन्न तैं अर्जुनके ताईं मैं यह ज्ञानउपदेश करताहूं। शंका—हे भगवन् ! ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति करिकै हमारेकूं कौन फल होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। (यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्) हे अर्जुन ! जिस आत्मज्ञानकूं प्राप्तहोइकै तूं शीघ्रही इस सर्वदुःखोंके कारणरूप संसारबंधनतैं मुक्त होवैगा ॥ १ ॥

अब तिस आत्मज्ञानविषे अधिकारी जनोंकी अभिमुखता करावणेवासतै श्रीभगवान् पुनः तिस ज्ञानकी स्तुति करैंहैं–

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्त्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) राजविद्या। राजगुह्यम्। पवित्रम्। इदम्। उत्तमम्। प्रत्यक्षावगमम्। धर्म्यम्। सुसुखम्। कर्त्तुम्। अव्ययम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह आत्मज्ञान सर्वविद्यावोंका राजा है तथा सर्वगुह्यपदार्थोंका राजा है तथा सर्वतैं उत्तम पवित्र है तथा प्रत्यक्ष है प्रमाण जिसविषे तथा सर्वधर्मका फलरूप है तथा सुखपूर्वकही करणेकूं शक्य है तथा अक्षयफलवाला है ॥ २ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! यह आत्मज्ञान कैसा है-जितनीक लौकिक तथा शास्त्रीय विद्या हैं तिन सर्व विद्यावोंका राजा है अर्थात् तिन सर्वविद्यावोंतैं अत्यंत श्रेष्ठ है । काहेतैं यह आत्मज्ञान कार्यसहित संपूर्ण मूलअविद्याका नाश करणेहारा है । और इस आत्मज्ञानतैं भिन्न दूसरी जितनीक विद्या हैं ते विद्या तौ संपूर्ण मूलअविद्याकूं नाश करती नहीं किंतु ते विद्या तिस मूलअविद्याके किसी एकदेशकाही विरोधी होवैहै । जिस एकदेशकूं शास्त्रविषे मूलअविद्या तथा अवस्था अज्ञान इस नामकरिकै कथन कऱ्याहै । पुनः कैसा है यह आत्मज्ञान-लोकशास्त्रविषे जितनेक गुह्यपदार्थ हैं तिन सर्व गुह्यपदार्थोंका राजा है अर्थात् तिन सर्व गुह्यपदार्थोंतैंभी अत्यंत गुह्य है । काहेतैं यह आत्मज्ञान अनेक जन्मोंविषे करेहुए निष्काम पुण्यकर्मोंकारिकैही प्राप्त होवैहै । ता पुण्यकर्मतैं रहित जे पुरुष हैं ते पुरुष यद्यपि आपणी बुद्धिके बलतैं अनेक गुह्यपदार्थोंकूं जानैहैं तथापि इस आत्मज्ञानकूं ते पुरुष जानिसकते नहीं । यातैं यह आत्मज्ञान तिन सर्व गुह्य पदार्थोंतैं अत्यंत गुह्य है । पुनः कैसा है यह आत्मज्ञान-सर्वतैं उत्तम पवित्र है । काहेतैं धर्मशास्त्रविषे पापकी निवृत्ति करणेवासतै जितनेक प्रायश्चित्त कथन करे हैं ते प्रायश्चित्त इस पुरुषके सर्वपापोंकी निवृत्ति करते नहीं किंतु ते प्रायश्चित्त किसी एक पापकीही निवृत्ति करैहैं । ता प्रायश्चित्तकरिकै निवृत्त हुआभी सो एक पाप आपणे कारणविषे सूक्ष्मरूप होइकै रहैहै । जिस पापवासनातैं यह पुरुष पुनः तिस पापकरणेविषे प्रवृत्त होवैहै । यातैं ते प्रायश्चित्त सर्वतैं उत्तम पवित्र नहीं हैं । और यह आत्मज्ञान तौ अनेक सहस्रजन्मोंविषे संचय करेहुए तथा स्थूलसूक्ष्म अवस्थावाले जितनेक पाप हैं तिन सर्व पापोंका तथा तिन पापोंके कारणरूप ज्ञानका शीघ्रही नाश करै है । यातैं यह आत्मज्ञान सर्वतैं उत्तम पवित्र है अर्थात् शुद्धिकरणेहारा है । शंका-हे भगवन् ! जैसे अतिइंद्रियधर्मविषे लोकोंकूं संदेह रहैहै तैसे इस ज्ञानविषभी लोकोंकूं संदेहही रहैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए यह आत्मज्ञान आपणे स्वरूपतैं तथा फलतैं प्रत्यक्षही है इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं (प्रत्यक्षावगममिति) तहां (अवगम्यते अनेनेत्यवगमो मानम्) अर्थ यह-जिसकरिकै वस्तु जानी जावैहै ताका नाम अवगम है । इसप्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै अवगम यह शब्द प्रमाणका वाचक है और (अवगम्यते प्राप्यते इत्यवगमः फलम्) अर्थ यह-अधिकारी पुरुषोंकूं जो प्राप्त होवै ताका नाम

अवगम है। याप्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै सो अवगम शब्द फलवाचक है। तहां प्रथम अर्थविषे तौ प्रत्यक्ष है अवगम क्या प्रमाण जिसविषे ताका नाम प्रत्यक्षावगम है याप्रकारके बहुव्रीहि समासकरिकै ता वृत्तिरूप ज्ञानविषे स्वरूपतैं साक्षी प्रत्यक्षगम्यत्व सिद्ध होवैहै। और दूसरे अर्थविषे तौ प्रत्यक्ष है अवगम क्या फल जिसका ताका नाम प्रत्यक्षावगम है। याप्रकारके बहुव्रीहि समास करिकै ता वृत्तिज्ञानविषे फलतैंभी साक्षी प्रत्यक्षगम्यत्व सिद्ध होवैहै। तहां मैंने यह वस्तु जान्या है इसकारणतैं अभी हमारा इस वस्तुविषयक अज्ञान नष्टहुआ है याप्रकारका साक्षीरूप अनुभव सर्वलोकोंकूं होवैहै, सो यह साक्षीरूप अनुभव ता वृत्तिज्ञानकूं स्वरूपतैं तथा अज्ञानकी निवृतिरूप फलतैं विषय करैहै। इसप्रकार विद्वान् लोकोंके साक्षीरूप अनुभव कारिके सिद्ध हुआभी सो आत्मज्ञान स्वधर्मके प्रतिकूल नहीं है किंतु धर्म्यरूप है अर्थात् अनेकजन्मोंविषे संचय करेहुए निष्कामधर्मका फलरूप है। शंका—हे भगवन्! ऐसा आत्मज्ञान अत्यंतदुःखकारिकै संपादन होता होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं। (सुसुखं कर्तुम् इति) हे अर्जुन! ब्रह्मवेत्ता गुरुनैं कृपाकारिकै प्राप्त कऱ्या जो विचार है सो विचार है सहकारी जिसका ऐसा जो तत्त्वमसि आदिक महावाक्य है ता महावाक्य करिकै सो तत्त्वज्ञान सुखेनही संपादन करणेकूं शक्य है। सो आत्मज्ञान आपणी उत्पत्तिविषे देशकालादिकोंके व्यवधानकी अपेक्षा करता नहीं। काहेतैं सो ज्ञान केवल वस्तुप्रमाणकेही अधीन होवै है। ध्यानकी न्याईं सो ज्ञान पुरुषकी इच्छाके अधीन होता नहीं। वस्तुके साथि प्रमाणके संबंध हुएतें अनंतर ता वस्तुका ज्ञान अवश्यकरिकै उत्पन्न होवैहै। शंका—हे भगवन्! इस प्रकार विनाही आयासतैं जो आत्मज्ञानकी सिद्धि अंगीकार करोगे तौ अल्प आयासकरिकै साध्यक्रियाका अल्पही फल होवैहै महान् फल होवै नहीं। यातैं तिस आत्मज्ञानकाभी अल्पही फल होवैगा महान् फल होवैगा नहीं। जिसकारणतैं महान् आयासकरिकै साध्य जे कर्म हैं तिन कर्मोंकाही महान् फल देखणेविषे आवै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (अव्ययमिति) हे अर्जुन! यह आत्मज्ञान यद्यपि अनायासकरिकैही सिद्ध होवैहै तथापि इस आत्मज्ञानके मोक्षरूप फलका नाश होवै नहीं। यातैं यह आत्मज्ञान अव्यय है अर्थात् यह आत्मज्ञान मोक्षरूप अक्षयफलवाला है। यद्यपि अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानविषे अव्ययरूपता संभवती नहीं

तथापि जैसे श्रुतिविषे सत्यब्रह्मकी प्रापकता करिकै ज्ञानकूं सत्य कह्या है तैसे इहां श्रीभगवान्नैंभी मोक्षरूप अव्ययफलकी प्रापकता करिकै ता ज्ञानकूं अव्यय कह्या है। और अग्निहोत्रादिक कर्म यद्यपि महान् आयासकरिकै साध्य हैं तथापि तिन कर्मोंका नाशवान् फलही होवै है यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति-(यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वास्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यंतवदेवास्य तद्भवति ॥) अर्थ यह-हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षर परमात्मादेवकूं न जानिकै इस लोकविषे होम करैहै तथा यज्ञ करैहै तथा बहुत सहस्रवर्षपर्यंत तपकूं करैहै ते सर्व कर्म इस पुरुषकूं नाशवान् फलकीही प्राप्ति करैहैं। इस प्रकारतैं यह आत्मज्ञान सर्वतैं उत्कृष्ट है। यातैं इस आत्मज्ञान-विषे मुमुक्षुजनोंनैं अत्यंत श्रद्धा करणी योग्य है ॥ २ ॥

हे भगवन् ! इसप्रकार यह आत्मज्ञान जो कदाचित् अत्यंत सुगम होवै तथा सर्वतैं उत्कृष्ट होवै तथा महान् फलका हेतु होवै तौ सर्व प्राणी तिस आत्मज्ञानविषे किसवासतै नहीं प्रवृत्त होते किंतु सर्व प्राणी ता आत्मज्ञानविषे प्रवृत्त होणे चाहिये। महान् फलवाले सुगम कार्यविषे तौ सर्व लोक स्वभावतैंही प्रवृत्त होवैं हैं। यातैं ता आत्मज्ञानविषे सर्व प्राणियोंकी प्रवृत्ति हुए कोईभी प्राणी संसारी नहीं होवैगा। यातैं संसारमार्गकाही उच्छेद होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं-

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥
अप्राप्य मां निवर्त्तंते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) अश्रद्दधानाः । पुरुषाः । धर्मस्य । अस्य । परंतप । अप्राप्य । माम् । निवर्त्तन्ते । मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस आत्मज्ञानरूप धर्मकी श्रद्धातैं रहित पुरुष मैं परमेश्वरकूं न प्राप्तहोइकै मृत्युयुक्तसंसाररूपमार्गविषे निरंतर भ्रमणकरै है ॥ ३ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! यह आत्मज्ञान यद्यपि संपादनकरणेकूं अत्यंत सुगम है तथा सर्वतैं उत्कृष्ट है तथा महान् फलका हेतु है तथापि इस आत्मज्ञानविषे जो सर्व प्राणियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती ताके विषे इन प्राणियोंकी अश्रद्धाही कारण है। हे अर्जुन ! इस आत्मज्ञानरूप धर्मका जो स्वरूप है तथा साधन है

तथा फल है, ते तीनों यद्यपि शास्त्रकरिकै प्रतिपादित हैं तथापि तिनोंविषे श्रद्धाकूं नहीं करणेहारे जे पुरुष हैं अर्थात् वेदतैं विरोधी कुत्सित हेतुवोंके दर्शन करिकै दूषित अंतःकरणवाले होणेतैं जे पुरुष ता आत्मज्ञानके स्वरूप साधनफलकूं अप्रमाणरूपही मानैं हैं, तथा जे पुरुष सर्वदा पापकर्मोंकूही करणेहारे हैं, तथा जे पुरुष दंभदर्पादिक आसुरसंपदकूंही धारण करणेहारे हैं ऐसे श्रद्धाहीन पापात्मापुरुष आपणी बुद्धितैं कल्पना करेहुए उपायकरिकै यथाकथंचित् प्रयत्न करते हुएभी शास्त्रविहित प्रयत्नके अभावतैं मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होते नहीं । तथा मैं परमेश्वरकी प्राप्तिके साधनोंकूंभी प्राप्त होते नहीं । याकारणतैंही ते श्रद्धाहीन पुरुष इस मृत्युयुक्त संसाररूप मार्गविषे भ्रमण करैं हैं । अर्थात् ते पुरुष वारंवार कीटपतंगादिक नारकीय योनियोंकेविषेही भ्रमण करैं हैं ॥ ३ ॥

तहां पूर्व श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति कहणे वास्तै प्रतिज्ञा कऱ्या जो आत्मज्ञान है ता आत्मज्ञानकी विधिमुखकरिकै तथा निषेधमुखकरिकै स्तुति कथन करी । तहां प्रथम दो श्लोकोंकरिकै तौ ता आत्मज्ञानकी विधिमुख करिकै स्तुति करी । और (अश्रद्दधानाः पुरुषाः) इस तृतीय श्लोककरिकै ता आत्मज्ञानकी निषेधमुख करिकै स्तुति करी तहां जिस वस्तुकी अप्राप्तितैं जो महान् अनफलका कथन है सो कथन तिस वस्तुकी विधिमुख स्तुति होवै है और जिस वस्तुकी अप्राप्तितैं जो महान् अर्थके प्राप्तिका कथन है सो कथन तिस वस्तुकी निषेधमुख स्तुति होवै है । इस प्रकार तीन श्लोकोंतैं तिस आत्मज्ञानकी स्तुति करिकै तिस आत्मज्ञानके अभिमुख कऱ्या जो अर्जुन है तिस अर्जुनके प्रति श्रीभगवान् अब दो श्लोकों करिकै सो आत्मज्ञान कथन करैं हैं–

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) मया । ततम् । इदम् । सर्वम् । जगत् । अव्यक्तमूर्तिना । मत्स्थानि । सर्वभूतानि । न । च । अहम् । तेषु । अवस्थितः ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अव्यक्तमूर्त्तिवाले मैं परमेश्वरनैं यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै इसकारणतैं यह सर्वभूत मेरेविषे स्थितहैं और मैं परमेश्वरतौ तिनभूतोंविषे नहीं स्थितहूं ॥ ४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! भूतभौतिकरूप तथा तिन भूतभौतिकोंका भी कारण-रूप जितनाक यह दृश्य जगत् है जो जगत् मैं परमेश्वरके अज्ञानकरिकै कल्पित है सो यह सर्व जगत् मैं अधिष्ठानरूप तथा परमार्थ सत्स्वरूप परमेश्वरतैं सत्‌रूप-करिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै व्याप्त कऱ्याहै । जैसे रज्जुविषे कल्पित जे सर्प, दंड, जलधारा, माला आदिक हैं ते सर्पादिक ता रज्जुरूप अधिष्ठाननैं आपणे इदं अंशकरिकै व्याप्त कियेहैं, तैसे मैं अधिष्ठानरूप परमेश्वरनैं आपणे सत्तास्फुरण-करिकै यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै । शंका–हे भगवन् ! हमारे रथविषे स्थित जो वसुदेवके पुत्र आप हो सो आप परिच्छिन्न हो । ऐसे परिच्छिन्न आपनैं यह सर्व जगत् कैसे व्याप्त कऱ्याहै ? किंतु नहीं व्याप्त कऱ्याहै । जिसकारणतैं इस आपके कहणेविषे प्रत्यक्षप्रमाणका विरोध होवैहै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (अव्यक्तमूर्तिना इति) तहां नेत्रादिक करणोंका नहीं विषय है स्वप्रकाश अद्वितीय सत् चित् आनंदरूप मूर्ति जिसकी ताका नाम अव्यक्त-मूर्ति है । ऐसे अव्यक्तमूर्तिरूप मैं परमेश्वरनैंही यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै । और जिस हमारे इस स्थूलशरीरकूं तूं मांसमय नेत्रोंकरिकै देखताहै इस शरीरकरिकै हमनैं कोई सर्व जगत् व्याप्त कऱ्या नहीं । यातैं हमारे कहणेविषे प्रत्यक्षप्रमा-णका विरोध होवै नहीं । जिसकारणतैं मैं परमेश्वरनैं यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै तिस कारणतैंही यह स्थावरजंगमरूप सर्वभूत मैं परमेश्वरके सत्तास्फुरणरूपकरिकै सत्‌की न्याईं तथा स्फुरणकी न्याईं स्थित हैं तथापि मैं परमेश्वर तिन कल्पितभूतविषे वास्तवतैं स्थित नहींहूं । काहेतैं अकल्पितरूप जो मैं परमेश्वर हूं तथा कल्पितरूप जो यह भूत हैं तिन दोनोंका कोई संबंधही संभवता नहीं । संबंधतैं विना तिन भूतोंविषे वास्तवतैं हमारी स्थिति संभवती नहीं । या कारणतैंही वेदवेत्ता पुरुषोंनैं यह वचन कह्या है–(यत्र यदध्यस्तं तत्कृतेन गुणेन दोषेण वाऽणुमात्रेणापि न स संबध्यते ।) अर्थ यह–जिस अधिष्ठानविषे जो वस्तु कल्पित होवैहै तिस कल्पित वस्तुकृत गुणके साथि अथवा दोषके साथि अधिष्ठान किंचित्‌मात्रभी संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! सर्व विकारोंतैं रहित तथा सर्वत्र परिपूर्ण ऐसे जो आप परब्रह्म हो तिस आपकी तिन भूतोंविषे वास्तवतैं स्थिति मत होवौ परंतु ते सर्व भूत तौ आप परमे-श्वरविषे वास्तवतैंही स्थित होवैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) न। च। मत्स्थानि। भूतानि। पश्य। मे। योगम्। ऐश्वरम्। भूतभृत्। न। च। भूतस्थः। मम। आत्मा। भूतभावनः॥ ५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह सर्वभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित नहीं हैं मैं परमेश्वरके इस अद्भुत प्रभावकूं तूं देख जो मैं परमेश्वरका सच्चिदानंदस्वरूप भूतोंकूं धारणकरता हुआ तथा भूतोंकूं उत्पन्न करताहुआ भी तिन भूतोंविषे स्थित नहीं है ॥ ५ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! जैसे आकाशविषे स्थित सूर्यविषे जलके चलनादिक विकार कल्पित होवैं हैं तैसे मैं परमेश्वरविषे कल्पित जे यह सर्वभूत हैं ते सर्वभूत वास्तवतैं मैं परमेश्वरविषे हैं नहीं। हे अर्जुन ! तूं इस प्राकृत मनुष्य बुद्धिकूं परित्याग करिकै सूक्ष्म विचारदृष्टिकारिकै मैं परमेश्वरके इस योगऐश्वर्यकूं देख। अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध मायावी पुरुषका अघटित अर्थके बनावणेकी चातुर्यतारूप प्रभाव है तैसे महामायावीरूप मैं परमेश्वरके इस अघटित अर्थके बनावणेकी चातुर्यतारूप प्रभावकूं तूं देख। जो मैं परमेश्वर वास्तवतैं किसी वस्तुका आधेयरूपभी नहीं हूं। तथा किसी वस्तुका आधाररूपभी नहीं हूं। तौभी मैं परमेश्वर इन सर्व भूतोंविषे स्थित हूं। तथा मैं परमेश्वरविषे यह सर्वभूत स्थित हैं। यह मैं परमेश्वरकी एक महान् माया है। हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका जो सच्चिदानंदघन एकरस परमार्थस्वरूप है सो हमारा स्वरूपही भूतभृत् है अर्थात् सो हमारा स्वरूपही उपादान कारणतारूप करिकै तिन सर्व कार्यरूप भूतोंकूं धारण करै है। तथा पोषण करै है यातैं सो हमारा स्वरूप भूतभृत् कह्याजावै है। और सो हमारा स्वरूपही कर्त्तारूप करिकै तिन सर्वभूतोंकूं उत्पन्न करै है। यातैं सो हमारा स्वरूप भूतभावन कह्या जावै है। इस प्रकार तिन सर्वभूतोंका उपादानकारणरूप तथा निमित्तकारणरूप हुआभी सो हमारा सच्चिदानंदस्वरूप वास्तवतैं असंग अद्वितीयस्वरूप होणेतैं तिन भूतोंविषे स्थित है नहीं। अर्थात् जैसे स्वप्नद्रष्टा पुरुष वास्तवतैं तिन कल्पित स्वप्नपदार्थोंका संबंधी होवै नहीं, तैसे सो हमारा स्वरूपभी वास्तवतैं इन कल्पित भूतोंका संबंधी होवै नहीं। इहां (मम आत्मा) इस वचनविषे जो षष्ठी विभक्ति है सो भेदकी कल्पना करिकै है। जैसे

(राहोः शिरः) इस वचनविषे राहुशिरके अभेद हुए भी भेदकी कल्पना कारिकै षष्ठी विभक्ति है ॥ ५ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे श्रीभगवान्नैं यह अर्थ कथन कऱ्या। जो मैं परमेश्वरका तथा इन सर्वभूतोंका वास्तवतैं कोईभी संबंध है नहीं तौभी मैं परमेश्वर इन भूतोंविषे स्थित हूं। तथा यह सर्वभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित हैं इस भगवान्के कहणेविषे अर्जुनकी यह शंका प्राप्त भई। जो आप परमेश्वरका तथा इन भूतोंका वास्तवतैं कोई संबंध नहीं है तौ आप परमेश्वरका तथा इन भूतोंका परस्पर आधार आधेयभाव कैसे होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् वास्तवतैं परस्पर संबंधतैं रहित पदार्थोंकेभी आधारआधेयभावकूं लोकप्रसिद्ध दृष्टांतकारिकै कथन करैं हैं-

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ॥
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) यथा। आकाशस्थितः। नित्यम्। वायुः। सर्वत्रगः। महान्। तथा। सर्वाणि। भूतानि। मत्स्थानि। इति। उपधारय ॥ ६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे सर्वदिशावोंविषे गमनकरणेहारा तथा महत्परिमाणवाला तथा सदा चलनस्वभाववाला वायु आकाशविषे स्थित है तैसे यह सर्वभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित हैं इसप्रकार तूं निश्चयकर ॥ ६ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जैसे पूर्वादिक सर्व दिशावोंविषे गमन करणेहारा तथा महत्परिमाणवाला तथा उत्पत्ति स्थिति संहारकालविषे चलनस्वभाववाला वायु असंगस्वभाववाले आकाशविषे स्थित होवैहै परंतु सो वायु तिस असंग आकाशके साथि वास्तवतैं कदाचित्भी संबंधकूं प्राप्त होता नहीं। तैसे असंगस्वभाववाले मैं परमेश्वरविषे संबंधतैं विनाही यह आकाशादिक सर्वभूत स्थित हैं। तात्पर्य यह- जैसे असंगस्वभाववाले आकाशविषे वास्तवतैं वायुका संबंध नहीं भी है तौभी सो वायु आकाशविषे स्थित कह्याजावैहै। तैसे असंगस्वभाववाले मैं परमेश्वरविषे वास्तवतैं इन आकाशादिक भूतोंका संबंध नहीं भी है तौ भी यह आकाशादिकभूत मैं परमेश्वरविषे स्थित कहेजावैं हैं। इसप्रकार वास्तवतैं संबंधके अभाव एहुभी मैं परमेश्वरविषे तौ इस कल्पितप्रपंचकी आधारताकूं तथा इस कल्पितप्रपंचविषे मैं परमेश्वर-

की आधेयताकूं तूं इस आकाशके दृष्टांतसे विचार करिकै निश्चय कर इति । किंवा । (असंगो ह्ययं पुरुषः । असंगो नहि सज्जते ।) इत्यादिक अनेक श्रुतियां प्रत्यक् अभिन्न असंग ब्रह्मविषे आकाशादिक सर्वभूतोंके संबंधको निषेध करैहैं । तिन श्रुतियोंविषे अविश्वास करिकै जो वादी तिस ब्रह्मविषे आकाशादिक भूतोंके संबंधकूं अंगीकार करैहै ता वादीसैं यह पूछा चाहिये । तिस असंग ब्रह्मविषे ते भूत संयोगसंबंधकरिकै रहैहैं अथवा समवाय संबंधकरिकै रहैहैं । अथवा तादात्म्यसंबंधकरिकै रहैं हैं । तहां प्रथम संयोगपक्षविषेभी ब्रह्मका तथा भूतोंका सर्व ओरतैं संयोग है । अथवा एकदेशकरिकै संयोग है । तहां प्रथम सर्वओरतैं संयोग तौ बनै नहीं । काहेतैं ब्रह्म तौ अपरिच्छिन्न है और ते भूत परिच्छिन्न हैं । तिन परिच्छिन्नभूतोंका अपरिच्छिन्नब्रह्मके साथि सर्वओरतैं संयोग बनै नहीं । तैसे एकदेशकरिकै संयोग है यह द्वितीयपक्षभी संभवै नहीं । काहेतैं जे पदार्थ सावयव होवैं हैं तिन पदार्थोंकाही आपसमैं एकदेशकरिकै संयोग होवैहै । जैसे वृक्ष वानर दोनोंका आपसमैं एकदेशकरिकै संयोग है । और ब्रह्म तौ निरवयव है । यातैं ता निरवयव ब्रह्मका तथा तिन भूतोंका एकदेशकरिकैभी संयोग संभवै नहीं । और ता ब्रह्मविषे ते आकाशादिक भूत समवायसंबंधकरिकै रहैं हैं यह द्वितीयपक्ष जो वादी अंगीकार करै सो भी संभवता नहीं । काहेतैं गुणगुणीका तथा जातिव्यक्तिका तथा अवयवी अवयवकाही वादियोंनैं समवायसंबंध अंगीकार कऱ्याहै । सो इहां तिन भूतोंका तथा ब्रह्मका गुणगुणीभाव तथा जातिव्यक्तिभाव तथा अवयवी अवयवभाव है नहीं । यातैं ता ब्रह्मविषे तिन भूतोंकी समवायसंबंधकरिकैभी स्थिति संभवै नहीं । और ता ब्रह्मविषे ते भूत तादात्म्यसंबंध करिकै रहैहैं यह तीसरा पक्ष जो वादी अंगीकार करै सो भी संभवै नहीं । काहेतैं ब्रह्म तौ सत् चित् आनंद परिपूर्णस्वरूप है और ते आकाशादिक भूत तौ असत् जड दुःख परिच्छिन्नस्वरूप हैं । ऐसे विरुद्धस्वभावाले तिन आकाशादिक भूतोंका ता ब्रह्मविषे तादात्म्यसंबंध संभवता नहीं । यातैं पारिशेषतैं तिन आकाशादिक भूतोंका ता ब्रह्मविषे अध्यासरूपकल्पित संबंधही अंगीकार करणा होवैगा सो तौ हमारेकूंभी इष्ट है । काहेतैं जिस अधिष्ठानविषे जो पदार्थ अध्यस्त होवैहै सो कल्पितपदार्थ तिस अधिष्ठानविषे नाममात्रही होवैहै वास्तवतैं होवैनहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प तथा शुक्तिविषे कल्पित रजत नाममात्रही है । वास्तवतैं है नहीं । तैसे ब्रह्मविषे अध्यस्त ते आकाशादिक भूतभी नाममात्रही हैं । वास्तवतैं

हैं नहीं । ऐसे कल्पित भूतोंके अध्यासरूप संबंधके हुएभी ता अधिष्ठानब्रह्मकी स्वाभाविक असंगरूपता निवृत्त होवै नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्याहै । पूर्व अष्टम अध्याय विषे (किं तद्ब्रह्म) अर्थ यह—सो ब्रह्म कौन है इस प्रश्नका (अक्षरं परमं ब्रह्म) अर्थ यह—अक्षरनामा शुद्ध त्वंपदार्थही निरुपाधिक ब्रह्म है यह उत्तर कथन कऱ्या था । सो निरुपाधिक ब्रह्म ही इहां (मया ततमिदं सर्वम्) इत्यादिक श्लोकोंकारिकै प्रतिपादन कऱ्या है । अब तिस निरुपाधिक ब्रह्मका अक्षरनाम जीवके साथि अभेदकूं दृष्टांतकारिकै कथन करैं हैं (यथाकाशस्थितः इति) इहां (वायुः) इस शब्दकारिकै सूत्रात्माका ग्रहण करणा । काहेतैं (वायुर्वै गौतमसूत्रम्) इस श्रुतिविषे ता सूत्रात्माकूं वायुनाम कारिकै कथन कऱ्याहै । कैसा है सो सूत्रात्मारूप वायु—सर्वत्रग है अर्थात् समष्टिलिंगदेहरूप होणेतैं सर्वत्र व्यापक है । पुनः कैसा है सो वायु—महान् है अर्थात इस बाह्यवायुतैं विलक्षण है । ऐसा सूत्रात्मारूप वायु जैसे नित्यही स्वकारणीभूत अव्याकृतनामा आकाशविषे स्थित है । इहां (नित्यम्) इस शब्दकारिकै ता सूत्रात्माका तीन कालविषे ता अव्याकृतनामा आकाशके साथि संबंध कथन कऱ्या, तैसे यह सर्व भूत मैं परमेश्वरविषे स्थित हैं । इहां भूतशब्दकारिकै उपाधितैं रहित त्वंपदार्थरूप जीवचेतनका ग्रहण करणा । सो जीवचेतन यद्यपि वास्तवतैं एकही है, तथापि लोकदृष्टिकारिकै श्रीभगवान्नैं ता जीवचेतनका बहुतपणा कथन कऱ्याहै । तात्पर्य यह—जैसे सर्वकार्य आपणी उत्पत्तितैं पूर्व तथा नाशतैं अनंतर तथा आपणी स्थितिकालविषे आपणे उपादानकारणविषेही अभेदरूपकारिकै स्थित होवैं हैं, तैसे यह सर्व जीव अंतःकरणादिक उपाधिकी उत्पत्तितैं पूर्व तथा उपाधिके नाशतैं अनंतर तथा मध्यविषे तिस परब्रह्मतैं भिन्न नहीं हैं किंतु अभिन्नही हैं । जैसे घटाकाश घटरूप उपाधिकी उत्पत्तितैं पूर्व तथा घटरूप उपाधिके नाशतैं अनंतर तथा ता घटरूप उपाधिके विद्यमानकालविषे महाकाशतैं भिन्न नहीं है किंतु सो घटाकाश तीनोंकालविषे महाकाशरूपही है । तैसे यह जीवभी तीनोंकालविषे परब्रह्मरूपही है । तहां श्रुति–(अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि) अर्थ यह—यह प्रत्यक् आत्मा ब्रह्मरूप है और मैं ब्रह्मरूप हूं ॥ ६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे इस प्रपंचकी उत्पत्तिकालविषे तथा स्थितिकालविषे ता प्रपंचके साथि असंग आत्माका संबंध कथन कऱ्या । अब प्रलयकालविषेभी ता प्रपंचके साथि असंग आत्माके असंबंधकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् ॥
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) सर्वभूतानि । कौंतेय । प्रकृतिम् । यांति । मामिकाम् । कल्पक्षये । पुनः । तानि । कल्पादौ । विसृजामि । अहम् ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! प्रलयकालविषे यह सर्वभूत मैं परमेश्वरकी शक्तिरूप जा त्रिगुणात्मक प्रकृतिकूं प्राप्त होवैंहैं पुनः सृष्टिकालविषे मैं परमेश्वर तिनं भूतोंकूं उत्पन्न करूंहूं ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी शक्तिरूपकरिकै कल्पना करीहुई जा त्रिगुणात्मक माया है जा माया (मायां तु प्रकृतिं विद्यात्) इस श्रुतिनैं सर्व जगत्को प्रकृतिरूप करिकै कथन करीहै, ऐसी कारणरूप माया प्रकृतिकूंही ते आकाशादिक सर्व भूत प्रलयकालविषे प्राप्तहोवैं हैं अर्थात् ते आकाशादिक सर्वभूत ता प्रलयकालविषे आपणे कारणभूत मायानामा प्रकृतिविषेही सूक्ष्मरूपकरिकै लय भावकूं प्राप्त होवैं हैं । हे अर्जुन ! जे आकाशादिक सर्व भूत प्रलयकालविषे ता प्रकृतिविषे अविभागकूं प्राप्त हुए थे तिन आकाशादिक भूतोंकूंही मैं सर्वशक्तिसंपन्न सर्वज्ञ परमेश्वर सृष्टिकालविषे भिन्नभिन्न करिकै उत्पन्न करूंहूं ॥ ७ ॥

तहां परमेश्वरकी यह आकाशादिक प्रपंचकी सृष्टि किस प्रयोजनवासतै है । तिस परमेश्वरकेही भोगवासतै है अथवा अन्य किसीके भोगवासतै है। तहां परमेश्वरके भोगवासतै तौ यह सृष्टि संभवती नहीं, काहेतैं सर्वका साक्षीरूप तथा चैतन्यमात्ररूप जो परमेश्वर है ता परमेश्वरविषे सुखदुःखका भोक्तापणा संभवै नहीं । जो कदाचित् परमेश्वरविषेभी सुखदुःखका भोक्तापणा अंगीकार करिये तौ तिस परमेश्वरविषेभी अस्मदादिक जीवोंकी न्याई संसारीपणाही प्राप्त होवैगा । यातैं ता परमेश्वरविषे ईश्वरपणा नहीं रहैगा। काहेतैं जिसविषे संसारीपणा रहैहै तिसविषे ईश्वरपणा रहै नहीं । और जिसविषे ईश्वरपणा रहै है तिसविषे संसारीपणा रहै नहीं। यातैं परमेश्वरके भोगवासतै तौ यह सृष्टि संभवती नहीं । और परमेश्वरतैं अन्य किसी भोक्तावासतै यह सृष्टि है यह दूसरा पक्षभी संभवता नहीं । काहेतैं (नान्योतोऽस्ति द्रष्टा) इत्यादिक श्रुतियोंनैं तिस परमेश्वरतैं भिन्न दूसरे चेतनका अभावही कथन कर्याहै । और जो कोई यह कहै

तिस परमेश्वरतैं जीव चेतन भिन्न है सो कहणाभी संभवता नहीं । काहेतें (अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि) इत्यादिक श्रुतियोंनैं तिस परमेश्वरकी ही सर्वत्र जीवरूपकरिकै स्थिति कथन करीहै । याकारणतैंही (तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादिक महावाक्य इस जीवकूं ब्रह्मरूपकरिकै कथन करैं हैं । यातैं तिस परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोई चेतन है नहीं जो इस जगत्का भोक्ता होवै । यद्यपि तिस चैतन्यस्वरूप परमेश्वरतें जडपदार्थ भिन्न है तथापि तिन जडपदार्थोंविषे सुखदुःखका भोक्तापणाही संभवता नहीं किंवा ते सर्व जड-पदार्थ भोग्यरूपही हैं । तिन पदार्थोंकूं जो भोक्ता मानिये तौ भोक्ता भोग्य यह भेद सिद्ध नहीं होवैगा । यातें तिन जडपदार्थोंके भोगवासतै भी यह सृष्टि संभवती नहीं । किंवा जैसे यह सृष्टि किसी भोगवासतै नहीं संभवैहै, तैसे यह सृष्टि किसीके मोक्षवासतैभी संभवती नहीं । काहेतें जो कोई बंध वास्तवतैं होवै तौ ताके मोक्षवासते यह सृष्टि संभवै है सो वास्तवतैं कोई बंधनही नहीं है । किंवा यह सृष्टि ता मोक्षका उलटा विरोधीहीहै । जो जिसका विरोधी होवै है सो तिसकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं । यातैं किसीके मोक्षवासतै भी यह सृष्टि संभवती नहीं । इसतैं आदिलैके अनेकप्रकारकी अनुपपत्तियां इस सृष्टिविषे प्राप्त होवैं हैं । ते अनुपपत्तियांही इस सृष्टिविषे मायामयत्वकी सिद्धि करैंहैं । यातैं ते अनुपपत्तियां हम सिद्धांतियोंकूं प्रतिकूल नहीं हैं किंतु अनुकूलहीहैं इसी कारणतैंही ते अनुपपत्तियां परिहारकरणेकूं योग्य नहीं हैं । इसी सर्व अभिप्राय करिकै श्रीभगवान् इस प्रपंचविषे मायामयत्व हेतुतैं मिथ्यात्व सिद्धकरणेका आरंभ तीन श्लोकोंकरिकै करैंहैं-

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनःपुनः ॥
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) प्रकृतिम् । स्वाम् । अवष्टभ्य । विसृजामि । पुनः । पुनः । भूतग्रामम् । इमम् । कृत्स्नम् । अवशम् । प्रकृतेः । वशात् ॥८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर आपणी मायारूप प्रकृतिकूं आश्रयण-करिकै तिस मायाके प्रभावतैं उत्पन्नहुए इस संपूर्ण आकाशादिक भूतोंके समु-दायकूं पुनः पुनः उत्पन्न करूंहूं ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे कल्पित तथा मैं परमेश्वरके अधीन ऐसी जा मायानामा अनिर्वचनीय प्रकृति है तिस आपणी प्रकृतिकूं आश्रयकरिकै अर्थात् ता प्रकृतिकूं आपणी सत्तास्फूर्तिकी प्राप्तिद्वारा दृढकरिकै मैं मायावी परमेश्वर प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै सिद्ध इस आकाशादिक भूतोंके समुदायरूप प्रपंचकूं जीवोंके कर्मोंके अनुसार विविधप्रकारतैं उत्पन्न करूंहूं । अर्थात् जैसे स्वप्नद्रष्टा पुरुष स्वप्नप्रपंचकूं कल्पनामात्रकरिकै उत्पन्न करै है, तैसे मैं परमेश्वरभी इस आकाशादिक प्रपंचकूं कल्पनामात्रकरिकै उत्पन्न करूंहूं । कैसा है यह आकाशादिक भूतोंका समुदाय—प्रकृतिके वशतैं जायमान है अर्थात् मायारूप प्रकृतिका जो अविद्यादिक पंचक्लेशोंका कारणीभूत आवरणविक्षेप-शक्तिरूप प्रभाव है तिस प्रभावतैं उत्पन्न हुआहै इति । और किसी टीकाविषे तौ (अवशं प्रकृतेर्वशात्) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै । आपणे स्वभावका नाम प्रकृति है । ता स्वभावरूप प्रकृतिके वशतैं यह प्रपंच अवश है अर्थात् रागद्वेषादिकोंके अधीन है । और अन्य किसी टीकाविषे इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश यह पंचक्लेश इहां प्रकृति-शब्दकरिकै ग्रहण करणे । ता अविद्यादिपंचक्लेशरूप प्रकृतिके वशात् कहिये स्वभा-वतैं यह भूतसमुदाय अवश है अर्थात् अस्वतंत्र है ॥ ८ ॥

जिसकारणतैं इस जगत्की सृष्टि स्थिति आदिक कर्म स्वप्नकी न्याईं मिथ्याभूत ही हैं तिस कारणतैं ते सृष्टिआदिक कर्म स्वप्नद्रष्टा पुरुषकी न्याईं मैं परमेश्वरकूं बंधायमान करते नहीं इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

न च मां तानि कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) न । च । माम् । तानि । कर्माणि । निबध्नंति । धनंजय । उदासीनवत् । आसीनम् । असक्तम् । तेषु । कर्मसु ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! उदासीनपुरुषकी न्याईं स्थित तथा तिन कर्मोंविषे आ-सक्तितैं रहित मैं परमेश्वरकूं ते सृष्टिआदिक कर्म नहीं बंधायमान करते ॥ ९ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जैसे मायावीपुरुष आपणी मायाकरिकै अनेक पदार्थों-की सृष्टि स्थिति लयकूं करै है परंतु ते सृष्टिस्थितिलयरूप कर्म तिस मायावीपुरुषकूं

बंधायमान करते नहीं । और जैसे स्वप्नद्रष्टा पुरुष स्वप्नविषे अनेक पदार्थोंकी सृष्टि स्थिति लयकूं करैहै परंतु ते सृष्टिस्थितिलयरूप कर्म तिस स्वप्नद्रष्टा पुरुषकूं बंधायमान करते नहीं, तैसे मैं परमेश्वरभी आपणी मायाशक्तिके वशतैं इस आकाशादिक प्रपंचकी सृष्टि स्थिति लयकूं करूंहूं परंतु ते सृष्टिआदिक कर्म मैं परमेश्वरकूं बंधायमान करते नहीं । अर्थात् ते सृष्टिआदिक कर्म अनुग्रहकरिकै मैं परमेश्वरकूं सुकृतका भागी नहीं करैहैं तथा निग्रहकरिकै हमारेकूं दुष्कृतका भागी नहीं करैहैं । जिसकारणतैं ते सृष्टिआदिक कर्म स्वप्नकी न्याईं मिथ्याभूत ही हैं । शंका—हे भगवन् ! ते सृष्टिआदिक कर्म आपकूं किसवासतै नहीं बंधायमान करते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके विषे हेतु कहैं हैं (उदासीनवदासीनमिति) हे अर्जुन ! परस्पर विवाद करणेहारे दो पुरुषोंके जय अजयरूप कर्मके संबंधतैं रहित तथा दोनोंकी उपेक्षा करणेहारा जो कोई उदासीन पुरुष है सो उपेक्षक उदासीन पुरुष जैसे तिन विवाद करता पुरुषोंके जय अजयकृत हर्षविषादतैं रहित हुआ निर्विकाररूपतैं स्थित होवैहै, तैसे मैं असंग परमेश्वरभी सर्वदा निर्विकाररूप करिकै स्थित हूं । यद्यपि इहां परमेश्वररूप दार्ष्टांतिकविषे उदासीनपुरुषरूप दृष्टांतकी न्याईं विवाद करणेहारे दोनोंका अभाव है, तथापि ता दृष्टांतविषे तथा दार्ष्टांतिकविषे उपेक्षकपणा समानही है । ता उपेक्षकपणेमात्रकूं लैके इहां (उदासीनवत्) इस वचनके अंतविषे वत् यह प्रत्यय कथन कऱ्याहै । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमेश्वर उदासीनपुरुषकी न्याईं हर्षविषादादिक विकारोंतैं रहित हुआ स्थित हूं, तिस कारणतैं मैं परमेश्वर तिन सृष्टिआदिक कर्मोंविषे असक्त हूं अर्थात् मैं इस कर्मकूं करताहूं तथा मैं इस कर्मके फलकूं भोगौंगा याप्रकारके कर्तृत्वअभिमानरूप तथा फलकी अभिलाषारूप संगतैं रहित हूं । याकारणतैंही मैं परमेश्वरकूं ते सृष्टि आदिक कर्म बंधायमान करते नहीं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ बोधन कऱ्या । जैसे कर्तृत्वअभिमानतैं रहित तथा फलकी इच्छातैं रहित मैं परमेश्वरकूं ते सृष्टिआदिक कर्म बंधायमान करते नहीं तैसे दूसराभी जो कोई अधिकारी पुरुष ता कर्तृत्वअभिमानतैं तथा फलकी इच्छातैं रहित होइकै कर्मोंकूं करैहै तिस पुरुषकूंभी ते लौकिक वैदिक कर्म बंधायमान करते नहीं । ता कर्तृत्वअभिमान तथा फलकी इच्छा दोनोंके विद्यमान हुएही यह मूढ पुरुष कोशकारजंतुकी न्याईं तिन कर्मोंकरिकै बंधायमान होवै है इति । इहां श्रीभगवाननैं स्वउपदिष्ट अर्थके धारण

करणेविषे अर्जुनके उत्साह करणेवासतै (हे धनंजय) इस संबोधनकरिकै ता अर्जुनके महान् प्रभावकूं सूचन कऱ्याहै। अर्थात् युधिष्ठिर राजाके राजसूयनामा यज्ञवासतै तूं सर्वराजावोंकूं जीतिकरिकै धनकूं ले आवता भयाहै। याकारणतैं तुम्हारा धनंजय यह नाम हुआहै। ऐसे महान् प्रभाववाला तूं अर्जुन है इति। और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्याहै। शंका–हे भगवन्! इस लोकविषे कोई प्राणी सुखी है, कोई प्राणी दुःखी है, कोई धनी है, कोई दरिद्री है, कोई बुद्धिमान् है, कोई मूर्ख है, इसप्रकारकी विषमसृष्टिकूं करणेहारे आप ईश्वरकूं विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति अवश्यकरिकै होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (न च मां तानि कर्माणि इति) हे अर्जुन! ते विषमसृष्टिरूप कर्म मैं परमेश्वरकूं बंधायमान करते नहीं। तिसविषे हेतु कहैं हैं (उदासीनवदासीनमिति) हे अर्जुन! जैसे मेघ किसी बीजोंविषे रागकूं तथा किसी बीजोंविषे द्वेषकूं नहीं करिकै उदासीन हुआ जलकी वृष्टि करै है। आगेतैं तिन तिन बीजोंके अनुसार भिन्नभिन्न फल उत्पन्न होवैं हैं। तैसे मैं परमेश्वरभी पुण्यवान् पुरुषोंविषे रागकूं नहीं करताहुआ तथा पापी पुरुषोंविषे द्वेषकूं नहीं करताहुआ इस जगत्कूं उत्पन्न करताहूं। आगेतैं ते प्राणी आपणे आपणे पुण्यपापकर्मके अनुसार तिसतिस सुखदुःखादिरूप भिन्नभिन्न फलकूं प्राप्त होवैंहैं। यातैं मैं परमेश्वरकूं विषमतादोषकी प्राप्ति तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ ९ ॥

हे भगवन्! पूर्व आपनैं (भूतग्रामं सृजामि) इस वचनकरिकै आपणेकूं सर्वभूतोंका कर्त्तापणा कथन कऱ्या। और (उदासीनवदासीनम्) इस वचनकरिकै आपणेकूं उदासीनपणा कथन कऱ्या सो यह दोनों आपके वचन परस्पर विरुद्ध अर्थके बोधक होणेतैं असंगत हैं। काहेतैं जिसविषे कर्त्तापणा रहैहै तिसविषे उदासीनपणा रहै नहीं। और जिसविषे उदासीनपणा रहैहै तिसविषे कर्त्तापणा रहै नहीं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् इस प्रपंचविषे पुनः मायामयत्वकूंही कथन करैं हैं–

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ॥
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) मया। अध्यक्षेण। प्रकृतिः। सूयते। सचराचरम्। हेतुना। अनेन। कौंतेय। जगत्। विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! प्रकाशरूप मैं परमेश्वरनैं प्रकाशित करीहुई मायारूप प्रकृतिही इस चरअचरसहित जगत्कूं उत्पन्नकरैहै इसी प्रकाशत्व निमित्तकरिकै यह जगत् विविधप्रकारतैं परिवर्त्तमान होताहै ॥ १० ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! केवल द्रष्टामात्रस्वरूप तथा सर्वविकारोंतैं रहित तथा आपणी समीपतामात्रकरिकै सर्वका नियंता तथा सर्वप्रकाशक ऐसा जो मैं परमेश्वरहूं, तिस मैं परमेश्वरनैं प्रकाशित करीहुई जा मायारूप प्रकृति है। कैसी है सा प्रकृति, सत्त्व रज तम यह तीन गुणस्वरूप है। तथा जा प्रकृति सत्‌रूपकरिकै तथा असत्‌रूपकरिकै तथा सत्असत् उभयरूपकरिकै कथन करी जाती नहीं । ऐसी मायारूप प्रकृतिही इस स्थावरजंगमरूप सर्व जगत्कूं उत्पन्न करैहै। जैसे मायावी पुरुषतैं प्रवृत्त करीहुई माया कल्पित गजतुरंगादिक पदार्थोंकूं उत्पन्न करैहै, तैसे मैं परमेश्वरनैं प्रकाशित करीहुई सा मायाही इस कल्पित जगत्कूं उत्पन्न करैहै । मैं परमेश्वर तौ तिस कार्यसहित मायाकूं केवल प्रकाशमात्रही करताहूं। ता कार्यसहित मायाके प्रकाशमात्रतैं भिन्न दूसरे किसी व्यापारकूं मैं परमेश्वर करता नहीं । हे अर्जुन ! तिस प्रकाशकत्वरूप निमित्तकरिकै यह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् विविधप्रकारतैं परिवर्त्तमान होवैहै अर्थात् यह जगत् जन्मतैं आदिलैके विनाशपर्यंत अनेक प्रकारके विकारोंकूं निरंतर प्राप्त होवैहै । यातैं (भूतग्रामं सृजामि) अर्थ यह—मैं परमेश्वर इस सर्वजगत्कूं उत्पन्न करताहूं यह जो वचन हमनैं पूर्व कथन कऱ्याथा सो तिस जगत्का कारणरूप मायाका प्रकाशकत्वमात्ररूप व्यापारकरिकै कथन कऱ्याथा । और जैसे इस लोकविषे सूर्यादिकोंके प्रकाश करिकैही सर्व कार्योंकी उत्पत्ति होवैहै परंतु ता प्रकाशकत्वमात्रकरिकै तिन सूर्यादिकोंकूं कर्त्तापणा प्राप्त होवै नहीं । तैसे ता कारणरूप मायाके प्रकाशकत्वमात्रकरिकै मैं परमेश्वरविषेभी सो कर्त्तापणा प्राप्त होवै नहीं । या अभिप्रायकरिकैही पूर्व हमनैं (उदासीनवदासीनम्) यह वचन कथन कऱ्याथा । यातैं तिन पूर्व उक्त दोनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक—(अस्य द्वैतेंद्रजालस्य यदुपादानकारणम् । अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ।) अर्थ यह—इस द्वैतप्रपंचरूप इंद्रजालका जो अज्ञानरूप उपादान कारण है, तिस अज्ञानकी प्रकाशताकरिकैही ब्रह्म जगत्का कारण कह्याजावैहै । वास्तवतैं सो ब्रह्म जगत्का कारण है नहीं इति । और किसी

टीकाविषे तौ इस श्लोकका यह अभिप्राय वर्णन कऱ्याहै । जैसे चुंबकपाषाण आपणी समीपतामात्रकरिकै लोहकूं प्रवृत्त करताहुआभी वास्तवतैं उदासीनही रहैहै, तैसे मैं परमेश्वरभी आपणी समीपतामात्रकरिकै तिस मायारूप प्रकृतिकूं जगत्की उत्पत्तिकरणेविषे प्रवृत्त करताहुआभी वास्तवतैं उदासीनही रहूंहूं । यातैं (भूतग्रामं सृजामि उदासीनवदासीनम्) इन दोनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! इसप्रकार नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव तथा सर्वप्राणियोंका आत्मारूप तथा आनंदघन तथा देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित ऐसे भी मैं परमेश्वरकूं यह अविवेकी लोक मनुष्य मानिकै आदर करते नहीं उलटे निंदा करैंहैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ॥
परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अवजानंति । माम् । मूढाः । मानुषीम् । तनुम् । आश्रितम् । परम् । भावम् । अजानंतः । मम । भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अविवेकी जन मैं परमेश्वरके सर्वभूतोंका महान् ईश्वररूप सर्वतैं उत्कृष्ट पारमार्थिकतत्त्वकूं न जानतेहुए इस मनुष्य मूर्तिकूं धारणकरणेहारे मैं परमेश्वरकूं अनादर करैं हैं ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! विचारतैं रहित जे मूढपुरुष हैं ते मूढपुरुष मैं परमेश्वरकीभी अवज्ञा करैंहैं अर्थात् ते मूढपुरुष मैं परमेश्वरकूं यह कृष्णभगवान् साक्षात् ईश्वर है याप्रकारतैं आदर करते नहीं, उलटा हमारी निंदा करतेहैं । अब तिन मूढपुरुषोंनैं करीहुई अवज्ञाविषे तिन मूढपुरुषोंकी भ्रांतिरूप हेतुकूं कथन करैंहैं (मानुषीं तनुमाश्रितम् इति) हे अर्जुन ! मनुष्यरूपकरिकै प्रतीत होती जो यह मूर्ति है तिस मूर्तिकूं मैं परमेश्वर आपणी इच्छाकरिकै भक्तजनोंके अनुग्रहवासतै ग्रहण करताभयाहूं अर्थात् मनुष्यरूप करिकै प्रतीतहुए इस देहकरिकै मैं परमेश्वर व्यवहारकूं करताहूं । याकारणतैंही यह कृष्णभी हमारे सरीखा कोई मनुष्यही है । याप्रकारकी भ्रांतिकरिकै आवृत हुआहै अंतःकरण जिनोंका ऐसे ते मूढपुरुष मैं परमेश्वरके परमभावकूं नहीं जानतेहुए अर्थात्

Fools not understanding the Lord of 5 elements and his greatness but dwelling in their own human body

मैं परमेश्वरके सर्वतें उत्कृष्टपारमार्थिक तत्त्वकूं नहीं जानतेहुए जो परमेश्वरका आदर नहीं करैंहैं तथा मैं परमेश्वरकी निंदा करैंहैं सो तिन मूढपुरुषोंविषे संभवताहीहै। हे अर्जुन! जिस हमारे परमभावकूं नहीं जानतेहुए ते मूढ पुरुष हमारी अवज्ञा करैंहैं। सो हमारा परमभाव कैसा है–सर्वभूतोंका महान् ईश्वर है अर्थात् तिन सर्वभूतोंका नियंता है ॥ ११ ॥

हे अर्जुन! इसप्रकार मैं परमेश्वरकी अवज्ञा करिकै उत्पन्न भया जो महान् पाप है ता पापकरिकै प्रतिबद्धहुई है बुद्धि जिनोंकी ऐसे ते मूढपुरुष निरंतर नरकविषेही निवास करणेकूं योग्य होवैंहैं। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं–

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ॥
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) मोघाशाः। मोघकर्माणः। मोघज्ञानाः । विचेतसः। राक्षसीम्। आसुरीम्। च। एव। प्रकृतिम्। मोहिनीम्। श्रिताः ॥१२॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! निष्फल है आशा जिनोंकी तथा निष्फल हैं कर्म जिनोंके तथा निष्फल है ज्ञान जिनोंका ऐसे विचारहीन पुरुष राक्षसी तथा आसुरी तथा मोहिनी प्रकृतिकूं ही आश्रयणकरैंहैं ॥ १२ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन! अंतर्यामी ईश्वरतैं विना केवल कर्मही हमारेकूं फलकी प्राप्ति करैंगे इसप्रकारकी निष्फलही है फलकी प्रार्थनारूप आशा जिनोंकी तिनोंका नाम मोघआशा है। तात्पर्य यह–अंतर्यामी सर्वज्ञ ईश्वरतैं विना जडकर्मोंविषे स्वतंत्र फलदेणेका सामर्थ्य है नहीं ऐसे असमर्थ कर्मोंतैंही फलके प्राप्तिकी इच्छा करणी निष्फलही है। इसीकारणतैं ही परमेश्वरतैं विमुख होणेतैं मोघ हैं क्या केवल परिश्रममात्ररूप हैं अग्निहोत्रादिक कर्म जिनोंके तिनोंका नाम मोघकर्मा है अर्थात् परमेश्वरतैं विमुख पुरुषोंके ते अग्निहोत्रादिक कर्म केवल परिश्रमकेही हेतु हैं। दूसरे किसी फलकी प्राप्ति करते नहीं। और ईश्वरका नहीं प्रतिपादन करणेहारे जे कुतर्क शास्त्र हैं तिन शास्त्रोंकरिकै उत्पन्न होणेतैं निष्फल है ज्ञान जिनोंका तिनोंका नाम मोघज्ञाना है। अर्थात् परमेश्वरका प्रतिपादन है जिनोंविषे ऐसे जे अध्यात्मशास्त्र हैं तिन शास्त्रोंके विचारतैं उत्पन्न-भया ज्ञानही इस अधिकारी पुरुषकूं फलकी प्राप्ति करैहै। और जिन शास्त्रोंविषे

परमेश्वरका प्रतिपादन नहीं है उलटा परमेश्वरका खंडन है ऐसे कुतर्कशास्त्रोंके विचारतैं उत्पन्न हुआ ज्ञान इस पुरुषकूं किंचित्मात्रभी फलकी प्राप्ति करता नहीं। यातैं सो ज्ञान निष्फलही है। अब इस पूर्वउक्त अर्थविषे हेतु कहैं हैं (विचेतसः इति) तहां परमेश्वरकी अवज्ञाकरिकै उत्पन्न भया जो महान् पाप है ता पापकरिकै प्रतिबद्ध हुआहै विवेक विज्ञान जिन्होंका तिनोंका नाम विचेतस् है ऐसे विचेतस् होणेतैंही ते मूढपुरुष मोघआशा मोघकर्मा मोघज्ञाना होवैं हैं। किंवा ते मूढपुरुष मैं परमेश्वरकी अवज्ञाके वशतैं राक्षसी प्रकृतिकूं तथा आसुरी प्रकृतिकूं तथा मोहिनी प्रकृतिकूंही आश्रयण करैंहैं। तहां शास्त्रअविहित हिंसाका हेतुभूत जो द्वेष है सो द्वेष है प्रधान जिसविषे ऐसी जा तामसी प्रकृति है ताका नाम राक्षसी प्रकृति है। और शास्त्रअविहित विषयभोगोंका हेतुभूत जो राग है सो राग है प्रधान जिसविषे ऐसी जा राजसी प्रकृति है ताका नाम आसुरी प्रकृति है। और सत्शास्त्रजन्य ज्ञानतैं भ्रष्ट करणेहारी जा प्रकृति है ताका नाम मोहिनी प्रकृति है। इहां प्रकृतिनाम स्वभावका है। इसप्रकारकी राक्षसी आसुरी मोहिनी प्रकृतिकूंही ते मूढपुरुष आश्रय करैं हैं। इसी कारणतैंही ते मूढपुरुष नरककी प्राप्तिके द्वारोंका भागीहोणेतैं निरंतर नरकयातनाकूंही अनुभवकरैं हैं। ते नरकके द्वार शास्त्रविषे यह कथन करे हैं। तहां श्लोक-(त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मदेतत्रयं त्यजेत् ॥) अर्थ यह—काम क्रोध लोभ यह तीनोंही इस पुरुषकूं नरकके प्राप्तिको द्वारभूत होवैं हैं। यातैं यहां पुरुष तिन तीनोंका परित्याग करै ॥ १२ ॥

तहां पूर्व यह वार्त्ता कथन करी। जे पुरुष परमेश्वरतैं विमुख हैं तिन पुरुषोंकी जा फलकी कामना है तथा ता फलकी कामनाकरिकै कऱ्या जो नित्यनैमित्तिककाम्यकर्मोंका अनुष्ठान है। तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानविषे उपयोगी जो शास्त्रजन्य ज्ञान है ते सर्व व्यर्थही होवैंहैं। यातैं ते पुरुष परलोकके फलतैं तथा ता फलके साधनोंतैं शून्यही होवैं हैं। तिन पुरुषोंकूं इस लोककाभी कोई फल प्राप्त होता नहीं। जिसकारणतैं ते पुरुष विवेकविज्ञानतैं शून्यहोणेतैं विचेतस् हैं। यातैं ते परमेश्वरतैं विमुख दीनपुरुष सर्वपुरुषार्थोंतैं भ्रष्ट होणेतैं सर्व प्राणियोंकूं शोचकरणेयोग्य हैं। यह सर्व अर्थ पूर्व कथन कऱ्या। तहां सर्व पुरुषार्थोंकूं प्राप्त होणेहारे तथा नहीं शोचकरणेयोग्य ऐसे कौन पुरुष हैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए एक परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्तहुए पुरुषही इसप्रकारके हैं इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) महात्मानः । तु । माम् । पार्थ । दैवीम् । प्रकृतिम् । आश्रिताः । भजंति । अनन्यमनसः । ज्ञात्वा । भूतादिम् । अव्ययम् ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दैवी प्रकृतिकूं आश्रयकरणेहारे तथा मैं परमेश्वरतैं अन्यविषे नहींहै मन जिन्होंका ऐसे महात्मा पुरुष तौ मैं परमेश्वरकूं सर्वभूतोंका कारणरूप तथा नाशतैं रहित जानिकै भजैं हैं ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! महान् है आत्मा क्या अंतःकरण जिन्होंका तिन पुरुषोंका नाम महात्माहै अर्थात् अनेक जन्मोंविषे करेहुए पुण्यकर्मोंकारिकै संस्कृत तथा क्षुद्रकामादिक विकारोंकारिकै नहीं अभिभव कऱ्याहुआ है अंतःकरण जिनोंका तिनोंका नाम महात्मा है । जिसकारणतैं ते पुरुष महात्मा हैं । तिसकारणतैंही (अभयं सत्त्वसंशुद्धिः) इत्यादिक वचनोंकारिकै आगे कथन करणी जा दैवीनामा सात्त्विकी प्रकृति है ता दैवीप्रकृतिकूं आश्रयण कऱ्या है जिन्होंने । जिसकारणतैं तिन महात्मापुरुषोंनैं दैवीप्रकृतिकूं आश्रयण कऱ्याहै तिसकारणतैंही मैं परमेश्वरतैं अन्यवस्तुविषे नहीं है मन जिन्होंका ऐसे महात्मा पुरुष तौ मैं परमेश्वरकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं सर्वजगत्का कारणरूप जानिकै तथा अविनाशिरूप जानिकै भजैं हैं । अर्थात् मैं परमेश्वरका सेवन करैं हैं । इहां (महात्मानस्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्वकथनकरेहुए मूढपुरुषोंतैं इन महात्मापुरुषोंविषे महान् विलक्षणताकूं सूचन करै है ॥ १३ ॥

हे भगवन् ! ते महात्मापुरुष आप परमेश्वरकूं किसप्रकारकारिकै भजैंहैं ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता भजनके प्रकारकूं दो श्लोकोंकारिकै कथन करैं हैं—

सततं कीर्त्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ॥
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) सततम् । कीर्त्तयंतः । माम् । यतंतः । च । दृढव्रताः । नमस्यन्तः । च । माम् । भक्त्या । नित्ययुक्ताः । उपासते ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते महात्मा पुरुष सर्वदा मैं परब्रह्मकूं कीर्त्तन करतेहुए तथा प्रयत्न करतेहुए तथा दृढव्रतवाले हुए तथा मैं परमेश्वरको नमस्कार करतेहुए तथा मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै नित्ययुक्त हुए मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैं हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ते महात्मा पुरुष सर्वकालविषे मैं परमात्मादेवकूंही कीर्त्तन करैं हैं अर्थात् सर्व उपनिषदोंकरिकै प्रतिपाद्य जो मैं निर्गुण परमात्मादेव हूं तिस मैं निर्गुणस्वरूपकूं ते महात्मा पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै वेदांतवाक्योंके विचारकरिकै कीर्त्तन करैं हैं । और ता गुरुकी समीपतातैं भिन्नकालविषे तौ प्रणवादिक मंत्रोंके जपकरिकै तथा उपनिषदोंकी आवृत्ति करिकै कीर्त्तन करैं हैं । तात्पर्य यह–ते महात्माजनमैं निर्गुण ब्रह्मकूं सर्वकालविषे वेदांतशास्त्रके अध्ययनरूप श्रवणव्यापारका विषय करैं हैं । इतनैं कहणेकरिकै श्रवणरूप साधनका निरूपण कऱ्या । अब मननरूप साधनका निरूपण करैं हैं । (यतंतः इति ।) हे अर्जुन ! पुनः ते महात्मापुरुष गुरुके समीप अथवा अन्यत्र वेदांततैं अविरोधितर्कोंका अनुसंधान करिकै गुरूपदिष्ट मैं परमेश्वरके निर्गुणस्वरूपके निश्चयकूं अप्रामाण्य शंकातैं रहित करणेवासतै प्रयत्न करैं हैं । अर्थात् श्रवण करिकै निश्चय करे हुए अर्थके बाध करणेहारी शंकावोंकूं निवृत्त करणेहारी तर्कोंका अनुसंधानरूप मननपरायण होवैंहैं । इतने कहणेकरिकै मननका निरूपण कऱ्या । अब ता श्रवणमननके अधिकारवासतै शमदमादिक साधनोंका निरूपण करैं हैं (दृढव्रताः इति) हे अर्जुन ! ते महात्मापुरुष तिस श्रवणमननके अधिकारकी प्राप्तिवासतै प्रथम दृढव्रत होवैं हैं । तहां दृढ हैं क्या प्रतिपक्षियोंकरिकै चलायमान करणेकूं अशक्य हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इत्यादिक व्रत जिनोंके तिनोंका नाम दृढव्रत है अर्थात् ते महात्मापुरुष शमदमादिक साधनोंकरिकै संपन्न होवैं । तहां अहिंसादिक व्रतोंविषे दृढरूपता पतंजलिभगवान्नैंभी योगसूत्रोंविषे कथन करीहै । तहां सूत्रद्वयम्–(अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः । जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम् ।) अर्थ यह–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पंच यम कहे जावैं हैं इति । ते अहिंसादिक पंच यम क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त इन तीन भूमिकावोंविषेभी संभावना करे जावैं हैं । यातैं ते पंच यम सार्वभौम कहेजावैं हैं । ऐसे अहिंसादिक पंच यम जाति, देश, काल, समय इन चारों

करिकै अनवच्छिन्न हुए महाव्रत कहे जावैं हैं । इहां जातिशब्दकरिकै ब्राह्मणत्वादिक जातिका ग्रहण करणा । और देशशब्दकरिकै तीर्थादिक उत्तमदेशका ग्रहण करणा । और कालशब्दकरिकै एकादशी अमावास्यादिक पवित्र दिनोंका ग्रहण करणा । और समयशब्दकरिकै प्रयोजनविशेषका ग्रहण करणा । तहां ब्राह्मणादिक उत्तमप्राणियोंकूं मैं नहीं हनन करोंगा याप्रकारका संकल्प करिकै जो तिन ब्राह्मणादिकोंका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा जातिकरिकै अवच्छिन्न कही जावै है, और तीर्थादिक उत्तमदेशविषे मैं किसीभी प्राणीका हनन नहीं करोंगा याप्रकारका संकल्प करिकै जो तिन तीर्थादिकोंविषे किसीभी प्राणीका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा देशकरिकै अवच्छिन्न कही जावै है । और एकादशी आदिक पवित्रदिनोंविषे मैं किसीभी प्राणीका नहीं हनन करोंगा याप्रकारका संकल्पकरिकै जो तिन एकादशी आदिकोंविषे किसीभी प्राणीका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा कालकरिकै अवच्छिन्न कही जावैहै । और यज्ञ युद्धादिक प्रयोजनतैं विना मैं किसीभी प्राणीका नहीं हनन करोंगा या प्रकारका संकल्प करिकै जो तिन यज्ञयुद्धादिक प्रयोजनतैं विना किसीभी प्राणीका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा समयकरिकै अवच्छिन्न कही जावैहै । इसप्रकार सत्यादिकोंविषेभी यथायोग्य जाति आदिकोंकरिकै अवच्छिन्नता जानिलेणी । और किसीभी देशविषे तथा किसीभी कालविषे तथा किसीभी प्रयोजनवासतै किसीभी जातिवाले जीवका मैं हनन नहीं करोंगा याप्रकारका संकल्प करिकै जो सर्वप्रकारतैं किसीभी प्राणीमात्रका नहीं हनन करणा है सा अहिंसा तिन जाति आदिक चारोंकरिकै अनवच्छिन्न कही जावै है । इसीप्रकार सत्यादिक यमोंविषेभी जाति आदिकोंकरिकै अनवच्छिन्नता जानिलेणी । इसप्रकार जातिआदिकोंकरिकै अनवच्छिन्न हुए ते अहिंसादिक यम महाव्रत कहे जावैंहैं इति । इन दोनों योगसूत्रोंका विस्तारतैं अर्थ तौ इस गीताके चतुर्थ अध्यायविषे (द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञाः) इस श्लोकके व्याख्यानविषे कथन करि आये हैं । इसप्रकारतैं दृढ हैं अहिंसादिक व्रत जिनोंके तिनोंका नाम दृढव्रत है इति । और ते महात्मा जन मैं परमेश्वरकूंही नमस्कार करैं हैं । अर्थात् तिन महात्मा जनोंका इष्टदेवतारूप करिकै तथा गुरुरूपकरिकै स्थित जो सर्व शुभगुणोंका निधानरूप मैं भगवान् वासुदेव हूं तिस मैं भगवानकूंही ते महात्माजन शरीर मन वाणीकरिकै नमस्कार करैं हैं । इहां

(नमस्यंतश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै शास्त्रांतरविषे प्रसिद्ध श्रवणादिकोंकाभी ग्रहण करणा। तहां श्लोक–(श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥) अर्थ यह– सर्वत्र व्यापक विष्णुका श्रवण करणा। तथा कीर्तन करणा। तथा स्मरण करणा। तथा ताके पादोंका सेवन करणा। तथा अर्चन करणा। तथा वंदन करणा। तथा दासभाव करणा। तथा सखाभाव करणा। तथा आपणे आत्माका समर्पण करणा इति। इस श्लोकविषे वंदनभी कथन कर्‍या है। सोईही वंदन श्रीभगवान्नैं (नमस्यंतश्च) या वचनकरिकै कथन कर्‍याहै, यातैं इस श्लोकविषे ता वंदनके सह वर्त्तणेहारे श्रवणादिकोंका तिस चकारकरिकै ग्रहण संभवैहै। यद्यपि पुष्प चंदन अक्षतादिकोंकरिकै अर्चन तथा पादोंका सेवन साक्षात् ईश्वरका संभवता नहीं तथापि सो ईश्वरही गुरुरूप होइकै शिष्यकूं उपदेश करै है यह वार्त्ता शास्त्रविषे कथन करी है। यातैं ता गुरुरूप ईश्वरका अर्चन तथा पादोंका सेवन संभवैहै। अथवा (द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च। चलं संन्यासिनो रूपमचलं प्रतिमादिकम्॥) अर्थ यह–सर्वत्र व्यापक भगवान् वासुदेवके दो रूप हैं। एक तौ चलणेहारा रूप है। दूसरा अचल रूप है। तहां संन्यासीका स्वरूप चलरूप है। और प्रतिष्ठा करी हुई पाषाणमय अथवा धातुमय प्रतिमा आदिक अचलरूप है इति। इत्यादिक शास्त्रवचनोंविषे प्रतिमाभी विष्णुका रूप कह्याहै। यातैं ता प्रतिमारूप विष्णुका अर्चन तथा पादसेवन दोनों संभवैं हैं। इसी कारणतैंही शास्त्रविषे तिन दोनों स्वरूपोंकूं नहीं नमस्कार करणेहारे पुरुषकूं नरककी प्राप्ति कथन करी है। तहां श्लोक–(देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा च दंडिनम्। प्रणिपातमकुर्वाणो रौरवं नरकं व्रजेत्॥) अर्थ यह–विष्णुशिवादिक देवतावोंकी प्रतिमाकूं देखिकै तथा दंडयुक्त संन्यासीकूं देखिकै जो पुरुष तिनोंकूं नमस्कार नहीं करै है, सो पुरुष रौरवनरककूं प्राप्त होवैहै इति। इहां (नमस्यंतश्च माम्) इस पूर्ववचनविषे जो मां यह पद दूसरीबार कथन कर्‍या है, सो सगुणरूपके बोधन करणेवासतै कथन कर्‍याहै। जो ऐसा नहीं अंगीकार करिये तौ (कीर्त्तयंतो माम्) इस वचनविषे स्थित मां शब्दकरिकैही अर्थकी सिद्धि होइसकै है। पुनः मां यह शब्द कहणा व्यर्थ होवैगा। यातैं प्रथम मां यह शब्द निर्गुणस्वरूपका बोधक है। और द्वितीय मां यह शब्द सगुणस्वरूपका

बोधक है । यह अर्थही अंगीकार करणा उचित है इति । तथा ते महात्माजन सर्वदा मैं परमेश्वर विषयक परम प्रेमरूप भक्तिकरिकै युक्त होवैं हैं । इतने कहणेकरिकै सर्व साधनोंकी पुष्कलता तथा प्रतिबंधकका अभाव दिखाया । अर्थात् जे अधिकारी पुरुष सर्वदा परमेश्वरकी भक्तिकरिकै युक्त होवैं हैं ते अधिकारी पुरुष ता भक्तिके प्रभावतैं सर्व प्रतिबंधकोंतैं रहित होइकै शीघ्रही आत्मज्ञानकूं प्राप्त होवैं हैं यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति–(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः॥) अर्थ यह–जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे परमभक्ति है। तथा जैसे परमात्मा देवविषे परम भक्ति है, तैसेही ब्रह्मउपदेष्टा गुरुविषे परमभक्ति है, तिस महात्मा अधिकारी पुरुषकूंही यह वेदांतप्रतिपादित अर्थ बुद्धिविषे प्रकाशमान होवै है इति । यह वार्त्ता पतंजलि भगवान्नैंभी योगसूत्रोंविषे कथन करीहै। तहां सूत्र–(ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यंतराभावश्च ।) अर्थ यह–तिस परमेश्वरकी अनन्यभक्तिरूप प्रणिधानतैं इस अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यक्चेतनका साक्षात्कार होवैहै । तथा सर्व विघ्नोंकाभी अभाव होवैहै । इसप्रकार ते महात्माजन शमदमादिक साधनोंकरिकै संपन्नहुए तथा वेदांतशास्त्रके श्रवणमननपरायण हुए तथा परमगुरुरूप परमेश्वरविषे परमप्रेमकरिकै तथा नमस्कारादिकों करिकै सर्वविघ्नोंतैं रहितहुए मैं परमेश्वरकूं उपासना करैंहैं । अर्थात् श्रवणमननकी परिपाकतातैं उत्तरभावी जो अनात्माकार विजातीयवृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित मैं परमेश्वरके आकार सजातीयवृत्तियोंका प्रवाह है ताकरिकै निरंतर मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैंहैं । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं तत्त्वसाक्षात्कारके समीप होणेतैं परमसाधनरूप निदिध्यासन दिखाया । इसप्रकार श्रवणादिक साधनोंकी पुष्कलताके हुए इस अधिकारी पुरुषविषे वेदांतवाक्यकरिकै जन्य तथा अखंडवस्तुविषयक तथा मैं ब्रह्मरूप हूं ऐसा साक्षात्काररूप जो आत्मज्ञान उत्पन्न होवैहै सो सर्वसाधनोंका फलभूत आत्मज्ञान संपूर्ण शंकारूपी कलंकोंतैं रहित हुआ केवल आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकै संपूर्ण अज्ञानकूं तथा ता अज्ञानके कार्यरूप सर्वप्रपंचकूं नाशकरै है । जैसे दीपक आपणी उत्पत्तिमात्रकरिकैही अंधकारकूं नाश करैहै । ता अंधकारके नाशकरणेविषे सो दीपक दूसरे किसी साधनकी अपेक्षा करता नहीं । किंतु सो दीपक आपणी उत्पत्तिविषेही तेलवर्ती आदिक साधनोंकी अपेक्षा करैहै । तैसे सो आत्मज्ञान

भी ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्तिकरणेविषे दूसरे किसी साधनकी अपेक्षा करता नहीं किंतु सो आत्मज्ञान आपणी उत्पत्तिविषेही तिन श्रवणादिक साधनोंकी अपेक्षा करैहै। यातैं सो आत्मज्ञान निरपेक्ष हुआही साक्षात् मोक्षका हेतु है । ता मोक्षकी प्राप्ति करणेविषे सो आत्मसाक्षात्कार भूमिकावोंके जयक्रमकरिकै भ्रुवोंके मध्यविषे प्राणोंके प्रवेशकी अपेक्षा करै नहीं । तथा सुषुम्नानामा मूर्द्धन्यनाडीकरिकै प्राणोंके उत्क्रमणकी अपेक्षा करै नहीं। तथा अर्चिरादि मार्गकरिकै ब्रह्मलोकविषे गमन करणेकीभी अपेक्षा करै नहीं । तथा ता ब्रह्मलोकके भोगोंके अंतकालपर्यंत विलंबकीभी अपेक्षा करै नहीं । यातैं श्रीभगवान्नैं (इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे । ज्ञानम्) इसवचनकरिकै जो पूर्व ज्ञानके उपदेशकी प्रतिज्ञा करी थी सो ज्ञान इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं कथन कऱ्याहै । और इस आत्मज्ञानका जो अशुभसंसारतैं मुक्तिरूप फल है सो फल तौ श्रीभगवान्नैं पूर्वही कथन कऱ्याथा । यातैं इहां पुनः सो फल कथन कऱ्या नहीं । इस प्रकारका गंभीर अभिप्राय श्रीभगवान्का इस श्लोकविषे है । और इस श्लोकका ऊपरला अर्थ तौ प्रगटही है ॥ १४ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे कथन करे जे ता ज्ञानके साधनरूप श्रवण मनन निदिध्यासन हैं तिन श्रवणादिकोंके करणेविषे जे पुरुष समर्थ नहीं हैं ते पुरुषभी उत्तम मध्यम मंद इस भेदकरिकै तीन प्रकारकेही होवैं हैं । ते सर्व आपणी आपणी बुद्धिके अनुसार मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ॥
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञानयज्ञेन । च । अपि । अन्ये । यजंतः । माम् । उपासते । एकत्वेन । पृथक्त्वेन । बहुधा । विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अन्य केईक उत्तम अधिकारी जन तौ ज्ञानरूप यज्ञकरिकै मेरा पूजन करतेहुए केवल एकत्वरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैं हैं तथा केईक मध्यम अधिकारी जन तौ भेदरूपकरिकैही चिंतन करैहैं तथा केईक मंद जन तौ बहुतप्रकारोंकरिकै मैं विश्वरूप परमेश्वरकूंही चिंतन करैहैं ॥ १५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन करे जे श्रवणादिक साधन हैं तिन श्रवणादिक साधनोंके अनुष्ठान करणेविषे असमर्थ जे केईक अधिकारी जन हैं ते अधिकारी जन मैं परमेश्वरकूंही ज्ञानरूप यज्ञकारिकै चिंतन करैं हैं । तिन अधिकारी जनोंविषेभी केईक उत्तम अधिकारी जन तौ केवल एकत्व ज्ञानयज्ञ-करिकैही चिंतन करैं हैं । इहां श्रुतिविषे कथन करी जा उपास्य उपासक अभेद चिंतनरूप अहंग्रह उपासना है ताका नाम ज्ञान है । तहां श्रुति-(त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि ॥) अर्थ यह-हे भगवन् ! सगुणदेवता तथा निर्गुणदेवता जो तूं है सो मैं हूं और जो मैं हूं सो तूं है। तुम्हारे हमारेविषे किंचित्मात्रभी भेद नहीं है इति । याप्रकारकी अहंग्रहउपासनारूप ज्ञानही पर-मेश्वरका यजनरूप होणेतैं यज्ञरूप है । इहां (ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये) इस वच-नविषे स्थित जो च अपि यह दो शब्द हैं तिन दोनों शब्दोंविषे प्रथम चशब्द तौ एवकारके अवधारणरूप अर्थका बोधक है । ता चशब्दका माम् इस शब्दके साथि अन्वय करणा । और दूसरा अपिशब्द तौ दूसरे साधनोंकी निवृत्तिका बोधक है । यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै । केईक अधिकारी जन तौ दूसरे साधनोंकी इच्छातैं रहित हुए उपास्यउपासकका अभेद चिंतनरूप अहंग्रह उपासनारूप ज्ञानयज्ञकारिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं । इसप्रकार अहंग्रहउपासनारूप ज्ञानयज्ञकारिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करणेहारे पुरुष उत्तम कहेजावैं हैं इति । और दूसरे केईक मध्यम अधिकारी जन तौ पृथक्त्वरूपकारिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैं हैं अर्थात् (आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः मनो ब्रह्म) इत्यादिक श्रुतियोंनैं कथनकरी जा उपास्य उपासकका भेदरूप प्रतीकउपासना है ता प्रतीकउपासनारूप ज्ञानयज्ञ-करिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैंहैं इति । और ता अहंग्रहउपासनाके करणेविषे तथा प्रतीक उपासनाके करणेविषे असमर्थ जे केईक मंदपुरुष हैं ते मंदपुरुष तौ जिसीकिसी अन्यदेवताकी उपासनाकूं करतेहुए तथा जिसीकिसी कर्मोंकूं करतेहुए तिसतिस बहुत प्रकारोंकारिकैभी विश्वरूप मैं परमेश्वरकूं ही तिसतिस देवताकी उपासनारूप ज्ञानयज्ञ-कारिकै चिंतन करैंहैं । तहां तिसतिस ज्ञानयज्ञकारिकै उत्तरउत्तर पुरुषोंकूं क्रमकारिकै पूर्वपूर्व भूमिकाका लाभ अवश्यकारिकै होवैहै । और किसी टीकाविषे तौ इस श्लोक-का यह अर्थ कथन कऱ्याहै । योगशास्त्रवाले पातंजलि तौ निर्विकल्प समाधिरूप ज्ञानयज्ञकारिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैंहैं । और औपनिषद पुरुष तौ मैं ही

भगवान् वासुदेवस्वरूप हूं या प्रकार अभेदरूप एकत्व करिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैंहैं। और विचारहीन प्राकृतजन तौ यह ईश्वर हमारा स्वामी है मैं इसका दास हूं या प्रकार पृथक्त्वरूप करिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैंहैं। और दूसरे केईक जन तौ बहुत प्रकारतैं विश्वतोमुख जैसे होवै, तैसे हमारेकूं चिंतन करैंहैं। अर्थात् जो कोई वस्तु देखणेविषे आवै है सो वस्तु भगवत्‌काही स्वरूप है। और जो जो शब्द श्रवणकरणेविषे आवैहै सो सो शब्द भगवत्‌का ही नाम है। और जो कोई वस्तु किसीकूं दियाजावैहै तथा जो कोई पदार्थ भोग्या जावैहै सो सर्व भगवत्‌विषेही अर्पण होवैहै। इसप्रकार सर्व द्वारोंकरिकै मैं परमेश्वरका ही चिंतन करैंहैं ॥ १५ ॥

हे भगवन्! जबी ते पुरुष बहुतप्रकारतैं उपासना करैंहैं तबी ते सर्व मैं परमेश्वरकूं ही चिंतन करैंहैं यह आपका वचन कैसे संगत होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकरिकै आपणेकूं विश्वरूपता वर्णन करैंहैं—

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ॥
मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अहम् । क्रतुः । अहम् । यज्ञः । स्वधा । अहम् । अहम् । औषधम् । मंत्रः । अहम् । अहम् । एव । आज्यम् । अहम् । अग्निः । अहम् । हुतम् ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही क्रतुरूप हूं तथा मैंही यज्ञरूप हूं तथा मैंही स्वधारूप हूं तथा मैंही औषधरूप हूं तथा मैंही मंत्ररूप हूं तथा मैं परमेश्वर ही आज्यरूप हूं तथा मैंही अग्निरूप हूं तथा मैंही हवनरूप हूं ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! श्रौतकर्म है नाम जिन्होंका ऐसे जे अग्निष्टोमादिककर्म हैं तिनोंका नाम क्रतु है सो क्रतुरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और स्मार्तकर्म है नाम जिन्होंका ऐसे जे वैश्वदेवादिक कर्म हैं जिन वैश्वदेवादिकोंकूं श्रुतिस्मृतियोंविषे महायज्ञरूप करिकै कथन कऱ्या है तिन वैश्वदेवादिक स्मार्तकर्मोंका नाम यज्ञ है सो यज्ञरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और पितरोंके ताईं दिया जो अन्न है ता अन्नका नाम स्वधा है सो स्वधारूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और वनस्पतिरूप ओषधियोंतैं उत्पन्न भया जो अन्न है जिस अन्नकूं यह सर्व प्राणी भोजन करते हैं ता अन्नका नाम औषध है, अथवा रोगकी निवृत्तिका उपायरूप जो भेषज है ताका नाम औषध

है सो औषधरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और स्वाहा स्वधा यह शब्द हैं अंतविषे जिन्होंके ऐसे जे वेदके वचन हैं जिन वचनोंका उच्चारण करिकै देवताओंके ताईं तथा पितरोंके ताईं हविष् दिया जावैहै तिन वेदवचनोंका नाम मंत्र है जैसे इंद्राय स्वाहा पितृभ्यः स्वधा इत्यादिक मंत्र हैं सो मंत्ररूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और तिन मंत्रोंकरिकै अग्निविषे पाया जो घृत है ता घृतका नाम आज्य है सो घृतरूप आज्य इहां व्रीहियवादिक सर्व हविषमात्रका उपलक्षण है सो घृतादि हविषरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और ता घृतादिरूप हविषके प्रक्षेपका अधिकरणरूप जे आहवनीय आदिक अग्नि हैं सो अग्निरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और ता अग्निविषे घृतादिरूप हविषका प्रक्षेपरूप जो हवन है ताका नाम हुत है सो हवनरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। इहां यद्यपि एकही अहंशब्दके उच्चारणतैं उक्त अर्थकी सिद्धि होइसकै है तथापि एकएक क्रतुयज्ञादिक शब्दके साथि जो अहंशब्दका उच्चारण कऱ्याहै सो तिन क्रतुयज्ञादिकोंविषे एकएकका ज्ञानभी मैं परमेश्वरकीही उपासना है इस अर्थके बोधन करणेवासतै उच्चारण कऱ्या है तहां इस श्लोकका यह समुदाय अर्थ सिद्ध होवैहै। जितनेक क्रिया हैं तथा ता क्रियाकी सिद्धि करणेहारे कारक हैं तथा ता क्रियाकरिकै साध्य फल हैं ते सर्व क्रिया कारक फल मैं परमेश्वरकाही स्वरूप हैं। मैं परमेश्वरतैं अतिरिक्त कोईभी क्रिया कारक फल नहीं है। इहां किसी टीकाविषे तौ क्रतुशब्दकरिकै देवताविषयक ध्यानरूप संकल्पका ग्रहण कऱ्या है और यज्ञशब्दकरिकै श्रौतस्मार्त्तकर्मका ग्रहण कऱ्याहै ॥ १६ ॥

किंच-

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः॥
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७॥

(पदच्छेदः) पिता। अहम्। अस्य। जगतः। माता। धाता। पितामहः। वेद्यम्। पवित्रम्। ओंकारः। ऋक्। साम। यजुः। एव। च॥ १७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस जगत्का पितारूप तथा मातारूप तथा धातारूप तथा पितामहरूप मैं परमेश्वरही हूं तथा वेद्यवस्तुरूप तथा पवित्रवस्तुरूप तथा ओंकाररूप तथा ऋग्वेदरूप सामवेदरूप यजुर्वेदरूप मैं परमेश्वरही हूं ॥ १७ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! यह सर्वप्राणीमात्ररूप जो जगत् है इस जगत्का उत्पन्न करणेहारा पितारूप भी मैं परमेश्वरही हूं । तथा इस जगत्कूं उत्पन्न करणेहारी मातारूपभी मैं परमेश्वरही हूं । तथा इस जगत्का धातारूपभी मैं परमेश्वरही हूं । अर्थात् इस जगत्का पोषणकरणेहारा अथवा तिसतिस पुण्यपापरूप कर्मके सुख-दुःखरूप फलके देणेहाराभी मैं परमेश्वरही हूं । और इनप्राणियोंके पिताकाभी जो पिता होवै ताका नाम पितामह है सो पितामहरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । इहां किसी टीकाविषे जगत्शब्दकरिकै आकाशादिक सर्वकार्यप्रपंचका ग्रहणकरिकै मायाविशिष्ट शबलब्रह्मकूं ता जगत्का पितारूप कह्याहै । और अव्यक्तनामा अपरा प्रकृतिकूं माता-रूपकह्याहै । और मायाउपहित अक्षरकूं पितामहरूप कह्याहै इति । और इन अधिकारी जनोंकूं जानणे योग्य जो परब्रह्म वस्तु है ताका नाम वेद्य है सो वेद्य वस्तुरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । अथवा सर्वप्राणीमात्रकरिकै जानणे योग्य जो शब्दस्पर्शरूपादि-क वस्तु हैं तिनोंका नाम वेद्य है सो वेद्यवस्तुरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और यह अधिकारी जन जिसकरिकै शुद्धिकूं प्राप्तहोवैं ताका नाम पवित्र है । ऐसे शुद्धि करणेहारे गंगास्नान गायत्रीजप आदिक हैं सो पवित्ररूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और तिस जानणेयोग्य ब्रह्मके ज्ञानका साधनरूप जो ओंकार है सो ओंकार-रूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और अग्निहोत्रादिक कर्मोंकी सिद्धिविषे उपयोगी तथा ता वेद्यब्रह्मविषे प्रमाणभूत जो ऋग्वेद है तथा सामवेद है तथा यजुर्वेद है सो ऋगादिवेदरूपभी मैं परमेश्वरहीहूं । इहां (यजुरेव च) या वचनविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अथर्वण वेदकाभी ग्रहण करणा ॥ १७ ॥

गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ॥
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) गतिः[1] । भर्त्ता[2] । प्रभुः[3] । साक्षी[4] । निवासः[5] । शरणम्[6] । सुहृत्[7] । प्रभवः[8] । प्रलयः[9] । स्थानम्[10] । निधानम्[11] । बीजम्[13] । अव्ययम्[12] ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही गतिरूप[1] हूं तथा भर्त्तारूप[2] हूं तथा प्रभुरूप[3] हूं तथा साक्षीरूप[4] हूं तथा निवासरूप[5] हूं तथा शरणरूप[6] हूं तथा सुहृत्रूप[7] हूं तथा प्रभवरूप[8] हूं तथा प्रलयरूप[9] हूं तथा स्थानरूप[10] हूं तथा निधानरूप[11] हूं तथा नाश[12]-रहित बीजरूप[13] हूं ॥ १८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! कर्मोंकरिकै जो फल प्राप्त होवैहै ता फलका नाम गति है ऐसे स्वर्गादिफल हैं सो गतिरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और सुखके साधनोंकी प्राप्तिकरिकै जो पोषण करैहै ताका नाम भर्त्ता है सो भर्त्तारूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और यह पुत्रादिक पदार्थ हमारेहीहैं याप्रकारतैं तिन पुत्रादिक पदार्थोंकूं स्वीकार करणेहारा जो स्वामी है ताका नाम प्रभु है सो प्रभुरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और सर्वप्राणियोंके शुभअशुभकर्मोंकूं जो देखणेहारा है ताका नाम साक्षी है जैसे सूर्य चंद्रमादिक हैं सो साक्षीरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और निवास करिये जिसविषे ताका नाम निवास है अर्थात् भोगके स्थानका नाम निवास है सो निवासरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। और विनाशकूं प्राप्तहोवैं दुःख जिसके समीप ताका नाम शरण है अर्थात् शरणागतकूं प्राप्तहुए जनोंके दुःखका नाश करणेहारेका नाम शरण है सो शरणरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और प्रति-उपकारकी नहीं अपेक्षा कारिकै जो उपकार करैहै ताका नाम सुहृद् है सो सुहृद्रूपभी मैं परमेश्वरही हूँ। और उत्पत्तिका नाम प्रभव है और विनाशका नाम प्रलय है और स्थितिका नाम स्थान है सो प्रभव प्रलय स्थानरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । अथवा जिसकरिकै यह कार्य उत्पन्न होवैहै ताका नाम प्रभव है अर्थात् स्रष्टाका नाम प्रभव है । और ते कार्य लयभावकूं प्राप्त होवैं जिसकरिकै ताका नाम प्रलय है अर्थात् संहर्त्ताका नाम प्रलय है। और यह कार्य स्थित होवैं जिसविषे ताका नाम स्थान है अर्थात् आधारका नाम स्थान है सो प्रभव प्रलय स्थानरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और तिसकालविषे भोगकी अयोग्यता-तैं कालांतरविषे भोगणे योग्य वस्तु स्थितकरिये जिसविषे ताका नाम निधान है अर्थात् सूक्ष्मरूप सर्ववस्तुवोंका अधिकरण जो प्रलयस्थान है ताका नाम निधा-नहै । अथवा शंखपद्मादिक निधिका नाम निधान है सो निधानरूपभी मैं परमे-श्वरहीहूं । और उत्पत्तिका जो कारण होवै ताका नाम बीज है जो बीज अव्यय है अर्थात् जैसे व्रीहियवादिक बीज विनाशकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे जो बीज विना-शकूं प्राप्त होता नहीं, ऐसा उत्पत्तिविनाशतैं रहित सर्वका कारणरूप बीजभी मैं परमेश्वरही हूं ॥ १८ ॥

किंच-

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) तपामि । अहम् । अहम् । वर्षम् । निगृह्णामि । उत्सृजामि । च । अमृतम् । च । एव । मृत्युः । च । सत् । असत् । च । अहम् । अर्जुन ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर ही तापकूं करूंहूं तथा मैं परमेश्वरही जलरूप रसकूं आकर्षण करूंहूं तथा ता रसकूं पुनः भूमिविषे परित्याग करूंहूं तथा मैं परमेश्वरही अमृतरूप हूं तथा मृत्युरूप हूं तथा सत्‌रूप हूं तथा असत्‌रूप हूं ॥ १९ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! सर्वका आत्मारूप मैं अंतर्यामी परमेश्वरही सूर्यरूप होइकै इसलोकविषे तापकूं करूंहूं और तिस तापके वशतैं सो सूर्यरूप मैं परमेश्वरही पूर्व करे हुए वृष्टिरूप रसकूं किसीक आपणी किरणावोंकरिकै कार्त्तिकादिक अष्टमासोंविषे इस पृथिवीतैं आकर्षण करूंहूं । तिसतैं अनंतर सो सूर्यरूप मैं परमेश्वरही तिस आकर्षण करेहुए रसकूं आषाढादिक च्यारिमासोंविषे किसीक आपणी किरणावोंकारिकै इस पृथिवीविषे वृष्टिरूप करिकै परित्याग करूंहूं । और देवतावोंके भक्षण करणे योग्य जो अन्न है जिस अन्नके भक्षणकरिकै ते देवता मरणकूं प्राप्त होते नहीं ता अन्नका नाम अमृत है । अथवा सर्वप्राणियोंके जीवनका नाम अमृत है सो अमृतरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और सर्वप्राणियोंकूं जो नाश करैहै ताका नाम मृत्यु है अथवा सर्वप्राणियोंका जो विनाश है ताका नाम मृत्यु है सो मृत्युरूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और जो वस्तु जिस आधारके संबंधवाला हुआ विद्यमान होवैहै सो वस्तु तिस आधारविषे सत् कह्याजावैहै । और जो वस्तु जिस आधारके संबंधवाला हुआ नहीं विद्यमान होवैहै सो वस्तु तिस अधिकरणविषे असत् कह्याजावैहै । जैसे रूप पृथिवी जल तेजरूप आधारके संबंधवाला हुआ विद्यमान होवै है । यातैं सो रूप ता पृथिवी जल तेजरूप आधारविषे सत् कह्याजावैहै । और सोईही रूप वायु आकाशरूप आधारके संबंधवाला हुआ विद्यमान होवै नहीं । यातैं सो रूप ता वायु आकाशविषे असत् कह्याजावैहै । ऐसे सत् असत् रूपता अन्यपदार्थोंविषे भी जानिलेणी । सो सत्‌रूप तथा असत्‌रूपभी मैं परमेश्वरही हूं । और किसी

टीकाविषे तौ सत्असत् या दोनों शब्दोंका यह अर्थ कऱ्याहै शास्त्रविहित साधु कर्मका नाम सत् है और शास्त्रनिषिद्ध असाधु कर्मका नाम असत् है इति। और अन्य किसी टीकाविषे तौ सत् असत् या दोनोंशब्दोंका यह अर्थ कऱ्याहै जो वस्तु इदमस्ति इदमस्ति इसप्रकारके नामरूपकरिकै कथन कऱ्या जावैहै सो वस्तु व्यक्त कह्याजावैहै। ऐसा व्यक्तरूप जो नामरूपात्मक कार्यमात्र है सो व्यक्तनामा कार्य सत् कह्याजावैहै। और ता कार्यरूप व्यक्ततैं विलक्षण तथा नामरूपका कारणरूप जो अव्यक्त है सो अव्यक्त असत् कह्याजावैहै। अथवा स्थूलरूप दृश्यका नाम सत् है और सूक्ष्मरूप अदृश्यका नाम असत् है सो सत्रूप तथा असत्रूपभी मैं परमेश्वरही हूं। इहां (सदसच्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार ता व्यक्त अव्यक्त सत् असत् दोनोंके निषेधकिये हुए ता निषेधका अवधिरूपकरिकै स्थित तथा कार्यकारणभावतैं रहित जो निर्विशेष परब्रह्म है सोभी मैंही हूं इस अर्थके सूचन करणेवासतै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। सर्वका आत्मारूप मैं परमेश्वरकूं जानिकै ते अधिकारी जन आपणे आपणे अधिकारके अनुसार पूर्व उक्त बहुत प्रकारोंकरिकै मैं परमेश्वरकूंही चिंतन करैंहैं ॥ १९ ॥

इसप्रकार अहंग्रह उपासनारूप एक भावकरिकै तथा प्रतीक उपासनारूप पृथक्भावकरिकैं तथा अन्य बहुतप्रकारोंकरिकै मैं परमेश्वरकूं निष्काम होइकै चिंतन करणेहारे जे पूर्व उक्त उत्तम मध्यम मन्द यह तीन प्रकारके अधिकारी जन हैं ते अधिकारी जन तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा क्रमकरिकै मुक्तिकूंही प्राप्त होवैंहैं। और जे पुरुष सकाम हुए किसीभी प्रकारकरिकै मैं परमेश्वरकू चिंतन करते नहीं किंतु आपणी आपणी कामनाके विषयभूत जे स्वर्गादिक विषयसुख हैं तिनोंकी प्राप्तिवासतै काम्यकर्मोंकूंही करैं हैं ते सकाम पुरुष अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्काम कर्मोंके अभावकरिकै आत्मज्ञानके श्रवणादिक साधनोंके अयोग्य हुए वारंवार जन्ममरणरूप संसारकूंही अनुभव करैं हैं। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् दोश्लोकोंकरिकै निरूपण करैंहैं—

**त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते॥
ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नंति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥**

(पदच्छेदः) त्रैविद्याः । माम् । सोमपाः । पूतपापाः । यज्ञैः । इष्ट्वा । स्वर्गतिम् । प्रार्थयंते । ते । पुंण्यम् । आसाद्य । सुरेंद्रलोकम् । अश्नंति । दिव्यान् । दिवि । देवभोगान् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे ऋगादिक तीन वेदोंकूं जानणेहारे पुरुष काम्ययज्ञों-करिकै मैं परमेश्वरकूं पूजनकरिकै सोमकूं पान करतेहुए तथा पापोंतैं रहितहुए स्वर्गकी प्राँप्तिकूं चाहतेहैं ते सकामपुरुष पुंण्यके फलरूप तिस स्वर्गलोककूं प्राप्त होइकै तिस स्वर्गलोकविषे दिव्य देवतावोंके भोगोंकूं भोगैंहैं ॥ २० ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! यज्ञविषे होताकृत जो कर्म है तथा अध्वर्युकृत जो कर्म है तथा उद्गाताकृत जो कर्म है ता कर्मके ज्ञानका हेतुभूत है ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद यह तीन विद्या जिनपुरुषोंकी तिनोंका नाम त्रैविद्य है। अथवा तिन ऋगादिक तीन विद्यावोंकूं जे भलीप्रकारतैं जानते होवैं तिनोंका नाम त्रैविद्य है। तहां तिन तीन वेदोक्तकर्मके करावणेविषे तथा आप करणेविषे जो सामर्थ्य है यहही तिन तीन वेदोंका भलीप्रकार जानणा है। ऐसे तीन वेदोंकूं जानणेहारे याज्ञिक पुरुष अग्निष्टोमा-दिक काम्ययज्ञोंकरिकै इंद्र वसु रुद्र आदित्यरूप मैं परमेश्वरकूं पूजनकरिकै अर्थात् यह परमेश्वरही इंद्रादिरूप है याप्रकारतैं इंद्रादिरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूं नहीं जानते हुएभी ते सकाम पुरुष वस्तुगतितैं तिन इंद्रादिक देवतावोंके पूजनतैं मैं अंतर्यामि-परमेश्वरकूं नहीं पूजनकारिकै जे पुरुष सोमपा होवैंहैं । इहां सोमवल्लीके रसकूं निकासिकै ता रसरूप सोमकूंही वैदिक अग्निविषे हवनकरिकै परिशेषतैं रहेहुए सोमकूं जे पुरुष पान करैंहैं तिनोंका नाम सोमपा है। तिस सोमके पानकरिकैही पूतपाप हुए अर्थात् स्वर्गभोगोंके प्रतिबंधक पापकर्मोंतैं रहितहुए जे सकाम पुरुष केवल स्वर्गलोकके प्राप्तिकी ही इच्छा करैंहैं, अंतःकरणके शुद्धिकी तथा आत्मज्ञानके प्राप्तिकी जे पुरुष इच्छा करते नहीं अर्थात् स्वर्गलोकविषे किंचित्-मात्रभी भय होता नहीं तथा स्वर्गवासी देवता अमृतभावकूं प्राप्त होतेहैं याप्रका-रके अर्थवाद वचनोंकूं श्रवणकरिकै जे सकाम पुरुष सो स्वर्गलोक हमारेकूं प्राप्त होवै याप्रकारतैं केवल स्वर्गसुखके प्राप्तिकी ही इच्छा करैंहैं, ते स्वर्गकी काम-नावाले सकाम पुरुष तिन अग्निष्टोमादिक पुण्यकर्मोंके फलरूप देवराज इंद्रके स्वर्गलोकरूप स्थानकूं प्राप्त होइकै तिस स्वर्गलोकविषे दिव्य देवभोगोंकूं भोगैं हैं। तहां जे भोग इन मनुष्योंकूं नहीं प्राप्त होवैंहैं तिन भोगोंकूं दिव्यभोग कहैं हैं।

और जे भोग केवल देवतादेहकरिकैही भोगे जावैं हैं तिन भोगोंका नाम देवभोग है। अथवा स्वर्गविषे देवतावोंनैं प्राप्त करे जे भोग हैं तिनोंका नाम देवभोग है। इहां भोगशब्दकरिकै विषयसुखका ग्रहण करणा। अथवा ता भोगशब्दकरिकै ता सुखके साधनरूप विषयोंका ग्रहण करणा। तहां विषयसुखका नाम भोग है इस पक्षविषे तौ (अश्नंति) इस पदका अनुभवंति यह अर्थ करणा। और विषयोंका नाम भोग है इस पक्षविषे तौ (अश्नंति) इस पदका भुंजते यह अर्थ करणा। अर्थात् ते सकाम पुरुष ता स्वर्गलोकविषे विषयजन्य दिव्यसुखोंकूं अनुभव करैंहैं। अथवा दिव्यविषयोंकूं भोगैं हैं ॥ २० ॥

हे भगवन् ! ता स्वर्गलोकविषे दिव्यभोगोंके भोगणेतैं तिन सकामपुरुषोंकूं किस अनिष्टकी प्राप्ति होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन सकामपुरुषोंकूं महान् अनिष्टकी प्राप्ति कथन करैंहैं—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ॥ एवं हि त्रैधर्म्यमनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) ते[१] । तम् । भुक्त्वा[२] । स्वर्गलोकम्[४] । विशालम्[३] । क्षीणे[५] । पुण्ये[६] । मर्त्यलोकम्[८] । विशंति[९] । एवम्[१०] । हि[११] । त्रैधर्म्यम्[१२] । अनुप्रपन्नाः[१३] । गतागतम्[१६] । कामकामाः[१४] । लभंते[१५] ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! ते सकाम[१]पुरुष तिस[२] विशाल[३] स्वर्गलोककूं[४] भोगिकै[५] ता पुण्यके[६] नाश[७]हुए पुनः इस[८]मनुष्यलोककूं प्राप्त[९]होवैंहैं इसप्रकार[१०]तैं प्रसिद्ध[११] वेदप्रतिपादित[१२] काम्यकर्मकूं पुनः निश्चय[१३]करतेहुए तथा[१४] दिव्यभोगोंकी कामना करतेहुए ते सकामपुरुष वारंवार गमन[१५] आगमनकूं प्राप्त[१६] होवैंहैं ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! ते सकामपुरुष तिस काम्यरूप पुण्यकर्मकरिकै प्राप्तहुए विस्तारवाले स्वर्गलोककूं भोगिकै अर्थात् आपणे आपणे पुण्यकर्मकी अधिकतातैं तिस स्वर्गलोकके अधिक सुखकूं अनुभवकरिकै तिस भोगके जनक पुण्यकर्मोंके नाश हुएतैं अनंतर तिस देवता देहके नाश हुए पुनः देहके ग्रहणवासतै इस मनुष्यलोककूं प्राप्त होवैं हैं। अर्थात् पुनः गर्भवासतैं आदिलैके अनेकप्रकारके दुःखोंकूं अनुभव करैं हैं। और जैसे पूर्व मनुष्यदेहविषे तिन कर्मीपुरुषोंनैं त्रैधर्म्यकूं

निश्चय कऱ्याथा तैसे इस मनुष्यदेहविषेभी तिस त्रैधर्म्यकूं ही निश्चय करैंहैं अर्थात् तिस त्रैधर्म्यके अनुष्ठानविषेही तत्पर होवैं हैं। तहां ऋग् यजुष् साम या तीन वेदोंकारिकै प्रतिपादित जो होताका तथा अध्वर्युका तथा उद्गाताका धर्मविशेष हैं तिन तीन धर्मोंके योग्य जे ज्योतिष्टोमादिक काम्यकर्म हैं तिन काम्यकर्मोंका नाम त्रैधर्म्य है। और (एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नाः) इस प्रकारका जो मूलश्लोकविषे पाठ होवै तौ भी इस पूर्व उक्त अर्थतैं विलक्षण अर्थ सिद्ध होवै नहीं किंतु सो पूर्व उक्त अर्थही सिद्ध होवैहै। तहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद या तीन वेदोंका नाम त्रयी है तिस तीन वेदरूप त्रयीकारिकै प्रतिपादित जो ज्योतिष्टोमादिक काम्यधर्म है ताका नाम त्रयीधर्म है। तहां होता, अध्वर्यु, उद्गाता यह तीनों नाम यज्ञकरावणेहारे ब्राह्मणोंके होवैं हैं। और अग्निष्टोम ज्योतिष्टोम यह यज्ञविशेष होवैं हैं। और (अनुप्रपन्नाः) इस वचनके आदिविषे स्थित जो अनु यह शब्द है सो अनुशब्द उत्तर उत्तर जन्मके कर्मविषयक निश्चयविषे पूर्व पूर्व जन्मके कर्मविषयक निश्चयकी अपेक्षाकूं सूचन करै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै। (त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू दक्षिणावंतो अमृतत्वं भजंते।) अर्थ यह—तीन वेदप्रतिपादित कर्मोंकूं करणेहारे पुरुष जन्ममृत्यूतैं रहित होवैं हैं और दक्षिणावाले पुरुष अमृतभावकूं प्राप्त होवैंहैं इति। इत्यादिक स्तुतिरूप अर्थवादोंके कथनपूर्वक ऋगादिक वेदोंनैं प्रतिपादनकरे जे ज्योतिष्टिमादिक काम्यकर्म हैं ते काम्यकर्मही भोगमोक्षकी प्राप्तिविषे परम कारण हैं। मनका निग्रहरूप शम तथा इंद्रियोंका निग्रहरूप दम तथा सर्वकर्मोंका संन्यास तथा आत्मज्ञान तथा ईश्वर इन सर्वोंविषे कोईभी साधन तिस भोगमोक्षका कारण है नहीं। इसप्रकारके पूर्वपूर्व जन्मके निश्चयकूं लैके उत्तरउत्तर जन्मविषेभी ते सकामपुरुष तिसी प्रकारके निश्चयकूं प्राप्त होवैंहैं। इसीकारणतैंही ते सकामपुरुष पुनः भी तिन दिव्यभोगोंकी इच्छा करतेहुए गतागतकूंही प्राप्त होवैंहैं। तहां पुण्यकर्मकारिकै इस मनुष्यलोकतैं स्वर्गलोककूं जाणा ताका नाम गत है और ता पुण्यकर्मके क्षयहुए ता स्वर्गलोकतैं पुनः इस मनुष्यलोकविषे आवणा ताका नाम आगत है अर्थात् ते सकामपुरुष काम्यकर्मोंकूं कारिकै स्वर्गकूं प्राप्त होवैं हैं। तिन पुण्य कर्मोंके क्षयहुएतैं अनंतर ता स्वर्गलोकतैं मनुष्यलोकविषे आइकै ते सकामपुरुष पूर्वसंस्कारोंके वशतैं पुनः कर्मोंकूं करैं हैं। तिन कर्मोंके

भोगवासतै पुनः स्वर्गकूं जावैं हैं । तहांतैं पुनः मनुष्यलोककूं प्राप्त होवैं हैं । इसप्रकार तिन सकामपुरुषोंकूं गर्भवासतै आदिलैके अनेकप्रकारके दुःखोंका प्रवाह निरंतर बन्यारहै है । यहही तिस सकामपुरुषोंकूं महान् अनिष्टकी प्राप्ति है इति । सा अनिष्टकी प्राप्ति मुंडकउपनिषद्की श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति— (प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनंदंति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यांति ॥) अर्थ यह—षोडश ऋत्विज यजमान ताकी स्त्री यह अष्टादश धीवर हैं चलावणेहारे जिनोंके ऐसे जो काम्यकर्मरूप अदृढप्लव हैं ते काम्यकर्मरूप प्लव इस पुरुषकूं महान् संसारसमुद्रतैं पार करते नहीं । ऐसे काम्यकर्मोंकूं आपणे श्रेयका साधन मानिकै जे मूढपुरुष हर्षकूं प्राप्त होवैं हैं ते सकाम पुरुष पुनःपुनः जरामरणकूं प्राप्त होवैं हैं इति । इस श्रुतिका अर्थ आत्मपुराणके षोडश अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । यातैं इहां संक्षेपतैं निरूपण कऱ्या है । और यद्यपि बहुत मूलपुस्तकोंविषे (एवं त्रयी धर्ममनुप्रपन्नाः) या प्रकारकाही पाठ होवैहै । तथा श्रीशंकरानंदस्वामीनैं श्रीनीलकंठ पंडितनैभी इसीप्रकारके पाठकूं अंगीकार करिकै व्याख्यान कऱ्याहै तथापि गीताभाष्यका व्याख्यान करणेहारे श्रीस्वामी आनंदगिरिनैं तथा श्रीस्वामी मधुसूदननैं (एवं हि त्रैधर्म्यमनुप्रपन्नाः) या प्रकारके पाठकूं अंगीकार करिकैही व्याख्यान कऱ्याहै । याकारणतें इस ग्रंथविषेभी (एवं हि त्रैधर्म्यमनुप्रपन्नाः) यहही पाठ राख्या है ॥ २१ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकरिकै सम्यक् ज्ञानतैं रहित सकामपुरुषोंकी गति कथन करी । अब सम्यक् ज्ञानवाले निष्कामपुरुषोंकी गतिकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) अनन्याः । चिंतयंतः । माम् । ये । जनाः । पर्युपासते । तेषाम् । नित्याभियुक्तानाम् । योगक्षेमम् । वहामि । अहम् ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे अधिकारीजन अनन्यहोइकै चिंतनकरतेहुए मैं परब्रह्मकूं साक्षात्कार करैंहैं तिनँ नित्ययुक्तपुरुषोंके योगक्षेमकूं मैं परमेश्वरही प्राप्त करूंहूं ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अनन्य कहिये भेददृष्टिका विषय नहीं विद्यमान है जिनोंकूं तिनोंका नाम अनन्य है अर्थात् जे पुरुष सर्वत्र अद्वितीय ब्रह्मकूंही देखै हैं तथा सब विषयभोगोंकी इच्छातैं रहित हैं तथा मैंही भगवान् वासुदेव सर्वात्मारूप हूं हमारेतैं भिन्न किंचित्मात्रभी वस्तु नहीं है याप्रकारका निश्चयकरिकै तिसी प्रत्यक् आत्माकूं सर्वदा चिंतन करते हुए जे साधनचतुष्टयसंपन्न विरक्त संन्यासी मैं परब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै साक्षात्कार करैं हैं ते तत्त्ववेत्ता पुरुष मैं परिपूर्णब्रह्मके अभेदभाव करिकै कृतकृत्यही होवैं हैं । ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं पुनः संसारकी प्राप्ति होवै नहीं । शंका—हे भगवन् ! अद्वैत दर्शनविषे हैं निष्ठा जिनोंकी तथा अत्यंत निष्कामता करिकै युक्त तथा आपणी इच्छापूर्वक नहीं प्रयत्न करते हुए ऐसे जे तत्त्ववेत्ता पुरुष हैं तिन तत्त्ववेत्ता पुरुषोंका इस शरीरके लक्षणवासतै योगक्षेम किसप्रकार सिद्ध होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तेषां नित्याभियुक्तनामिति) तहां निरंतर आदरपूर्वक परमेश्वरके ध्यानविषे जे तत्पर होवैं तिनोंका नाम नित्याभियुक्त है । जे ध्याननिष्ठपुरुष आपणे देहकी यात्रामात्रवासतैभी प्रयत्न करते नहीं ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके योगकूं तथा क्षेमकूं मैं परमेश्वरही प्राप्त करूंहूं । तहां पूर्व अप्राप्त अन्न वस्त्रादिक पदार्थोंकी जा प्राप्ति है ताका नाम योग है । और प्राप्तहुए तिन पदार्थोंका जो परिरक्षण है ताका नाम क्षेम है यद्यपि ते तत्त्ववेत्ता पुरुष आपणे शरीरकी स्थितिवासतै ता योगक्षेमकी इच्छा करते नहीं तथापि मैं अंतर्यामी ईश्वर आपही तिनोंके योगक्षेमकूं सिद्ध करूंहूं । जैसे आपणी इच्छातैं रहित बालकके योगक्षेमकूं ताके मातापिताही सिद्ध करैं हैं तैसे मैं परमेश्वरही तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके योगक्षेमकूं सिद्ध करूंहूं । जिसकारणतैं (प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः । उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै मैं परमेश्वर तिन ज्ञानवान् पुरुषोंकूं आपणा आत्मारूपकरिकै कथन करता भयाहूं । तथा आपणा आत्मारूप होणेतैंही सो ज्ञानवान् पुरुष तौ मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है । और मैं परमेश्वर तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं अत्यंत प्रिय हूं । ऐसे आत्मारूप तथा अत्यंत प्रिय ज्ञानवान् पुरुषोंके योगक्षेमकूं सिद्ध करणा मैं परमेश्वरकूं उचितही है। यद्यपि सर्वप्राणियोंके योगक्षेमकूं मैं परमेश्वरही प्राप्त करैंहैं केवल ज्ञानवान् पुरुषोंकेही योगक्षेमकूं प्राप्त करतानहीं तथापि अन्यप्राणियोंके योगक्षेमकूं जो परमेश्वर प्राप्त

करै है सो तिन प्राणियोंके प्रयत्नकूं प्रथम उत्पन्न करिकै तिस प्रयत्नद्वाराही तिन प्राणियोंकूं ता योगक्षेमकी प्राप्ति करैहै। ता प्रयत्नतैं विना प्राप्ति करै नहीं। और ज्ञानवान् पुरुषोंकूं तौ ता योगक्षेमकी प्राप्तिवास्तै प्रयत्नकूं नहीं उत्पन्नकरिकै ही ता योगक्षेमकी प्राप्ति करै है। इतनी दोनोंविषे विशेषता है। और किसी टीकाविषे तौ ता योगक्षेमका यह अर्थ कऱ्याहै। पूर्व अप्राप्त योगभूमिकाकी जा प्राप्ति है ताका नाम योग है। और पूर्व प्राप्त योगभूमिकाका जो रक्षण है ताका नाम क्षेम है इति। और किसी टीकाविषे तौ (योगस्य क्षेमं योगक्षेमम्) याप्रकारका समासकरिकै ता योगक्षेमका यह अर्थ कथन कऱ्याहै। निरंतर ब्रह्मनिष्ठाका नाम योग है तिस ब्रह्मनिष्ठारूप योगका जो क्षेम है अर्थात् अध्यात्मिक आदिक उपद्रवोंकरिकै जो विच्छेदतैं रहितपणा है ताका नाम योगक्षेम है। ऐसे योगक्षेमकूं मैं परमेश्वरही सर्वदा सिद्ध करूंहूं ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! आप परमेश्वरतें भिन्न दूसरी कोई वस्तु है नहीं किंतु सर्वपदार्थ तुम्हाराही स्वरूप है। यातैं ते इंद्रादिक अन्यदेवताभी तुम्हाराही स्वरूप हैं। तुम्हारेतैं ते इंद्रादिक देवता जुदा नहीं हैं। यातैं जैसे साक्षात् तुम्हारे भक्त तैं परमेश्वरकूंही भजैंहैं तैसे इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके भक्तभी वस्तुगतितैं तैं परमेश्वरकूंही भजैं हैं। इस रीतिसै तुम्हारे भक्तोंविषे तथा अन्यदेवतावोंके भक्तोंविषे किंचित्मात्रभी विशेषता सिद्ध होतीनहीं। यातैं इंद्रादिक अन्य देवतावोंके भक्त तौ पुनः पुनः गमन, आगमनकूं प्राप्त होवैं हैं। और मैं परमेश्वरकूं अनन्य होइकै चिंतनकरणेहारे ज्ञानवान् भक्त तौ कृतकृत्य होवैं हैं। यह पूर्व उक्त आपका वचन कैसे संगत होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं—

येप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) ये । अपि । अन्यदेवताभक्ताः । यजंते । श्रद्धया । अन्विताः । ते । अपि । माम् । एव । कौंतेय । यजंति । अविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे कौंतेय ! जे अन्यदेवतावोंके भक्त भी श्रद्धाकरिकै युक्तहुए पूजनकरैं हैं ते भक्त भी अज्ञानपूर्वक मैं परमेश्वरकूं ही पूजनकरैं हैं ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जैसे मैं परमेश्वरके भक्त मैं परमेश्वरकूं ही पूजन करैं हैं तैसे जे इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके भक्तभी आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाकरिकै युक्त

हुए ज्योतिष्टोमादिक यज्ञोंकारिकै तिन इंद्रादिकदेवतावोंकूं पूजन करैं हैं, ते अन्यदेवतावोंके भक्तभी वस्तुगतितैं तिसतिस देवतारूप करिकै स्थित हुए मैं परमेश्वरकूंही पूजन करैंहैं । परंतु ते अन्यदेवतावोंके भक्त मैं परमेश्वरकूं अविधिपूर्वकही पूजन करैं हैं । इहां अविधि नाम अज्ञानका है ता अज्ञानपूर्वकही मैं परमेश्वरकूं पूजन करैं हैं अर्थात् यह परमेश्वरही सर्वका आत्मारूप है याप्रकारतैं सर्वका आत्मारूपकरिकै मैं परमेश्वरकूं न जानिकै तथा तिन इन्द्रादिक देवतावोंकूं मैं परमेश्वरतैं भिन्न कल्पना करिकै ते अन्य देवतावेंके भक्त मैं परमेश्वरकूं पूजन करैंहैं । याकारणतैंही ते इंद्रादिक देवतावोंके भक्त पुनःपुनः जन्ममरणरूप संसारकूं प्राप्त होवैं हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (अविधिपूर्वकम्) इस वचनका यह अर्थ कऱ्याहै । अभेदबुद्धिका नाम विधि है ता अभेदबुद्धिरूप विधितैं ते पुरुष रहित हैं । यातैं ते अन्यदेवताओंके भक्त वस्तुगतितैं मैं सर्वात्मारूप परमेश्वरकूं पूजन करतेहुएभी सो तिनोंका पूजन अविद्यापूर्वकही है । अभेदबुद्धिपूर्वक कऱ्याहुआ मैं परमेश्वरका पूजनही विधिपूर्वक पूजन होवैहै ॥ २३ ॥

अब श्रीभगवान् तिन सकामपुरुषोंके भजनविषे अविधिपूर्वकपणा स्पष्ट करता हुआ तिन सकामपुरुषोंकी तिस स्वर्गादिक फलोंतैंभी प्रच्युतिकूं कथन करैंहैं—

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥
न तु मामभिजानंति तत्त्वेनातश्च्यवंति ते ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) अहम् । हि । सर्वयज्ञानाम् । भोक्ता । च । प्रभुः । एव । च । न । तु । माम् । अभिजानंति । तत्त्वेन । अतः । च्यवंति । ते ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर ही सर्वयज्ञोंका भोक्ता हूं तथा फलप्रदाता हूं यह वार्त्ता प्रसिद्ध है परंतु ते सकामपुरुष मैं परमेश्वरकूं तिसरूपकरिकै नहीं जानतेहैं इसकारणतैंही ते सकामपुरुष पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २४ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन! अधिकारी जनोंके प्रति शास्त्रनैं विधान करे जितनेक श्रौतयज्ञ हैं तथा स्मार्त्तयज्ञ हैं तिन सर्व यज्ञोंका मैं परमेश्वरही तिसतिस इंद्रादिक देवतारूप करिकै भोक्ता हूं । तथा मैं परमेश्वरही आपणे अंतर्यामीरूपकरिकै अधियज्ञरूप होणेतैं तिन यज्ञोंके फलका प्रदाता हूं यह वार्त्ता श्रुतिस्मृतियोंविषे

प्रसिद्धही है । ऐसे मैं परमेश्वरकूं ते अन्यदेवतावोंके सकामभक्त तिस तत्त्वरूपकारिकै जानते नहीं अर्थात् यह भगवान् वासुदेवही इंद्रादिक देवतारूपकारिकै तौ तिन सर्वयज्ञोंका भोक्तारूप है और आपणे अंतर्यामी स्वरूपकारिकै तौ तिन यज्ञोंके फलका प्रदाता है ऐसे सर्वात्मारूप परमेश्वरतैं भिन्न दूसरा कोई आराधन करणेयोग्य नहीं है । इसप्रकारके स्वरूपकारिकै ते सकामपुरुष मैं परमेश्वरकूं जानते नहीं । इस प्रकारतैंही ते अन्यदेवतावोंके सकामभक्त तिसतिस फलतैं प्रच्युतिकूं प्राप्त होवैं हैं अर्थात् मैं परमेश्वरके तिस वास्तवस्वरूपकूं नहीं जानतेहुए ते सकामपुरुष महन् आयासकारिकै तिन इंद्रादिक देवतावोंका पूजन करतेहुएभी मैं परमेश्वरविषे तिन कर्मोंका नहीं अर्पण करतेहुए तिन काम्यकर्मोंके प्रभावतैं पूर्व उक्त धूमादिक मार्गकारिकै तिसतिस देवताके लोकोंकूं प्राप्त होइकै तिस लोकके भोगके अंतविषे तहांतैं प्रच्युत होवैं हैं । तात्पर्य यह—तिसतिस लोकके भोगोंके जनक जे पुण्यकर्म हैं तिन कर्मोंका भोगकारिकै नाश हुएतैं अनंतर ते सकाम कर्मीपुरुष तिस तिस देवतादेहादिकोंतैं वियोगवाले हुए पुनः देहके ग्रहण करणेवासतै इस मनुष्यलोककूं प्राप्त होवैंहैं । और जे अधिकारी जन तिन इंद्रादिक सर्व देवतावोंविषे सर्व अंतर्यामीरूप भगवान्कूं ही देखतेहुए तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं करैं हैं तथा तिन सर्वकर्मोंकूं अंतर्यामी परमेश्वरविषे ही अर्पण करैं हैं ते निष्कामपुरुष तिस उपासनासहित कर्मके प्रभावतैं पूर्व उक्त अर्चिरादिक मार्गद्वारा ब्रह्मलोककूं प्राप्त होइकै तहां आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै ता ब्रह्मलोकके भोगोंके अंतविषे कैवल्यमोक्षकूं प्राप्त होवैं हैं । इसप्रकारतैं तिन सकामपुरुषोंके फलविषे तथा निष्कामपुरुषोंके फलविषे महान् भेद है ॥ २४ ॥

तहां तिन इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके पूजनकरणेहारे पुरुषोंकूं अनावृत्तिरूप फलके अभाव हुएभी तिसतिस देवताके पूजनके अनुसार तिसतिस क्षुद्रफलकी प्राप्ति अवश्यकारिकै होवैहै । इस अर्थकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् साक्षात् परमेश्वरके पूजनकरणेहारे भक्तजनोंकी तिन अन्यदेवतावोंके भक्तोंतैं विलक्षणताकूं कथन करैं हैं ।

यांति देवव्रता देवान्पितॄन्यांति पितृव्रताः ॥
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोपि माम् ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) यांति । देवव्रताः । देवान् । पितृन् । यांति । पितृव्रताः । भूतानि । यांति । भूतेज्याः । यांति । मद्याजिनः । अपि । माम् ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! देवतावोंके पूजक तिनै देवतावोंकूंही प्राप्तहोवैं हैं तथा पितरोंके पूजक तिन पितरोंकूंही प्राप्तहोवैं हैं तथा भूतोंके पूजक तिन भूतोंकूंही प्राप्तहोवैंहैं तथा मैं परमेश्वरके पूजक मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्तहोवैं हैं ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अंतःकरणरूप उपाधिके सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंके भेदकरिकै ते अविधिपूर्वक भजन करणेहारे पुरुषभी सात्त्विक राजस तामस इस भेदकारिकै तीन प्रकारके होवैं हैं । तहां इंद्रादिक देवतावोंका बलिप्रदान प्रदक्षिणा नमस्कार इत्यादिक पूजनरूप है व्रत जिनोंकूं तिन पुरुषोंका नाम देवता है ऐसे देवतावोंकूं पूजनकरणेहारे पुरुष तिन इंद्रादिक देवतावोंकूंही प्राप्त होवैं हैं । ते देवतावोंका पूजन करणेहारे पुरुष सात्त्विक कहेजावैं हैं । और श्राद्धादिक कर्मोंकरिकै अग्निष्वात्तादिक पितरोंका आराधन करणेहारे जे पुरुष हैं तिनोंका नाम पितृव्रत है ऐसे पितरोंका आराधन करणेहारे पुरुष तिन पितरोंकूंही प्राप्त होवैंहैं । ते पितरोंका आराधन करणेहारे पुरुष राजस कहेजावैं हैं । और यक्ष राक्षस विनायक मातृगण इत्यादिक भूतोंका पूजन करणेहारे जे पुरुष हैं तिनोंका नाम भूतेज्य है ऐसे भूतोंका पूजनकरणेहारे पुरुष तिन भूतोंकूंही प्राप्त होवैं हैं । ते भूतोंकूं पूजन करणेहारे पुरुष तामस कहे जावैंहैं । इतने कहणेकारिकै परमेश्वरतैं अन्य दूसरे देवतावोंके आराधनका तिसतिस देवतारूपकी प्राप्तिरूप नाशवान् फल कथन कऱ्या है । अब परमेश्वरके आराधनका परमेश्वररूपताकी प्राप्तिरूप अविनाशी फलकूं कथन करैं हैं । (यांति मद्याजिनोपि माम्) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके ही पूजनकरणेका है स्वभाव जिनोंका तिनोंका नाम मद्याजी है अर्थात् जे पुरुष इंद्रादिक सर्व देवतावोंविषे मैं परमेश्वरकूंही व्यापक देखते हुए निरंतर मैं परमेश्वरकेही आराधनपरायण होवैं हैं ते हमारे भक्त तौ मैं परमेश्वरकूंही अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवैं हैं । जो जिसका आराधन करै है सो तिस भावकूंही प्राप्त होवै है यहवार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति—(ते यथायथोपासते तदेव भवति ।) अर्थ यह—जो पुरुष जिस जिस देवताकी उपासना करैहै मरणतैं अनंतर सो पुरुष तिस तिस देवताभावकूंही प्राप्त होवै है । इस श्लोकविषे श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है । परमेश्वरके

आराधन करणेविषे तथा इंद्रादिक अन्यदेवतावोंके आराधन करणेविषे आयासके समान हुएभी यह जीव अविनाशी फलकी प्राप्ति करणेहारे अंतर्यामी परमेश्वरकूं नहीं आराधनकरिकै अन्य इंद्रादिक देवतावोंका आराधन करिकै नाशवान् फलकूंही प्राप्त होवै है यातैं इन अज्ञानी जीवोंके दुष्ट अदृष्टका प्रभाव कोई आश्चर्यरूप है । जिस दुष्ट अदृष्टके प्रभावतैं यह अज्ञानी जीव मुक्ति करणेहारे परमेश्वरके आराधनका परित्याग करिकै तुच्छ फलकी प्राप्तिवासतै तिन इंद्रादिक देवतावोंकाही आराधन करैं हैं ॥ २५ ॥

यातैं परमेश्वरतैं अन्यदेवतावोंका परित्याग करिकै इस अधिकारी जननैं केवल परमेश्वरकाही आराधन करणा जिसकारणतैं सो परमेश्वरका आराधन इस अधिकारी पुरुषकूं मोक्षरूप अविनाशी फलकीही प्राप्ति करैहै । तथा अन्यदेवतावोंके आराधन करणेविषे इस पुरुषकूं द्रव्यके खरचतैं आदिलैके जितनाक आयास होवैहै तितना आयास परमेश्वरके आराधनकरणेविषे होता नहीं किंतु सो परमेश्वरका आराधन अत्यंत सुगम है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) पत्रम्[4] । पुष्पम्[5] । फलम्[6] । तोयम्[7] । यः[1] । मे[2] । भक्त्या[3] । प्रयच्छति[8] । तत्[10] । अहम्[12] । भक्त्युपहृतम्[11] । अश्नामि[13] । प्रयतात्मनः[9] ॥२६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो[1] कोई पुरुष मैं परमेश्वरके[2] तांई भक्ति[3]करिकै पत्र[4] वा पुष्प[5] वा फल[6] वा जल[7] देता[8]है तिस[9] शुद्धबुद्धिवाले पुरुषके तिस[10] भक्तिपूर्वक[11] अर्पणकरे हुए पत्रपुष्पादिककूं मैं परमेश्वर[12] अंगीकार[13] करूंहूं ॥ २६ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! पत्र पुष्प फल जल इसतैं आदिलैके जे केई वस्तु विनाही प्रयत्नतैं प्राप्तहोवैंहैं तिन अत्यंत सुलभ वस्तुवोंविषे जिसी किसी पत्रपुष्पादिक वस्तुकूं जो कोई मनुष्य अनंत महान् विभूतिवाले मैं परमेश्वरके ताईं भक्तिकरिकै देवै है अर्थात् परमेश्वरतैं परे दूसरा कोई है नहीं इसप्रकारकी बुद्धिपूर्वक जा निरतिशय प्रीति है ता प्रीतिकरिकै जो पुरुष भृत्यकी न्याईं मैं परमेश्वरके ताईं तिस वस्तुका अर्पण करैहै । तात्पर्य यह—जैसे महाराजाके राज्यविषे स्थित जितनेक पदार्थ हैं ते सर्वपदार्थ वस्तुगतितैं ता महाराजाकेही हैं । तिन महाराजाके पदार्थोंकूंही

मृत्यलोक प्रीतिपूर्वक तिस महाराजाके ताईं अर्पण करैंहैं ताकरिकै सो महाराजा पारितोषकूं प्राप्त होवैहै। तैसे इस जगत्‌विषे जितनेक पदार्थ हैं ते सर्व पदार्थ मैं परमेश्वरकेही हैं ऐसा कोई पदार्थ इस जगत्‌विषे है नहीं जो पदार्थ मैं परमेश्वरका नहीं होवै। ऐसे मैं परमेश्वरके पदार्थोंकूंही जे पुरुष प्रीतिपूर्वक मैं परमेश्वरके ताईं अर्पण करैं हैं तिन प्रीतिपूर्वक अर्पणकरे हुए शुद्धबुद्धिवाले पुरुषोंके पत्रपुष्पादिक अत्यंत तुच्छपदार्थोंकूंभी मैं परमेश्वर भोजन करूंहूं। अर्थात् जैसे कोई पुरुष अन्नकूं भोजनकरिकै तृप्तिकूं प्राप्त होवैहै तैसे मैं परमेश्वरभी तिन पत्रपुष्पादिक पदार्थोंकूं प्रीतिपूर्वक स्वीकारमात्रकरिकै तृप्तिकूं प्राप्त होवूंहूं। यद्यपि (अश्नामि) इस पदका मुख्य अर्थ भोजनकर्तृत्वही है तथापि ता मुख्य अर्थका परित्यागकरिकै ता पदकी लक्षणावृत्तितैं जो प्रीतिपूर्वक स्वीकर्तृत्वरूप अर्थ अंगीकार कऱ्याहै सो प्रीतिके अतिशयताकी हेतुताके बोधन करणेवासतै अंगीकार कऱ्याहै। अर्थात् तिन भक्तिपूर्वक अर्पण करेहुए पत्रपुष्पादिक पदार्थोंके स्वीकारमात्रतैंही मैं परमेश्वर अत्यंत प्रसन्न होवूंहूं। और श्रुतिविषेभी देवतावोंविषे मनुष्योंकी न्याईं भोजन कर्तृत्वका निषेधही कऱ्याहै। याकारणतैंभी (अश्नामि) इस पदकी स्वीकाररूप अर्थविषे लक्षणा करणी उचित है। तहां श्रुति–(न ह वै देवा अश्नंति न पिबंति एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यंति ।) अर्थ यह–जैसे यह मनुष्य अन्नादिक पदार्थोंकूं भोजन करै है तथा जलादिकोंकूं पान करै है तैसे देवता तिन अन्नादिकोंकूं भोजन करते नहीं, तथा जलादिकोंकूंभी पान करते नहीं किंतु ते देवता केवल अमृतके दर्शनमात्रकरिकैही तृप्तिकूं प्राप्त होवैं हैं इति। शंका–हे भगवन् ! आप साक्षात् परमेश्वर होइकै ऐसे पत्रपुष्पादिक तुच्छवस्तुवोंकूं किसवासतै स्वीकार करतेहो ? महान् पुरुषोंकूं तो महान् वस्तुकाही स्वीकार करणा उचित है। ऐसी अर्जुनकी शंकाकेहुए तिन तुच्छवस्तुवोंके स्वीकारकरणेविषे हेतुकूं कथन करैं हैं (भक्त्युपहृतमिति) ते पत्रपुष्पादिक वस्तु यद्यपि तुच्छ हैं तथापि तिन भक्तजनोंनैं ते पत्रपुष्पादिक अत्यंतप्रीतिरूप भक्तिकरिकै मैं परमेश्वरके ताईं अर्पण करेहैं। याकारणतैं मैं परमेश्वर तिन पत्रपुष्पादिक तुच्छपदर्थोंकूंभी महान् पदार्थरूपकरिकै स्वीकार करूंहूं। अर्थात् तिसतिस वस्तुके स्वीकारकरणेविषे कोई तिसतिस वस्तुकी सौंदर्यता वा महानता निमित्त नहीं है किंतु अत्यंत प्रीतिपूर्वक समर्पणही ता वस्तुके स्वीकारकरणेविषे निमित्त है इति। इहां (भक्त्या प्रयच्छति) इस वचनविषे भक्तिका कथन करिकै (भक्त्युपहृतम्) इस वचनवि-

जो पुनः भगवान्नैं भक्तिका कथन कऱ्याहै सो इस अर्थके सूचनकरणेवास्तै कथन कऱ्याहै। जो पुरुष ब्राह्मण है तथा बहुत तपस्वी है परंतु मैं परमेश्वरकी भक्तितैं रहितहै। तिस भक्तिहीन तपस्वी ब्राह्मणनैं कोई महान् वस्तु देईहुईभी मैं परमेश्वर तिस वस्तुकूं स्वीकार करतानहीं । यातैं मैं परमेश्वरकृत वस्तुके स्वीकार करणेविषे कोई ब्राह्मणत्वादिक उत्तम जाति तथा तपस्वीपणा निमित्त नहीं है किंतु देणेहारे पुरुषकी केवल परम प्रीतिही ता स्वीकारकरणेविषे निमित्त है इति । अथवा जैसे अत्यंत प्रीतिपूर्वक मातानैं दियेहुये पदार्थोंकूं बालक भक्ष्याभक्ष्य विचारतैं रहित होइकै भक्षण करैहै तैसे भक्तजनोंकी अत्यंत प्रीतिकरिकै प्रतिबद्ध हुआहै भक्ष्याभक्ष्यवस्तुका ज्ञान जिसका ऐसा जो मैं परमेश्वर हूं सो मैं परमेश्वर भक्तिपूर्वक अर्पण करेहुए तिन भक्तजनोंके पत्रपुष्पादिक वस्तुवोंकूं आपणे लीला अवतारोंकरिकै साक्षात्‌ही भक्षण करूंहूं । जैसे श्रीदामाब्राह्मणनैं अत्यंत प्रीतिपूर्वक दियेहुए तंडुलोंकूं मैं परमेश्वर भक्षण करताभयाहूं । तथा शबरीनैं अत्यंत प्रीतिपूर्वक दियेहुए बदरीफलोंकूं मैं परमेश्वर भक्षण करताभयाहूं । यातैं केवल अनन्यभक्तिही मैं परमेश्वरके परितोषका निमित्त है। दूसरे इंद्रादिक देवताओंके परितोषण करणेविषे जैसे बहुत द्रव्यका खर्च तथा शरीरका आयास इत्यादिक निमित्त होवैंहैं तैसे मैं परमेश्वरके परितोष करणेविषे ते निमित्त अवश्य अपेक्षित नहीं हैं किंतु केवल एक भक्तिही अपेक्षित है । यातैं यह अधिकारी जन तिन दूसरे देवताओंके परित्याग करिकै एक मैं परमेश्वरकूंही आराधन करैं । और किसी टीकाविषे तौ (पत्रं पुष्पम्) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्याहै । (द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च । चलं संन्यासिनो रूपमचलं प्रतिमादिकम्) अर्थ यह—परमेश्वरवासुदेवके चल अचल यह दो रूप होवैं हैं । तहां संन्यासी तौ चलरूप है और शालग्रामप्रतिमादिक अचलरूप हैं इति । इस शास्त्रके वचनविषे संन्यासी तथा शालग्राम प्रतिमादिक परमेश्वरके रूप कथन करेहैं और (अभ्यागतः स्वयं विष्णुः) अर्थ यह—भोजनके समय गृहविषे प्राप्तहुआ अतिथि विष्णुरूप होवै है इति । इस स्मृतिविषेभी अतिथिकूं विष्णुरूप कह्याहै । यातैं जो अधिकारी पुरुष शालग्रामविषे अथवा प्रतिमाविषे भक्तिपूर्वक पत्रपुष्पादिक मैं परमेश्वरके ताईं अर्पण करैहै तिन भक्तिपूर्वक अर्पण करे हुए पत्रपुष्पादिकोंकूं मैं परमेश्वर अंगीकार करूंहूं इति । अथवा भोजनकालविषे गृहविषे प्राप्त भया जो अतिथि है तिस अन्नार्थी अतिथिके

ताईं जो पुरुष जैसे शाकफलादिक आप भोजन करैहै तैसीही शाकफलादिक भक्तिपूर्वक देवैहै, तिस पुरुषके भक्तिपूर्वक दियेहुए तिन पत्रपुष्पादिकोंकूं मैं परमेश्वर साक्षात् तिस अतिथिके मुखकरिकै भोजन करूंहूं ॥ २६ ॥

हे भगवन्! जिस भजनकरिकै आप प्रसन्न होवो हो सो आपका भजन किसप्रकारका होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिस भजनके प्रकारकूं कथन करैहैं–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) यत् । करोषि । यत् । अश्नासि । यत् । जुहोषि । ददासि । यत् । यत् । तपस्यसि । कौन्तेय । तत् । कुरुष्व । मदर्पणम् ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे ! कौंतेय तूं जो करताहै तथा जो भोजन करताहै तथा जो होम करताहै तथा जो दान करताहै तथा जो तप करताहै सो सर्व मैं परमेश्वरके अर्पण कर ॥ २७ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! शास्त्रकी आज्ञातैं विनाही केवल रागकरिकै प्राप्त जिस गमनआगमनरूप लौकिक कर्मकूं तूं करताहै तथा आपणी तृप्तिवासतै अथवा कर्मोंकी सिद्धिवासतै जिस अन्नकूं तूं भोजन करताहै तथा शास्त्रके बलतैं जिस नित्य अग्निहोत्रादिक होमकूं तूं करताहै। इहां (जुहोषि) यह होमका वाचक पद श्रौतस्मार्त्त सर्वहोमका उपलक्षण है। अर्थात् श्रौतस्मार्त्तरूप जितनेक होमोंकूं तूं करताहै तथा अतिथि ब्राह्मणादिकोंके तांई जो तूं अन्न सुवर्णादिक पदार्थ देताहै तथा प्रतिवर्षविषे अज्ञातपापोंकी तथा प्रमादकृतपापोंकी निवृत्ति करणेवासतै जो तूं चांद्रायणव्रतादिक तपकूं करताहै अथवा यथा इच्छापूर्वक प्रवृत्तिके निवृत्त करणेवासतै शरीर इंद्रियोंके समयरूप तपकूं जो तूं करताहै यह तप सर्व नित्यनैमित्तिक कर्मोंका उपलक्षण है। ते सर्व कर्म तूं मैं परमेश्वरविषे अर्पण कर अर्थात् जो तुम्हारेकूं आपणे प्राणी स्वभावके वशतैं शास्त्रतैं विनाभी अवश्य करणे योग्य गमन आगमनादिक लौकिक कर्म हैं तथा जो तुम्हारेकूं शास्त्रके बलतैं अवश्यकरणे योग्य होमदानादिक वैदिक कर्म हैं जे लौकिक वैदिक कर्म किसी अन्य

निमित्तकरिकै करे हैं ते लौकिक वैदिक सर्व कर्म जैसे मैं परमेश्वरविषेही अर्पित होवैं तैसे तिन सर्व कर्मोंकूं तूं कर। इहां (कुरुष्व) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ बोधन कऱ्या। इसप्रकार जो पुरुष मैं परमेश्वरविषेही तिन सर्वकर्मोंका समर्पण करैहै ता समर्पणका मोक्षरूप फल तिस समर्पकपुरुषकूंही प्राप्त होवैहै। ताकरिकै मैं परमेश्वरकूं किंचित्मात्रभी फल होता नहीं इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। अवश्य करणेयोग्य कर्मोंका जो परमगुरुरूप मैं परमेश्वरविषे अर्पण है सो अर्पणही मैं परमेश्वरका भजन है। तिस भजनवासतै दूसरा कोई जुदा व्यापार करणेयोग्य नहीं है ॥ २७ ॥

अब अधिकारी जनोंकूं तिस भजनविषे प्रवृत्तकरणेवासतै इस पूर्वउक्त भजनके फलकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं-

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तोमामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) शुभाशुभफलैः। एवम्। मोक्ष्यसे। कर्मबंधनैः। संन्यासयोगयुक्तात्मा। विमुक्तः। माम्। उपैष्यसि ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! ऐसे भजनके प्राप्त हुए तूं अर्जुन इष्टअनिष्ट फलवाले कर्मरूपबंधनोंनैं परित्याग कियाजावैगा तथा संन्यासयोगयुक्तात्मा हुआ तूं तिन कर्मबंधनोंतैं विमुक्त हुआ मैंपरब्रह्मकूं प्राप्त होवैगा ॥ २८ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन! इस पूर्वउक्त प्रकारतैं विनाही आयासतैं सिद्ध जो सर्वकर्मोंका मैं परमेश्वरविषे अर्पणरूप भजन है तिस हमारे भजनके प्राप्तहुए इष्टरूप तथा अनिष्टरूप फल है जिनोंका ऐसे जे बंधनरूप लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन कर्मोंनैं तूं अर्जुन परित्याग कियाजावैगा। अर्थात् ते सर्व कर्म मैं परमेश्वरविषे अर्पित होणेतैं तैं अर्जुनका तिन कर्मोंके साथि संबंधही संभवता नहीं। यातैं तिन कर्मोंकारिकै तथा तिन कर्मोंके इष्ट अनिष्ट फलोंकारिकै तूं लिपायमान होवैगा नहीं। तिसतैं अनंतर संन्यासयोगयुक्तात्मा हुआ तूं इहां सर्वकर्मोंका जो परमेश्वरविषे अर्पण है ताका नाम संन्यास है सो संन्यास ही योगकी न्याईं चित्तका शोधक होणेतैं योगरूप है। ऐसे संन्यासयोगकारिकै युक्त है क्या शोधित है आत्मा क्या अंतःकरण जिसका ताका नाम संन्यासयोगयुक्तात्मा है। अथवा तिस संन्यास-

योगविषे युक्त है क्या आसक्त है आत्मा क्या मन जिसका ताका नाम संन्यासयोगयुक्तात्मा है । अथवा फलसहित सर्वकर्मोंके परित्यागका नाम संन्यासयोग है ता संन्यासयोगकरिकै युक्त है चित्त जिसका ताका नाम संन्यासयोगयुक्तात्मा है । ऐसा संन्यासयोगयुक्तात्माहुआ तथा जीवताहुआही तिन बंधनरूप कर्मोंतैं विमुक्त हुआ तूं अर्जुन मैं परमेश्वरकूंही प्राप्त होवैगा । अर्थात् सम्यक्दर्शनकरिकै अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्तिकरिकै मैं परब्रह्मकूंही अहंब्रह्मास्मि इसप्रकारतैं तूं साक्षात्कार करैगा । तिसतैं अनंतर भोगकरिकै प्रारब्धकर्मके नाशहुएतैं इस शरीरके पात हुए तूं विदेहकैवल्यरूप मैं परब्रह्मकूं प्राप्त होवैगा । और इस वर्त्तमान कालविषेभी मैं परब्रह्मस्वरूप हुआ तूं सर्व उपाधियोंकी निवृत्तिकरिकै मायाकृत भेदव्यवहारका विषय नहीं होवैगा ॥ २८ ॥

हे भगवन् ! जबी तूं आपणे भक्तोंऊपरिही अनुग्रह करताहै अभक्तों ऊपरि अनुग्रह करता नहीं तबी अस्मदादिक जीवोंकी न्याईं तूंभी रागद्वेषवाला होणेतैं परमेश्वर कैसे होवैगा ? किंतु अस्मदादिक जीवोंकी न्याईं तूंभी कोई जीवविशेषही होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं—

समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः ॥
ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) समः । अहम् । सर्वभूतेषु । न । मे । द्वेष्यः । अस्ति । न । प्रियः । ये । भजंति । तु । माम् । भक्त्या । मयि । ते । तेषु । च । अपि । अहम् ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वर सर्वप्राणियोंविषे समान हूं यातैं कोईभी प्राणी मैं परमेश्वरके द्वेषका विषय नहीं है तथा प्रीतिका विषय नहीं है तौ भी जे पुरुष मैं परमेश्वरकूं भक्तिकरिकै सेवनकरैं हैं ते पुरुष ही मैं परमेश्वरविषे वर्त्तैहैं तथा मैं परमेश्वर भी तिन पुरुषोंविषेही वर्त्तताहूं ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जितनेक प्राणी मैं परमेश्वरके भक्त हैं तथा जितनेक प्राणी मैं परमेश्वरतैं विमुख अभक्त हैं तिन सर्वप्राणियोंविषे मैं परमेश्वर समानही हूं । अर्थात् मैं परमेश्वरका दोप्रकारका रूप है । एक तौ स्वाभाविक रूप है और दूसरा औपाधिक रूप है । तहां सत्ता स्फुरण आनंद यह तीनों तौ हमारा

स्वाभाविक रूप है। और अंतर्यामीपणा औपाधिकरूप है। ता स्वाभाविक सत्तारूपकरिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै तथा आनंदरूपकरिकै भी मैं परमेश्वर तिन सर्वप्राणियोंविषे समान हूं तथा औपाधिक अंतर्यामीरूपकरिकै भी मैं परमेश्वर तिन सर्व प्राणियोंविषे समान हूं इति। याकारणतैंही कोईभी प्राणी मैं परमेश्वरके द्वेषका विषय नहीं है। तथा कोईभी प्राणी मैं परमेश्वरके प्रीतिका विषय नहीं है अर्थात् मैं परमेश्वरका किसीभी प्राणीविषे द्वेष तथा प्रीति नहीं है। जैसे आकाशमंडलविषे व्यापक जो सूर्यका प्रकाश है तिस प्रकाशका किसीभी पदार्थविषे द्वेष तथा प्रीति नहीं होवैहै किंतु सो सूर्यका प्रकाश सर्वत्र समानही होवैहै। शंका—हे भगवन्! किसीभी प्राणीविषे जो तुम्हारा द्वेष तथा प्रीति नहीं होवै तौ तुम्हारे भक्तोंविषे तथा अभक्तोंविषे फलकी विषमता कैसे होवैहै? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता फलकी विषमताविषे हेतु कहैं हैं (ये भजंति इति) हे अर्जुन! जे पुरुष सर्वकर्मोंका मैं परमेश्वरविषे अर्पणरूप भक्तिकरिकै मैं परमेश्वरकूं सेवन करैं हैं ते भक्तजन श्रेष्ठ हैं। इहां (ये भजंति तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द अभक्तोंकी अपेक्षा करिकै भक्तोंकी विशेषताके बोधनकरणे वासतै है। सा विशेषता कौन है। ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता विशेषताकूं कहैं हैं (मयि ते तेषु चाप्यहमिति) हे अर्जुन! मैं परमेश्वरविषे अर्पण करेहुए निष्कामकर्मोंकरिकै जे पुरुष शुद्धअंतःकरणवाले हुए हैं ते पुरुषही मैं परमेश्वरविषे वर्त्तैं हैं अर्थात् निवृत्त होइगया है रजतमरूप मल जिसका तथा सत्त्वगुणकी अधिकताकरिकै अत्यंत स्वच्छ हुआ ऐसा जो अंतःकरण है ऐसे अंतःकरणकी मैं परमेश्वरके आकारवृत्तिकूं उपनिषदरूप प्रमाणकरिकै उत्पन्न करते हुए ते भक्तजनही मैं परमेश्वरविषे वर्त्तैं हैं अभक्तजन इसप्रकारतैं मैं परमेश्वरविषे वर्त्तते नहीं। और मैं परमेश्वरभी तिन भक्तजनोंविषेही वर्त्तता हूं अर्थात् मैं परमेश्वरभी तिन भक्तजनोंके अत्यंत स्वच्छ चित्तकी वृत्तिविषे प्रतिबिंबितहुआ तिन भक्तोंविषेही वर्त्तता हूं। काहेतैं इस लोकविषे जो जो स्वच्छ द्रव्य है ता स्वच्छ द्रव्यका यहही स्वभाव होवैहै जो जिस पदार्थके साथि ता स्वच्छद्रव्यका संबंध होवैहै तिस पदार्थके आकारकूं सो स्वच्छ द्रव्य आपणेविषे ग्रहण करैहै। और ता स्वच्छद्रव्यके संबंधवाला जो जो पदार्थ होवै है तिस पदार्थकाभी यहही स्वभाव होवै है। जो तिस स्वच्छद्रव्यविषे प्रतिबिंबभावकूं प्राप्तहोणा। और इस लोक-

विषे जो जो अस्वच्छद्रव्य होवैहै, तिस अस्वच्छद्रव्यकाभी यहही स्वभाव होवैहै जो आपणे संबंधवाले पदार्थकेभी आकारकूं आपणेविषे नहीं ग्रहण करणा। और ता अस्वच्छद्रव्यके संबंधवाले पदार्थकाभी यहही स्वभाव होवैहै। जो तिस अस्वच्छद्रव्यविषे प्रतिबिंबभावकूं नहीं प्राप्त होणा । जैसे सर्वत्र समान विद्यमान हुआभी सूर्यका प्रकाश स्वच्छदर्पणादिकोंविषेही अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै । अस्वच्छघटादिकोंविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होतानहीं । इतनेमात्रकरिकै ता प्रकाशका तिन दर्पणादिकोंविषे कोई राग सिद्ध होवै नहीं। तथा तिन घटादिकोंविषे कोई द्वेष सिद्ध होवै नहीं। तैसे सर्वत्र समान हुआभी मैं परमेश्वर भक्तजनोंके अत्यंत स्वच्छ चित्तविषेही अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवौंहूं। अभक्तजनोंके अत्यंत अस्वच्छ चित्तविषे अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवौं नहीं । इतनेमात्रकरिकै मैं परमेश्वरका तिन भक्तजनोंविषे कोई राग सिद्ध होवै नहीं। तथा तिन अभक्तजनोंविषे कोई द्वेष सिद्ध होवै नहीं। यातैं मैं परमेश्वरविषे किंचित्मात्रभी विषमता नहीं है। तात्पर्य यह—जैसे रागद्वेषतैं रहित हुआभी अग्नि आपणे समीपस्थित प्राणियोंकेही शीतकूं निवृत्त करै है दूरस्थित प्राणियोंके शीतकूं निवृत्त करै नहीं तथा जैसे रागद्वेषतैं रहित हुआभी कल्पवृक्ष आपणे समीपस्थित मनुष्योंकूंही मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करैहै। दूरस्थित मनुष्योंकूं मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करै नहीं। इतनेमात्रकरिकै ता अग्निविषे तथा कल्पवृक्षविषे विषमतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं। तैसे रागद्वेषतैं रहित हुआभी मैं परमेश्वर शरणागतकूं प्राप्त हुए भक्तजनोंकेही बंधनकूं निवृत्त करूंहूं। अन्यप्राणियोंके बंधनकूं निवृत्त करता नहीं। इतनेमात्रकरिकै मैं परमेश्वरविषेभी विषमतादोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी भक्तिकाही यह प्रभाव है जो सर्वत्र समान मैं परमेश्वरविषेभी विषमताकूं दिखाईदेवैहै । तिस हमारी भक्तिके प्रभावकूं तूं अब श्रवण कर—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) अपि । चेत् । सुदुराचारः । भजते । माम् । अनन्यभाक् । साधुः । एव । सः । मंतव्यः । सम्यक् । व्यवसितः । हि । सः ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो कोई पुरुष अत्यंतदुराचरणवाला हुआ भी जबी अनन्यचित्त होइकै मैं परमेश्वरकूं भजैहै तबी सो पुरुष साधु ही मांनणा जिसकारणतैं सो पुरुष साधु निश्चयवाला है ॥ ३० ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जो कोई पुरुष अजामिलादिकोंकी न्याई पूर्व अत्यंत दुराचरणवाला हुआभी जबी किसी पूर्वले पुण्यके उदयतैं अनन्यचित्तवाला हुआ मैं परमेश्वरकूं सेवन करैहै तबी सो पुरुष पूर्व असाधु हुआभी तिस भजनकालविषे साधुही मानणा। जिसकारणतैं सो पुरुष तिसकालविषे साधुनिश्चयवालाही है। तहां दुराचारी पुरुषभी परमेश्वरके आराधनतैं साधुही होवैहै यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक—(अतिपापप्रसक्तोपि ध्यायन्निमिषमच्युतम् । भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः ॥ १ ॥ प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मिकानि वै । यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ २ ॥) अर्थ यह—अत्यंत पापकर्मोंविषे प्रसक्त पुरुषभी जबी अनन्यचित्त होइकै एक निमेषमात्र कालपर्यंतभी परमेश्वरका आराधन करैहै तबी तिस परमेश्वरके आराधनके प्रभावतैं सो पुरुष तिन सर्वपापोंतैं रहित होइकै पुनः तपस्वी होवैहै । तथा सो पुरुष पंक्तिकूं पावनकरणेहारे सदाचारवाले पुरुषोंकूंभी आपणे दर्शनतैं पावन करैहै इति । किंवा पापकी निवृत्ति करणेवासतै धर्मशास्त्रनैं विधान करे जितनेक कृच्छ्र अतिकृच्छ्र महाकृच्छ्र चांद्रायण इत्यादिक तपरूप प्रायश्चित्त हैं तथा जितनेक वाजपेययज्ञ राजसूययज्ञ अश्वमेधयज्ञ इत्यादिक कर्मरूप प्रायश्चित्त हैं तिन सर्व प्रायश्चित्तोंतैं श्रीकृष्णभगवान्‌का स्मरण अधिक है इति । तात्पर्य यह—ते कृच्छ्रादिक प्रायश्चित्त जिसजिस पापकी निवृत्ति करणेवासतै करेजावैं हैं तिसतिस पापकीही निवृत्ति करैहैं अन्यपापकी निवृत्ति करैं नहीं । और यह परमेश्वरका स्मरण तौ शतकोटि कल्पोंके पापोंकूं नाश करैहै यह वार्त्ताभी शास्त्रविषे कथन करीहै । तहां श्लोक— (अहं ब्रह्मेति मां ध्यायन्नेकाग्रमनसा सकृत् । सर्वं तरति पाप्मानं कल्पकोटिशतैः कृतम् ॥) अर्थ यह—जो पुरुष एकाग्रमनकरिकै एकवारभी मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतैं अभेदरूपकरिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैहै सो पुरुष शतकोटि कल्पोंकरिकै करेहुए सर्वपापोंकूं नाश करैहै ॥ ३० ॥

तहां अनन्यचित्त होइकै जो परमेश्वरका स्मरण है सो स्मरणही मोक्षका साधन है । याप्रकारके सम्यक् निश्चयतैं सो पुरुष पूर्वली दुराचारताकूं परित्याग करिकै शीघ्रही धर्मात्मा होवैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैहैं—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ॥
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) क्षिप्रम् । भवति । धर्मात्मा । शश्वत् । शांतिम् । निगच्छति । कौंतेय । प्रतिजानीहि । न । मे । भक्तः । प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो पुरुष शीघ्रही धर्मात्मा होवैहै तथा नित्य शांतिकूं प्राप्तहोवैहै हे कौंतेय ! मैं परमेश्वरका भक्त नहीं नाश होवैहै ऐसी तूं प्रतिज्ञा कर ॥ ३१ ॥

भा॰ टी॰- हे अर्जुन ! जो पुरुष पूर्व बहुतकालका अधर्मात्मा होवैहै सो पुरुषभी मैं परमेश्वरके भजनके प्रभावतैं शीघ्रही धर्मात्मा होवैहै । अर्थात् सो पुरुष तिस भजनके प्रभावतैं पूर्वले दुराचारपणेकूं शीघ्रही परित्याग करिकै धर्मविषे प्रीतिवाला होवैहै । किंवा तिस हमारे भक्तकूं केवल इतनामात्रही फल नहीं होवैहै किंतु इसतैं अधिकभी फल होवैहै । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कहैं हैं (शश्वच्छांतिं निगच्छति इति) हे अर्जुन ! तिस हमारे भजनके प्रभावतैं सो पुरुष नित्य शांतिकूंभी प्राप्त होवैहै अर्थात् मैं परमेश्वरके भजनकरिकै शुद्ध अन्तःकरणवाला हुआ सो पुरुष तीव्रवैराग्यवान् होइकै सर्वविषयभोगोंकी इच्छातैं रहित होवैहै । शंका-हे भगवन् ! परमेश्वरका पूजन करणेहाराभी कोईक भक्त पूर्व अभ्यासकरेहुए दुराचारकूं नहीं त्यागकरताहुआ धर्मात्मा नहीं भी होवैगा । यातैं सो भक्त तौ नाशकूंही प्राप्त होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन भक्तजनोंके ऊपरि करुणाके परवशताकरिकै क्रोधवान् हुएकी न्याईं ता अर्जुनके प्रति कहैं हैं (कौंतेय इति) हे अर्जुन ! पूर्व दुराचारी हुआभी यह पुरुष मैं परमेश्वरके भजनके प्रभावतैं ता दुराचारका परित्यागकरिकै शीघ्रही धर्मात्मा होवैहै । तथा नित्य शांतिकूं प्राप्त होवैहै इस वार्त्ताकूं तुमनैं कोई आश्चर्यरूप नहीं मानणा किंतु यह हमारे भक्तिका प्रभाव निश्चितही है । यातैं हे अर्जुन ! इस हमारे भक्तिके प्रभावविषे विवादकरणेहारे जे प्रतिवादी हैं तिन प्रतिवादियोंके सम्मुख स्थित होइकै तथा ऊंची भुजाकरिकै तिन प्रतिवादियोंकी अवज्ञापूर्वक तथा गर्वपूर्वक तूं याप्रकारकी प्रतिज्ञा कर । जो मैं परमेश्वरका भक्त अत्यंत दुराचारी हुआ भी तथा प्राणसंकटकूं प्राप्तहुआभी तथा अत्यंत मूढ

तथा अशरण हुआभी नाशकूं प्राप्त होतानहीं । अर्थात् दुर्गकूं प्राप्त होता नहीं किंतु सर्वप्रकारतैं सो हमारा भक्त कृतार्थही होवैहै । हे अर्जुन ! इस हमारे भक्तिके प्रभावविषे अजामिल, प्रह्लाद, ध्रुव, गजेंद्र इसतैं आदिलैके अनेक दृष्टांत प्रसिद्ध हैं तथा (न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।) अर्थ यह—परमेश्वरके भक्तोंकूं कदाचित्भी अशुभकी प्राप्ति होवै नहीं । इत्यादिक अनेक शास्त्रके वचन प्रमाणरूप हैं ॥ ३१ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे आगंतुक दोषकरिकै दुष्टपुरुषोंका भगवद्भक्तिके प्रभावतैं विस्तार कथन कऱ्या । अब स्वाभाविक दोषकरिकै दुष्टपुरुषोंकाभी तिस भगवद्भक्तिके प्रभावतैं निस्तार कथन करैं हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः ॥
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यांति परां गतिम् ॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) माम् । हि । पार्थ । व्यपाश्रित्य । ये । अपि । स्युः । पापयोनयः । स्त्रियः । वैश्याः । तथा । शूद्राः । ते । अपि । यांति । पराम् । गतिम् ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकूं आश्रयणकरिकै जे पुरुष पापयोनि भी हैं तथा स्त्रिया हैं तथा वैश्य हैं तथा शूद्र हैं ते सर्व भी परम गतिकूं प्राप्त होवैं हैं यह वार्त्ता निश्चितंहीहै ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्तहोइकै जे प्राणी पापयोनिभी हैं अर्थात् जातिदोषकरिकै दुष्ट जे चांडालादिकभी हैं अथवा जे प्राणी सर्पादिक तिर्यक् योनिवालेभी हैं तथा वेदके अध्ययनादिकोंतैं रहित होणेतैं अतिनिकृष्ट जे स्त्रियाँ हैं तथा कृषिवाणिज्यादिक लौकिकव्यापारोंविषे तत्पर जे वैश्य हैं तथा शूद्रत्वजातितैंही वेदके अध्ययनादिकोंके अभावकरिकै परमगतिके अयोग्य जे शूद्र हैं ते सर्वही मैं परमेश्वरकी भक्तिके प्रभावतैं शुद्धअंतःकरणवाले होइकै ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूंही प्राप्त होवैंहैं । यह वार्त्ता तुमनैं निश्चितही जानणी । इस वार्त्ताविषे किंचित्मात्रभी तुमनैं संशय करणा नहीं । इहां (मां हि) या वचनविषे स्थित जो हि यह शब्द है ता हिशब्दकरिकै इस अर्थविषे शास्त्रप्रमाणकी प्रसिद्धि बोधन करीहै सो शास्त्रप्रमाण यह है । श्लोक—(किरातहूणां-

ध्रपुलिंदपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खशादयः । येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥) अर्थ यह—किरात, हूण, अंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खश इत्यादिक जे नीचजातिवाले प्राणी हैं तथा जे अन्यभी पाप-आचरणवाले हैं ते सर्वप्राणी जिस परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त होइकै शुद्धिकूं प्राप्त होवैं हैं, तिस परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार है इति । इहां (तेऽपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपि शब्दकरिकै (अपि चेत्सुदुराचारः) इस पूर्वश्लोकविषे कथन करेहुए दुराचारी पुरुषोंकाभी ग्रहण करणा ॥ ३२ ॥

तहां इसप्रकारके स्त्रीशूद्रादिक प्राणीभी जबी परमेश्वरके भक्तितैं परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं तबी ब्राह्मणादिक उत्तममनुष्य तिस भगवद्भक्तितैं परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं याकेविषे क्या आश्चर्य है । इस प्रकारके कैमुतिकन्यायकरिकै तिन उत्तम मनुष्योंकूं तिस भक्तिविषे प्रवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् ता भगवद्भक्तिके प्रभावकूं वर्णन करैं हैं—

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

(पदच्छेदः) किम् । पुनः । ब्राह्मणाः । पुण्याः । भक्ताः । राजर्षयः । तथा । अनित्यम् । असुखम् । लोकम् । इमम् । प्राप्य । भजस्व । माम् ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मेरे भक्त उत्तमजातिवाले ब्राह्मण तथा क्षत्रिय परमगतिकूं प्राप्तहोवैं हैं याके विषे पुनः क्या कहणाहै यातैं तूं इस अनित्य तथा दुःखयुक्त मनुष्यदेहकूं प्राप्त होइकै मैं परमेश्वरकूं आराधन कर ॥ ३३ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! जबी पूर्वउक्त स्त्रीशूद्रादिक प्राणीभी मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं । तबी श्रेष्ठ आचारवाले तथा उत्तमजातिवाले जे ब्राह्मण हैं तथा सूक्ष्मवस्तुके विवेक करणेहारे जे क्षत्रिय हैं ते ब्राह्मण तथा क्षत्रिय मैं परमेश्वरके भक्त तिस भक्तिकरिकै ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षरूप परमगतिकूं प्राप्त होवैं हैं याकेविषे पुनः क्या कहणा है किंतु इस वार्त्ताविषे किसीकूंभी संशय नहीं है । हे अर्जुन ! जिसकारणतैं मैं परमेश्वर-भक्तिका महान् प्रभाव है, इसकारणतैं सर्व पुरुषार्थोंके सिद्ध करणेकूं योग्य तथा

अत्यंत दुर्लभ इस अधिकारी मनुष्यदेहकूं प्राप्त होइकै तूं जितने कालपर्यंत वह मनुष्यदेह नाशकूं नहीं प्राप्त भया तथा रोगादिकोंकरिकै ग्रस्त नहीं भया तितनेकालपर्यंत अतिशीघ्रतातैं महान् प्रयत्नकरिकै मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त होउ। हे अर्जुन ! यह मनुष्यदेह कैसा है—अनित्य है अर्थात् शीघ्रही नाशहोणेहारा है। पुनः कैसा है यह देह—असुख है अर्थात् गर्भवासतैं आदिलैके अनेकप्रकारके दुःखोंकरिकै ग्रस्त है। हे अर्जुन ! यह शरीर अनित्य है तथा असुखरूप है, यातैं तूं मैं परमेश्वरके भजनविषे विलंब मतकर। तथा इस शरीरके सुखवासतै उद्यमकूं मतकर। हे अर्जुन ! जैसे पूर्व श्रेष्ठ आचारवाले जनकादिक राजऋषि मैं परमेश्वरके भजनकरिकै आपणे जन्मकूं सफल करते भयेहैं तैसे तूं अर्जुनभी मैं परमेश्वरके भजनकरिकै आपणे जन्मकूं सफल कर। जो तूं इस अधिकारी मनुष्यशरीरकूं प्राप्त होइकै मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण नहीं होवैगा तौ यह तुम्हारा अधिकारी मनुष्यशरीरही निष्फल होवैगा। यह वार्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति—(इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदवेदन्महतीविनष्टिः) अर्थ यह—इस भारतखंडविषे अधिकारी मनुष्यशरीरकूं प्राप्त होइकै यह पुरुष जबी परमात्मादेवकूं साक्षात्कार करै है तबी इस पुरुषकूं मोक्षरूप सत्यफलकीही प्राप्ति होवैहै। और यह पुरुष जबी इस अधिकारी मनुष्यशरीरकूं पाइकै तिस परमात्मादेवकूं नहीं साक्षात्कार करैहै तबी इस पुरुषकूं वारंवार जन्ममरणरूप संसारकीही प्राप्ति होवैहै ॥ ३३ ॥

अब पूर्व कथनकरेहुए भजनके प्रकारकूं कथन करतेहुए श्रीभगवान् इस नवमाध्यायकी समाप्ति करैहैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) मन्मनाः। भव। मद्भक्तः। मद्याजी। माम्। नमस्कुरु। माम्। एव। एष्यसि। युक्त्वा। एवम्। आत्मानम्। मत्परायणः॥ ३४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं मैं परमेश्वरविषे मनवाला होउ मेरा भक्त होउ तथा मेरे पूजनपरायण होउ तथा मैं परमेश्वरकूं नमस्कार कर इसप्रकारतैं मैं परमेश्वरके

शरणहुआ तूं आपणे अंतःकरणकूं मैं परमेश्वरविषे जोडिकरिकै मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त होवैगा ॥ ३४ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! जिसपुरुषका मन केवल मैं परमेश्वरविषेही संलग्न है अन्य पुत्रभार्यादिकोंविषे संलग्न है नहीं तिस पुरुषका नाम मन्मना है ऐसा मन्मना तूं होउ । और जो पुरुष एक मैं परमेश्वरकाही भक्त है धनादिकपदार्थोंकी प्राप्तिवासतै अन्यराजादिकोंका भक्त है नहीं तिस पुरुषका नाम मद्भक्त है ऐसा मद्भक्त तूं होउ। तात्पर्य यह–इस लोकविषे जो राजादिकोंका भृत्य होवैहै सो भृत्य धनादिक पदार्थोंकी प्राप्तिवासतै तिन राजादिकोंका भक्त हुआभी तिन राजादिकोंविषे तिस भृत्यका मन संलग्न होवै नहीं किंतु ता भृत्यका मन आपणे स्त्रीपुत्रादिकोंविषेही संलग्न होवैहै। यातैं सो भृत्य ता राजाका भक्त हुआभी तन्मना होवै नहीं । और आपणे पुत्रस्त्रीआदिकोंविषे सो भृत्य तन्मना हुआभी तिन स्त्री पुत्रादिकोंका भक्त होवै नहीं । तैसे तूं अर्जुन मैं परमेश्वरविषे भक्तिवाला हुआभी अन्यविषे मनवाला मत होउ। तथा मैं परमेश्वरविषे मनवाला हुआभी अन्यविषे भक्तिवाला मत होउ । किंतु तूं अर्जुन तौ मैं परमेश्वरविषेही मनवाला तथा भक्तिवाला होउ इति । तथा तूं अर्जुन मद्याजी होउ अर्थात् एक मैं परमेश्वरकेही पूजनपरायण होउ तथा शरीर मनवाणीकरिकै तूं मैं परमेश्वरकूंही नमस्कार कर । इसप्रकारतैं मत्परायण हुआ तूं अर्थात् एक मैं परमेश्वरके शरणागतकूं प्राप्त हुआ तूं आपणे अन्तःकरणकूं मैं परमेश्वरके चिंतनविषे जोडिकै मैं परमानंदघन स्वप्रकाश सर्व उपद्रवोंतैं रहित अभयब्रह्मकूंही घटाकाश महाकाशकी न्याई तथा नदीसमुद्रकी न्याई अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवैगा । तात्पर्य यह–जैसे घटरूप उपाधिके निवृत्तहुए घटाकाश अभेदरूपकरिकै महाकाशभावकूं प्राप्त होवैहै तथा जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे नामरूपका परित्यागकरिकै समुद्रविषे एकताभावकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे तूं अर्जुनभी मैं परमेश्वरकी भक्तितैं उत्पन्नहुए ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै अविद्यादिक सर्व उपाधियोंतैं रहितहुआ अभेदरूपकरिकै मैं निर्गुण ब्रह्मकूंही प्राप्त होवैगा । तहां श्रुति–(यथा नद्यः स्पंदमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छंति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।) अर्थ यह–जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे नामरूपका परित्यागकरिकै समुद्रविषे जाइकै एकताभावकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे यह विद्वान् पुरुषभी नामरूपतैं रहितहुआ सर्वतैं उत्कृष्ट स्वयंज्योति

परमात्मापुरुषकूंही अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवैहै इति । इहां किसी टीकाविषे तौ (मामेव आत्मानमेष्यसि) इसप्रकारतैं पदोंकी योजना करिकै (आत्मानम्) इसपदकरिकै परमात्माकाही ग्रहण कऱ्याहै ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

दशमाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व सप्तम अष्टम नवम इन तीन अध्यायोंकारिकै तत्पदार्थरूप परमेश्वरका सोपाधिक स्वरूप तथा निरुपाधिक स्वरूप दिखाया । तिस तत्पदार्थरूप परमेश्वरकी जे विभूतियां हैं ते विभूतियां तिस सोपाधिक स्वरूपके तौ ध्यानविषे उपायभूत हैं और ते विभूतियां तिस निरुपाधिक स्वरूपके तौ ज्ञानविषे उपायभूत हैं । ऐसी परमेश्वरकी विभूतियांभी सप्तम अध्यायविषे तौ (रसोहमप्सु कौंतेय) इत्यादिक वचनोंकारिकै और नवम अध्यायविषे तौ (अहं क्रतुरहं यज्ञः) इत्यादिक वचनोंकरिकै संक्षेपतैं कथन करी । तिन संक्षेपतैं कथन करीहुई विभूतियोंका विस्तार अब अवश्यकरिकै कहणेयोग्य है । काहेतैं कितनेक बहिर्मुखलोकोंकूं सो परमेश्वरका स्वरूप ध्यानकरणेवासतैभी अत्यंत दुर्विज्ञेय है । ऐसे स्वरूपका जो पुनःपुनः कथन है सो तिस स्वरूपके ज्ञानवासतैही है याकारणतैं श्रीभगवान्नैं यह दशम अध्याय प्रारंभ करीता है । तहां प्रथम अर्जुनके चित्तविषे उत्साह करावणेवासतै परम कृपालु श्रीभगवान् विनाही पूछेतैं ता अर्जुनके प्रति कहैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥
यत्तेहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) भूयः । एव । महाबाहो । शृणु । मे । परमम् । वचः । यत् । ते । अहम् । प्रीयमाणाय । वक्ष्यामि । हितकाम्यया ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः भी मैं परमेश्वरके उत्कृष्ट वचनकूं तूं श्रवणकर जो वचन मैं परमेश्वर तुम्हारे हितकी कामनाकारिकै तैं प्रीतिवालेके तांई कथन करताहूं ॥ १ ॥

भा० टी०—हे महान् बाहुवाला अर्जुन ! तूं पुनःभी मैं परमेश्वरके अत्यंत उत्कृष्ट वचनकूं श्रवण कर । जो वचन मैं परम आप्त परमेश्वर तुम्हारे इष्टके प्राप्तिकी इच्छाकरिकै तुम्हारे ताईं कथन करताहूं । अब अर्जुनके प्रति तिस वचनके उपदेश करणेकी योग्यताके बोधन करणेवासतै ता अर्जुनका विशेषण कहैंहैं (प्रीयमाणाय इति) हे अर्जुन ! जैसे अमृतके पानतैं प्रीतिका अनुभव करीताहै तैसे मैं परमेश्वरके वचनरूप अमृतके पानतैं तूं प्रीतिकूं अनुभव करणेहारा है यातैं तुम्हारे ताईं पुनःभी मैं उपदेश करता हूं । इहां (प्रीयमाणाय) इस वचनकारिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । इनोंके वचनोंकूं श्रवणकरिकै हमारे इष्टकी सिद्धि अवश्यकरिकै होवैगी या प्रकारकी दृढभावना करिकै जो पुरुष प्रीतिपूर्वक तिन वचनोंकूं श्रवण करैहै तिस अधिकारी पुरुषके ताईंही तत्त्ववेत्ता पुरुषनैं ब्रह्मविद्याका उपदेश करणा । ता प्रीतितैं रहित पुरुषके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश करणा नहीं । और तिस वचनका जो परम यह विशेषण कथन कऱ्या है ता परमविशेषणकारिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्याहै । जिसकारणतैं यह हमारा वचन अत्यंत उत्कृष्ट है तिसकारणतैं इस हमारे वचनके श्रवणतैं तुम्हारेकूं अवश्यकरिकै इष्ट अर्थकी प्राप्ति होवैगी ॥ १ ॥

हे भगवन् ! ऐसे वचन तौ पूर्व बहुतवार आप हमारे प्रति कथनकरि आये हो । तिन वचनोंकूं पुनः अबी किसवासतै कथन करतेहो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् दुर्विज्ञेय वस्तुका पुनःपुनः उपदेश करणेतैं ही बोध होवैहै या प्रकारके अभिप्रायकरिकै आपणे स्वरूपकी दुर्विज्ञेयताकूं कथन करैंहैं । अथवा । शंका—हे भगवन् ! हमारे प्रति तैं परमेश्वरके स्वरूपका उपदेश करणेहारे इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक ऋषि बहुत हैं तिनोंके वचनश्रवणतैं ही हमारेकूं आपके स्वरूपका ज्ञान होवैगा । इसविषे आपके कहणेका क्या प्रयोजन है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए जिन इंद्रादिकोंके वचनतैं तूं हमारे स्वरूपका ज्ञान चाहता है तिन इंद्रादिकोंकूं ही हमारा स्वरूप दुर्विज्ञेय है इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ॥
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) न । मे । विदुः । सुरगणाः । प्रभवम् । न । महर्षयः । अहम् । आदिः । हि । देवानाम् । महर्षीणाम् । च । सर्वशः ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमश्वरके प्रभावकूं इंद्रादिकदेवता नहीं जानैंहैं तथा भृगुआदिक महान्ऋषिभी नहीं जानैं हैं जिसकारणतैं मैं परमेश्वर तिन देवतावोंका तथा तिन महान् ऋषियोंका सर्वप्रकारतैं कारण हूं ॥ २ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका जो प्रभाव है अर्थात् आकाशादिक सर्वप्रपंचके उत्पत्ति, स्थिति, संहार, प्रवेश, नियमन, निग्रह, अनुग्रह इत्यादिकोंके करणेका जो सामर्थ्यरूप प्रभाव है अथवा अनेकविभूतियोंकरिकै आविर्भावरूप जो प्रभाव है तिस हमारे प्रभावकूं इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक महान्ऋषि सर्वज्ञ हुएभी जानते नहीं । शंका-हे भगवन् ! ते इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक महान् ऋषि तिस आपके प्रभावकूं किस कारणतैं नहीं जानतेहैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताके न जानणेविषे हेतु कहैंहैं (अहमादिर्हि इति) हे अर्जुन ! जिस कारणतैं मैं परमेश्वर तिन इंद्रादिक देवतावोंका तथा तिन भृगुआदिक महान् ऋषियोंका सर्वप्रकारतैं कारण हूं अर्थात् मैं परमेश्वर तिन इंद्रादिक देवतावोंके तथा भृगुआदिक ऋषियोंके उत्पादकपणेकरिकै तथा बुद्धिआदिकोंका प्रवर्त्तकपणे करिकै कारण हूं अथवा मैं परमेश्वर तिनोंका उपादानरूपकरिकै तथा निमित्तरूपकरिकै कारण हूं तिस कारणतैं ते इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक ऋषि मैं परमेश्वरके कार्य होणेतैं कारणरूप मैं परमेश्वरके प्रभावकूं जानिसकते नहीं। जैसे पिताके प्रभावकूं पुत्र जानिसकता नहीं। यातैं मैं परमेश्वरही आपणा प्रभाव तुम्हारे ताईं कथन करता हूं । तहां परमेश्वरतैं ही सर्वदेवतावों तथा सर्वऋषियोंकी उत्पत्ति होवैहै । यह वार्त्ता (तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः यस्मिन्युक्ता महर्षयो देवताश्च ।) इत्यादिक श्रुतियोंविषे प्रसिद्धही है ॥ २ ॥

तहां सो परमेश्वरके प्रभावका ज्ञान महान् फलका हेतु है; यातैं कोईक अधिकारीजन ही तिस परमेश्वरके प्रभावकूं जानैंहैं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं । अथवा । शंका-हे भगवन् ! ते इंद्रादिक देवता तथा भृगुआदिक ऋषि जो कदाचित् आप परमेश्वरके प्रभावका उपदेश करणेविषे समर्थ नहीं हैं तौ आपही हमारे प्रति ता आपणे प्रभावका उपदेश करौ परंतु तिस आपके प्रभावके जानणेकरिकै हमारेकूं कौन फल होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता ज्ञानका फल कथन करैंहैं-

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) यः । माम् । अजम् । अनादिम् । च । वेत्ति । लोकमहेश्वरम् । असंमूढः । सः । मर्त्येषु । सर्वपापैः । प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जन्मतैं रहित तथा कारणतैं रहित तथा सर्वलोकोंका महान् ईश्वर ऐसे मैं परमेश्वरकूं जो पुरुष जानै है सो पुरुष सर्वमनुष्योंके मध्यविषे संमोहतैं रहितहुआ सर्वपापोंनैं परित्याग करीताहै ॥ ३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही सर्वजगत्का कारण हूं । यातैं नहीं विद्यमान है आदि क्या कारण जिसका ताका नाम अनादि है ऐसा अनादिरूप मैं परमेश्वर हूं । और अनादि होणेतैं ही मैं परमेश्वर अज हूं अर्थात् उत्पत्तिरूप जन्मतैं रहित हूं । तथा सर्वलोकोंका महेश्वर हूं । ऐसे मैं परमेश्वरकूं जो अधिकारी पुरुष आपणे आत्मासे अभिन्नरूप करिकै साक्षात्कार करैहै सो पुरुष सर्व मनुष्योंके मध्यविषे असंमूढ हुआ अर्थात् अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा आत्मा अनात्माके तादात्म्य अध्यासरूप संमोहतैं रहित हुआ सर्व पापोंतैं मुक्त होवैहै अर्थात् बुद्धिपूर्वक करेहुए तथा अबुद्धिपूर्वक करेहुए भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्व पापोंतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष मुक्त होवैहै । इहां (प्रमुच्यते) इस वचनविषे स्थित जो प्र यह शब्द है ता प्रशब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या–यद्यपि अज्ञानी पुरुषभी तिन पापकर्मोंके भोगकरिकै तथा प्रायश्चित्तकरिकै तिन पापकर्मोंतैं मुक्त होवैं हैं तथापि ते अज्ञानी पुरुष ताकरिकै तिन पापकर्मोंतैं अत्यंतमुक्त होवैं नहीं । काहेतैं सर्वपापकर्मोंका कारणरूप जो अज्ञान है तथा ता अज्ञानकृत जो देहादिकोंविषे अहं मम अध्यास है सो अज्ञान तथा अध्यास तिन अज्ञानीपुरुषोंविषे विद्यमान है तिसतैं पुनः पापोंकी उत्पत्ति होवैहै और भोगकरिकै निवृत्तहुएभी ते पापकर्म संस्काररूपतैं तिन अज्ञानी पुरुषोंविषे बनेरहैं हैं, या कारणतैंही तिन संस्कारोंके वशतैं ते अज्ञानी पुरुष पुनः तिन पापकर्मोंविषे प्रवृत्त होवैं हैं । और तत्त्ववेत्ता पुरुष तौ आत्मसाक्षात्कारकरिकै अज्ञानरूप मूलकारणकी तथा तत्जन्य अहं मम अध्यासकी तथा संस्कारसहित सर्वपापकर्मोंकी निःशेषतैं निवृत्ति होइजावैहै । यातैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुषही तिन सर्वपापकर्मोंतैं अत्यंत मुक्त होवैहै । इस

अर्थविषे (क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे । ज्ञानाऽग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥) इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचन प्रमाणरूप हैं ॥ ३ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे (लोकमहेश्वरम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आपणेविषे सर्वलोकोंका महेश्वरपणा कथन कऱ्या । अब तिसी सर्वलोकमहेश्वरपणेकूं विस्तारतैं प्रतिपादन करैं हैं-

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ॥
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ॥
भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) बुद्धिः । ज्ञानम् । असंमोहः । क्षमा । सत्यम् । दमः । शमः । सुखम् । दुःखम् । भवः । भावः । भयम् । च । अभयम् । एव । च । अहिंसा । समता । तुष्टिः । तपः । दानम् । यशः । अयशः । भवंति । भावाः । भूतानाम् । मत्तः । एव । पृथग्विधाः ॥ ४ ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! बुद्धि ज्ञान असंमोह क्षमा सत्य दम शम सुख दुःख भव भाव भय तथा अभय अहिंसा समता तुष्टि तप दान यश अयश यह लोकप्रसिद्ध नानाप्रकारके कार्यविशेष सर्व प्राणियोंके मैं परमेश्वरतैं ही उत्पन्न होवैं हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! सर्वप्राणियोंके यह बुद्धितैं आदिलैके अयशपर्यंत कार्यविशेष मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न होवैं हैं अन्य किसीतैं उत्पन्न होवैं नहीं । अब तिन बुद्धिआदिकोंका स्वरूप कथन करैहैं । तहां अंतःकरणविषे जो सूक्ष्म अर्थके विवेककरणेका सामर्थ्य है ताका नाम बुद्धि है और आत्मा अनात्मारूप सर्वपदार्थोंका जो अवबोधहै ताका नाम ज्ञानहै और ज्ञातव्यतारूपकरिकै अथवा कर्त्तव्यतारूपकरिकै प्राप्तभये जे पदार्थ हैं तिन पदार्थोंविषे व्याकुलतातैं रहित होइकै जा विवेकपूर्वक प्रवृत्तिहै अर्थात् ताके इष्टअनिष्टरूप फलके विचारपूर्वक जा प्रवृत्ति है ताका नाम असंमोह है और कठोरवाणीकरिकै अथवा दंडादिकों करिकै ताडन करेहुए पुरुषके चित्तका जो निर्विकारपणा है अर्थात् तिस ताडनकरणेहारे प्राणीके अनिष्टका नहीं चिंतनकरणा है ताका नाम क्षमा है । अथवा आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक या तीन

प्रकारके उपद्रवोंके सहन करणेका जो स्वभाव है ताका नाम क्षमा है । तहां ज्वरादिक रोग आध्यात्मिक उपद्रव कहेजावैं हैं । और अतिशीत अतितप्त अतिवर्षा इत्यादिक आधिदैविक उपद्रव कहेजावैं हैं । और सर्प व्याघ्र शत्रु इत्यादिक आधिभौतिक उपद्रव कहेजावैं हैं इति । और प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै जो अर्थ जिसप्रकारतैं निश्चय कऱ्याहै तिस अर्थकूं तिसीप्रकारतैं कथन करणा याका नाम सत्य है । और श्रोत्रादिक बाह्यइंद्रियोंकी जा शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्ति है ताका नाम दम है । और अंतःकरणकी जा तिन शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्ति है ताका नाम शम है । और केवल धर्म है असाधारण कारण जिसका तथा अनुकूलतारूप करिकैही सर्व प्राणियोंके ज्ञानका विषय ऐसा जो आनंद है ताका नाम सुख है । और केवल अधर्म है असाधारण कारण जिसका तथा प्रतिकूलतारूप करिकै ही सर्वप्राणियोंके ज्ञानका विषय ऐसा जो परिताप है ताका नाम दुःख है । और उत्पत्तिका नाम भव है । और सत्ता नाम भाव है । अथवा (भवो भावः) इस वचनविषे भवः अभावः या प्रकारका पदच्छेद करणा । तहां असत्ता नाम अभावका है । और त्रासका नाम भय है । त्रासतैं रहितहोणेका नाम अभय है । इहां (भयं चाभयमेव च) इस वचनविषे स्थित प्रथम चकार तौ पूर्वउक्त बुद्धिआदिकोंके समुच्चय करावणेवासतै है और दूसरा चकार तौ पूर्व नहीं कथनकरेहुए बुद्धिआदिकोंके विरोधी अबुद्धि अज्ञान संमोह अक्षमा असत्य इत्यादिकोंके समुच्चय करावणेवासतै है और एव यह शब्द तिन बुद्धि आदिकोंविषे सर्वलोकप्रसिद्धताके बोधन करणेवासतै है अर्थात् यह बुद्धि आदिक सर्वलोकविषे प्रसिद्धही हैं इति । और स्थावर जंगम सर्वप्राणियोंकी पीडातैं जा निवृत्ति है ताका नाम अहिंसा है अर्थात् शरीर मन वाणीकरिकै जो किसीभी प्राणीमात्रकूं पीडाकी नहीं प्राप्तिकरणी ताका नाम अहिंसा है । और इष्टवस्तुके तथा अनिष्टवस्तुके प्राप्तहुएभी जा चित्तकी रागद्वेषादिकोंतैं रहित अवस्था है ताका नाम समता है । और प्रारब्धकर्मके वशतैं यत्किंचित् भोग्यपदार्थोंके प्राप्तहुए इतने पदार्थोंकरिकै ही हमारेकूं तृप्ति है या प्रकारकी जा अलंबुद्धि है जिसकूं संतोष कहैं हैं ताका नाम तुष्टि है । और शास्त्रउपदिष्टमार्गकरिकै जो शरीरइंद्रियोंका शोषण है अर्थात् कृच्छ्रचांद्रायणादिकव्रतोंकरिकै जो शरीरइंद्रियोंके बलकी क्षीणता करणी है ताका नाम तप है । और उत्तम देशकालविषे सत्पात्रविषे श्रद्धाकरिकै यथाशक्ति परिमाण जो अन्नसुवर्णादिक पदार्थोंका समर्पण

है ताका नाम दान है । और धर्मरूप निमित्ततैं उत्पन्नभई जा लोकविषे प्रशंसादिरूप प्रसिद्धि है ताका नाम यश है । और अधर्मरूप निमित्ततैं उत्पन्नभई जा लोकविषे निंदारूप प्रसिद्धि है ताका नाम अयश है यह बुद्धितैं आदिलैके अयशपर्यंत जे कार्यविशेष हैं जे बुद्धिआदिक कार्य धर्मअधर्मादिक साधनोंकी विचित्रता करिकै नानाप्रकारके हैं । ऐसे सर्वप्राणियोंके बुद्धिआदिक पदार्थ आपणे आपणे कारणोंसहित मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न होवैंहैं । अन्य किसीतैं ते बुद्धिआदिक उत्पन्न होवैं नहीं । ऐसे सर्वके कारणरूप मैं परमेश्वरविषे तिन सर्वलोकोंका महेश्वरपणा है याकेविषे क्या कहणा है ॥ ४ ॥ ५॥

हे अर्जुन ! केवल बुद्धि आदिकोंका कारण होणेतैं मैं परमेश्वरविषे सो सर्वलोकोंका महेश्वरपणा नहीं है । किंतु भृगुआदिक महान् ऋषियोंका तथा स्वायंभुवादिक मनुवोंका कारण होणेतैंभी मैं परमेश्वरविषे सो सर्वलोकोंका महेश्वरपणा है । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) महर्षयः । सप्त । पूर्वे । चत्वारः । मनवः । तथा । मद्भावाः । मानसाः । जाताः । येषाम् । लोके । इमाः । प्रजाः ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नहुए जे भृगुआदिक सप्त महाऋषि हैं तथा सावर्णी आदिक च्यारि मनु हैं जे भृगुआदिक मैं परमेश्वरके चिंतनपरायण हैं तथा मनके संकल्पमात्रतैं उत्पन्नहुए हैं तथा जिन भृगुआदिकोंकी इसलोकविषे यह ब्राह्मणादिक प्रजा है ते भृगुआदिकभी मैं परमेश्वरतैंही उत्पन्न हुएहैं ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नहुए जे भृगुआदिक सप्त महाऋषि हैं कैसे हैं ते भृगुआदिक सप्तऋषि–वेदोंके पाठकूं तथा वेदोंके अर्थकूं भलीप्रकारतैं जानणेहारे हैं । तथा सर्वज्ञ हैं । तथा वेदविद्याके संप्रदायकी प्रवृत्तिकरणेहारेहैं । या कारणतैंही तिन भृगुआदिक सप्तऋषियोंकूं शास्त्रविषे महाऋषि कहेहैं । तहां तिन भृगुआदिक सप्तऋषियोंके नाम तथा सृष्टिके आदिकालविषे तिन्होंकी उत्पत्ति पुराणोंविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक– (भृगुं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं च महातेजाः सो सृजन्मन-

सा सुतान् ॥) अर्थ यह–भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ इन सप्तऋषिरूप पुत्रोंकूं सो महान्‌तेजवाला ब्रह्मा सृष्टिके आदिकालविषे आपणे मनकरिकै उत्पन्न करताभया इति। तथा सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नहुए जे सावर्णिआदिक नामकरिकै प्रसिद्ध च्यारि मनु हैं। अथवा (महर्षयः सप्त) इस वचनकरिकै तौ भृगुआदिक सप्त महाऋषियोंका ग्रहण करणा । और (पूर्वे चत्वारः) इस वचनकरिकै तिन भृगुआदिक सप्तऋषियोंतैंभी पूर्वउक्त हुए सनकादिक च्यारि महाऋषियोंका ग्रहण करणा। और (मनवस्तथा) इस वचनकरिकै स्वायंभुव आदिक चतुर्दश मनुवोंका ग्रहण करणा इति । कैसे हैं ते भृगुआदिक, सर्व मद्भाव हैं। तहां मैं परमेश्वरविषे है भाव क्या भावना जिन्होंकी तिन्होंका नाम मद्भाव है अर्थात् मैं परमेश्वरका चिंतनरूप भावनाके वशतैं आविर्भूत हुआहै मैं परमेश्वरका ज्ञान तथा ऐश्वर्य तथा नानाप्रकारकी शक्तियां जिनोंकूं। पुनः कैसे हैं ते भृगुआदिक–मानस हैं अर्थात् ब्रह्माके मनके संकल्पमात्रतैंही उत्पन्नहुएहैं। अन्य मनुष्योंकी न्याईं योनितैं उत्पन्नहुए नहीं। इसी कारणतैंही विशुद्धजन्मवाले होणेतैं ते भृगुआदिक सर्वप्राणियोंतैं श्रेष्ठ हैं। और शास्त्रविषे(योनिं विना न शरीरम्) यह जो वचन कह्या है सो इस वचनविषे योनिशब्द स्त्रीके योनिका वाचक नहीं है किंतु सो योनिशब्द कारणका वाचक है अर्थात् कारणतैं विना शरीर उत्पन्न नहीं होवैहै इति। ऐसे भृगु आदिक सप्त महाऋषि तथा सनकादिक च्यारि महाऋषि तथा स्वायंभुवादिक चतुर्दश मनु यह सर्व सृष्टिके आदिकालविषे हिरण्यगर्भरूप मैं परमेश्वरतैं ही उत्पन्न होते भये हैं। जिन भृगु आदिक सप्तऋषियोंकी तथा सनकादिक च्यारि महाऋषियोंकी तथा स्वायंभुवादिक चतुर्दश मनुवोंकी इसलोकविषे जन्मकरिकै तथा विद्याकरिकै यह ब्राह्मणादिक सर्व प्रजा संततिरूप है इति। इहां किसी टीकाविषे तौ (लोक इमाः) इस वचनविषे लोकः यह प्रथमा विभक्ति अंतपद ग्रहणकरिकै यह अर्थ कथन कऱ्या है। जिन भृगु आदिकोंकी यह जरायुजादिक च्यारि प्रकारकी प्रजा तथा ता प्रजाके निवासका आधारभूत यह लोक दोनों संततिरूप हैं इति। अथवा (येषाम्) यह षष्ठी विभक्ति(येभ्यः) इस पंचमी विभक्तिके अर्थ विषे है यातैं यह अर्थ सिद्ध होवैहै। जिन भृगु आदिकोंतैं यह जरायुजादिक च्यारि प्रकारकी प्रजा तथा यह लोक उत्पन्न होताभया है ऐसे भृगु आदिकोंकाभी कारणरूप मैं परमेश्वरविषे सर्वलोकोंका महेश्वरपणा है याके विषे क्या कहणा है ॥ ६ ॥

इस कारणतैं सोपाधिक परमेश्वरके प्रभावकूं कथन करिकै अब तिस प्रभावके ज्ञानका फल कथन करैंहैं—

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) एताम् । विभूतिम् । योगम् । च । मम । यः । वेत्ति । तत्त्वतः । सः । अविकंपेन । योगेन । युज्यते । न । अत्र । संशयः ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष मैं परमेश्वरके इस पूर्वउक्त विभूतिकूं तथा योगकूं यथावत् जानै है सो पुरुष अचल योगकरिकै युक्तहोवैहै इसविषे कोईभी प्रतिबंध नहीं है ॥ ७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व (बुद्धिर्ज्ञानम्) इत्यादिक तीन श्लोकोंकारिकै कथन करी हुई जा बुद्धितैं आदिलैके अयशपर्यंत मैं परमेश्वरकी विभूति है तथा भृगुआदिक सप्त महाऋषिरूप तथा सनकादिक च्यारि महाऋषिरूप तथा स्वायंभुवादिक चतुर्दशमनुरूप जा हमारी विभूति है अर्थात् तिसतिस बुद्धिआदिरूप करिकै तथा तिस तिस महाऋषि आदिरूपकरिकै जा मैं परमेश्वरकी स्थिति है ऐसी मैं परमेश्वरकी विभूतिकूं जो अधिकारी पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशतैं यथावत् जानैहै तथा जो अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरके योगकूं यथावत् जानैहै, इहां तिस तिस अर्थके उत्पन्न करणेका सामर्थ्यरूप जो परमऐश्वर्य है ताका नाम योग है ऐसे परम ऐश्वर्यरूप योगकूं जो पुरुष जानै है सो अधिकारीपुरुष चलायमानतातैं रहित योगकरिकै युक्त होवैहै। अर्थात् सो पुरुष तत्त्वज्ञानकी स्थिरतारूप समाधिकरिकै युक्त होवैहै । हे अर्जुन ! इस हमारी विभूतिके तथा योगके जानणेहारे पुरुषकूं ता समाधिरूप योगकी प्राप्तिविषे कोईभी संशय नहीं है अर्थात् कोईभी प्रतिबंध करणेहारा नहीं है ॥ ७ ॥

तहां परमेश्वरके जिस विभूति योग दोनोंके ज्ञानकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं अचलसमाधिरूप योगकी प्राप्ति होवैहै तिस ज्ञानके स्वरूपकूं अब श्रीभगवान् च्यारि श्लोकोंकारिकै वर्णन करैंहैं—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ॥
इति मत्त्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) अहम् । सर्वस्य । प्रभवः । मत्तः । सर्वम् । प्रवर्त्तते । इति । मत्वा । भजंते । माम् । बुधाः । भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरही सर्वजगत्के उत्पत्तिका कारणहूं तथा मैं परमेश्वरतैंही सर्व प्रवृत्त होवैंहैं इसप्रकारतें मानिकरिकै बुद्धिमान् जन प्रेमरूपभावकरिकै युक्त हुए मैं परमेश्वरकूं आराधन करैंहैं ॥ ८ ॥

भा॰टी॰–हे अर्जुन ! वासुदेवनामा मैं परब्रह्मही इस सर्वजगत्के उत्पत्तिका कारण हूं अर्थात् मैं परमेश्वरही इस सर्वजगत्का उपादानकारणरूप हूं तथा निमित्तकारणरूप हूं। तथा इसजगत्के स्थितिनाशादिक सर्व व्यवहारभी मैं परमेश्वरतैंही प्रवर्त्त होवैंहैं अर्थात् सर्वशक्तिसंपन्न तथा सर्वज्ञ ऐसे मैं अंतर्यामी परमेश्वरकारिकै प्रेरणा कऱ्याहुआ यह सूर्यचंद्रमादिक सर्वजगत् आपणी आपणी मर्यादाका नहीं उल्लंघनकारिकै प्रवर्त्त होवैहै । अथवा प्रत्यक्साक्षी आत्मारूप मैं परमेश्वरकी सत्तास्फूर्त्तिकूं पाइकै यह बुद्धि इंद्रियादिक सर्वप्रपंच नानाप्रकारकी चेष्टाकूं करैहै । इस प्रकारके मैं परमेश्वरके स्वरूपकूं जानिकरिकै विवेककरिकै जान्या है तत्त्ववस्तु जिन्होंनैं ऐसे बुद्धिमान् पुरुष परमार्थतत्त्वका ग्रहणरूप प्रेमरूपभावकरिकै युक्त हुए मैं परमेश्वरकूं भजैंहैं अर्थात् नित्य निरंतर मैं परमेश्वरकाही चिंतन करैं हैं ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! सो आपका प्रेमपूर्वक भजन कैसा होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस प्रेमपूर्वक भजनका स्वरूप वर्णन करैं हैं–

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ॥
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमंति च ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) मच्चिताः । मद्गतप्राणाः । बोधयंतः । परस्परम् । कथयंतः । च । माम् । नित्यम् । तुष्यंति । च । रमंति । च ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे है चित्त जिन्होंका तथा मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहुए हैं प्राण जिन्होंके तथा परस्पर मैं परमेश्वरकाही बोधन करतेहुए तथा नित्यही मैं परमेश्वरकूं कथन करतेहुए ते हमारे भक्त संतोषकूं प्राप्तहोवैंहैं तथा सुखकूं अनुभव करैंहैं ॥ ९ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषेही है चित्त जिन्होंका तिनोंका नाम

मच्चित्त है। अथवा मैं परब्रह्महीं हूं चित्तविषे जिन्होंके तिन्होंका नाम मच्चित्त है अर्थात् जे पुरुष चित्तकरिकै मैं परमेश्वरकाही सर्वदा चिंतन करैं हैं और मैं परमेश्वरकूं ही प्राप्त हुए हैं प्राण क्या चक्षु आदिक इंद्रिय जिन्होंके तिन्होंका नाम मद्गतप्राण है अर्थात् मैं परमेश्वरके वासतै ही है चक्षु आदिक इंद्रियोंका व्यापार जिन्होंके तिन्होंका नाम मद्गतप्राण है। अथवा बाह्यविषयोंतैं निवृत्त करिकै मैं परमेश्वरविषे ही लय करैं हैं चक्षु आदिक सर्व करण जिन्होंनैं तिन्हों- का नाम मद्गतप्राण है। अथवा मैं परमेश्वरके भजनअर्थ है प्राण क्या जीवन जिन्होंका अन्य किसी प्रयोजनवासतैं जिन्होंका जीवन है नहीं तिन्होंका नाम मद्गतप्राण हैं। तथा जे पुरुष विद्वान् पुरुषोंकी सभाविषे श्रुतिवचनोंक- रिकै तथा श्रुतिअनुकूल युक्तियोंकरिकै अन्योन्य मैं परमेश्वरकाही बोधन करैं हैं तथा जे पुरुष नित्यप्रति आपणे श्रद्धावान् शिष्योंके ताईं मैं परमेश्वरकाही ज्ञेयरूपकरिकै तथा ध्येयरूपकरिकै उपदेश करैं हैं इस प्र- कार मैं परमेश्वरविषे जो चित्तका अर्पण है तथा बाह्यनेत्रादिक करणोंका अर्पण है तथा आपणे जीवनका अर्पण है तथा स्वसमान पुरुषोंका जो परस्पर मैं परमेश्वरका बोधन है तथा आपणेतैं न्यूनबुद्धिवाले शिष्योंके ताईं जो मैं परमेश्वरका उपदेश करणा है यहही मैं परमेश्वरका भजन है। इस प्रकारके मैं परमेश्वरके भजनकरिकैही ते विद्वान् पुरुष तोषकूं प्राप्त हुएहैं अर्थात् इस परमेश्वरके भजनकी प्राप्तकरिकैही हम कृतकृत्य हुएहैं इस भगवद्भजनतैं अन्य कोईभी पदार्थ हमारे इष्टका साधन नहीं है इस प्रकारके ज्ञानरूप संतोषकूं प्राप्त हुएहैं। तथा तिस संतोषकरिकै ही ते विद्वान् जन सर्वतैं उत्तम सुखकूं अनुभव करैं हैं। संतोषकरिकै ही उत्तम सुखकी प्राप्ति होवैहै यह वार्त्ता पतंजलि भग- वान्नैंभी कथन करीहै। तहां सूत्र–(संतोषादनुत्तमः सुखलाभः इति ।) अर्थ यह–इस अधिकारी पुरुषकूं तिस संतोषतैंही सर्वतैं उत्तम सुखकी प्राप्ति होवैहै। यह वार्त्ता पुराणविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक–(यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।) अर्थ यह– इसलोकविषे जितनाक विषयजन्य सुख है तथा स्वर्गादिक लोकोंविषे जितनाक विषयजन्य महान् दिव्यसुखहै ते सर्वसुख तृष्णाकी निवृत्तिरूप संतोषजन्यसुखके षोडशवें भागके तुल्यभी नहीं होवैं हैं ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जे अधिकारी जन इस पूर्वउक्त प्रकारतैं मैं परमेश्वरका भजन करैंहैं तिन अधिकारी जनोंकूं मैं परमेश्वरभी तिस बुद्धियोगकी प्राप्तिकरिकै आपणे निर्गुणस्वरूपकीही प्राप्ति करूंहूं । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं–

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते॥ १० ॥

(पदच्छेदः) तेषाम् । सततयुक्तानाम् । भजताम् । प्रीतिपूर्वकम् । ददामि । बुद्धियोगम् । तम् । येन । माम् । उपयांति । ते ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरविषे है एकाग्रबुद्धि जिन्होंकी तथा प्रीतिपूर्वक मैं परमेश्वरका भजन करणेहारे तिन भक्तजनोंके तिस पूर्वउक्त बुद्धियोगकूं मैं परमेश्वर उत्पन्नकरूंहूं जिस बुद्धियोगकरिकै ते भक्तजन मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूपकरिकै प्राप्तहोवैंहैं ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्व (मच्चित्ता मद्गतप्राणाः) इस श्लोककरिकै कथन कऱ्या जो मैं परमेश्वरके भजनका प्रकार है तिस प्रकारकरिकै जे पुरुष मैं परमेश्वरका भजन करैंहैं । तथा सर्वकालविषे मैं परमेश्वरविषे है एकाग्रबुद्धि जिन्होंकी इसीकारणतैंही जे पुरुष लाभ, पूजा, ख्याति इत्यादिक लौकिक प्रयोजनोंकी नहीं इच्छा करतेहुए अत्यंत प्रीतिपूर्वक एक मैं परमेश्वरकाही भजन करैंहैं । तिन भक्तजनोंके तिस पूर्वउक्त बुद्धियोगकूं मैं परमेश्वरही उत्पन्न करूंहूं । अर्थात् (सोऽविकंपेन योगेन युज्यते) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो मैं परमेश्वरके वास्तवस्वरूपकूं विषय करणेहारा सम्यक् दर्शनरूप बुद्धियोग है तिस बुद्धियोगकूं मैं परमेश्वरही उत्पन्न करूंहूं । शंका–हे भगवन् ! तिस बुद्धियोगकरिकै तिन अधिकारी जनोंकूं कौन फल प्राप्त होवैहै ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता बुद्धियोगका फल कथन करैंहैं । (येन मामुपयांति ते इति) हे अर्जुन ! जिस बुद्धियोगकरिकै ते हमारे भक्तजन मैं परमेश्वरकूंही आपणा आत्मारूपकरिकै प्राप्त होवैंहैं अर्थात् जैसे घटरूप उपाधिके निवृत्त हुए घटाकाश अभेदरूपकरिकै महाकाशकूं प्राप्त होवै है तथा जैसे श्रीगंगायमुनादिक नदियां आपणे आपणे नामरूपका परित्यागकरिकै समुद्रविषे अभेदभावकूं प्राप्त होवैं हैं तैसे ते हमारे भक्तजनभी हमारी भक्तिकरिकै उत्पन्नहुए तत्त्वसाक्षा-

त्कारकारिकै मैं परमेश्वरकूं अभेदरूपकारिकै प्राप्त होवैं हैं अर्थात् मैं अद्वितीय निर्गुणपरमेश्वरकूं आपणा आत्मारूपही जानैंहैं ॥ १० ॥

तहां आपणे भक्तजनोंके प्रति परमेश्वरनैं प्राप्त कऱ्या जो तत्त्वज्ञानरूप बुद्धियोग है सो बुद्धियोग जिस अज्ञानकी निवृत्तिरूप व्यापारवाला हुआ आनंदस्वरूप आत्माकी प्राप्तिरूप फलकी प्राप्ति करै है, तिस मध्यवर्त्ती व्यापारकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं-

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) तेषाम् । एव । अनुकंपार्थम् । अहम् । अज्ञानजम् । तमः । नाशयामि । आत्मभावस्थः । ज्ञानदीपेन । भास्वता ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिन भक्तजनोंके ही अनुग्रहार्थ तिन्होंके आत्माकारवृत्तिविषे स्थितहुआ मैं परब्रह्म चिदाभासयुक्त तिसँ वृत्तिज्ञानरूप दीपककारिकै तिन्होंके अज्ञानजन्य आवरणरूप तमकूं नाश करूंहूं ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! पूर्वउक्त रीतिसैं जे अधिकारी जन मैं परमेश्वरका भजन करैं हैं, तिन भक्तजनोंकेही अनुकंपार्थ अर्थात् इन हमारे भक्तजनोंका किसीभी प्रकारकारिकै श्रेय होवै याप्रकारके अनुग्रहवासतै मैं स्वप्रकाश चैतन्य आनंद अद्वितीयरूप प्रत्यक् आत्मा तिन भक्तजनोंके आत्मभावविषे स्थित हुआ अर्थात् तिन भक्तजनोंकी महावाक्यतैं जन्य जा आत्माकार अंतःकरणकी वृत्ति है ता वृत्तिविषे विषयतारूपकारिकै स्थित हुआ तिसीही चिदाभासयुक्त अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानदीपकारिकै अज्ञानजन्य तमकूं नाश करूंहूं। अर्थात् अज्ञान है उपादानकारण जिसका ऐसा जो मिथ्याज्ञानरूप आत्मविषयक आवरणरूप अंधकार है तिस आवरणरूप तमकूं ताके उपादानकारणरूप अज्ञानका नाशकारिकै नाश करूंहूं । काहेतैं लोकप्रसिद्ध सर्व भ्रमस्थलविषे तिस भ्रमका उपादानकारण जो अज्ञान है सो अज्ञान अधिष्ठानके ज्ञानकारिकैही निवृत्त होवैहै अन्य किसी उपायकारिकै सो अज्ञान निवृत्त होवै नहीं । जैसे सर्परजतादिरूप भ्रमका उपादानकारण जो अज्ञान है सो अज्ञान रज्जु शुक्ति आदिक अधिष्ठानके ज्ञानकारिकैही निवृत्त होवै है अन्य किसी उपायकारिकै ता अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं । तथा सर्व

स्थलविषे उपादानकारणके नाश करिकै उपादेयरूप कार्यकाभी अवश्यकरिकै नाश होवैहै । जैसे मृत्तिका तंतु आदिक उपादानकारणके नाशकरिकै उपादेयरूप घटपटादिक कार्योंकाभी अवश्यकरिकै नाश होवैहै। तैसे आत्माकार अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानकरिकै अज्ञानरूप उपादानकारणके नाश हुएतैं तिस तमरूप उपादेयका नाशभी अवश्यकरिकै होवैहै । इहां (ज्ञानदीपेन) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नै आत्मज्ञानविषे दीपककी सादृश्यतारूप रूपालंकार कथन कऱ्या । ता रूपालंकार करिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या—जैसे दीपककरिकै अंधकारकी निवृत्तिकरणेविषे केवल तद्दीपककी उत्पत्तिमात्रही अपेक्षित होवैहै तिस दीपककी उत्पत्तितैं भिन्न दूसरे किसी कर्मकी अथवा अभ्यासकी अपेक्षा होवै नहीं ।और ता दीपककरिकै अंधकारकी निवृत्ति हुएतैं अनंतर पूर्व विद्यमान घटादिक वस्तुवोंकीही अभिव्यक्ति होवैहै पूर्व नहीं उत्पन्न हुई किसी वस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं ।तैसे आत्मज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्तिकरणेविषे तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिमात्रही अपेक्षित होवैहै। तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तितैं भिन्न दूसरे किसी कर्मकी अथवा अभ्यासकी अपेक्षा होवै नहीं। और ता आत्मज्ञानकरिकै अज्ञानकी निवृत्तितैं अनंतर पूर्व विद्यमान हुएही ब्रह्मभावरूप मोक्षकी अभिव्यक्ति होवैहै कोई पूर्व नहीं उत्पन्न हुए मोक्षकी तिस आत्मज्ञानवैं उत्पत्ति होवै नहीं । जिस उत्पत्तिकरिकै तिस मोक्षविषेभी स्वर्गादिक फलोंकी न्याई नाशवत्ता अथवा कर्मादिकोंकी अपेक्षा होवै । और (भास्वता) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । जैसे वायुतैं रहित देशविषे स्थित प्रकाशमान दीपकविषे तीव्र पवनादिक प्रतिबंधक होवैं नहीं तैसे मैं परमेश्वरकी भक्तिकरिकै प्राप्त हुए आत्मज्ञानविषे असंभावनादिक दोष प्रतिबंधक होवैं नहीं॥ ११॥

इसप्रकारतैं परमेश्वरके विभूतिकूं तथा योगकूं सामान्यतैं श्रवणकरिकै पुनः विशेषकरिकै ता विभूतियोगके श्रवणकरणेकी परम उत्कंठाकूं प्राप्तहुआ जो अर्जुन सो प्रथम श्रीभगवान्की स्तुतिकूं करैहै—

अर्जुन उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ॥
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) परम् । ब्रह्म । परम् । धाम । पवित्रम् । परमम् । भवान् । पुरुषम् । शाश्वतम् । दिव्यम् । आदिदेवम् । अजम् । विभुम् । आहुः । त्वाम् । ऋषयः । सर्वे । देवर्षिः । नारदः । तथा । असितः । देवलः । व्यासः । स्वयम् । च । एव । ब्रवीषि । मे ॥ १२ ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! पर ब्रह्म तथा परम धाम तथा परम पवित्र आँपहीहो जिसकारणतैं भृगुआदिक सर्व ऋषि तथा देवर्षि नारद तथा असित तथा देवल तथा व्यास यह सर्व हमारे ताईं तुम्हारेकूं पुरुष शाश्वत दिव्य आदिदेव अज विभुरूप कथन करैं हैं तथा साक्षात् आपँही कथन करतेहो ॥ १२ ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! आप परब्रह्मरूप हो अर्थात् तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं प्राप्त होणेयोग्य जो सर्व उपाधियोंतैं रहित निर्विशेष ब्रह्म है सो आपही हो। इहां (परम्) इस विशेषणकरिकै उपासनाकरणे योग्य सोपाधिक अपरब्रह्मकी व्यावृत्ति कथन करी है। काहेतैं (तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते) यह श्रुति उपासनाकरणे योग्य सोपाधिक अपरब्रह्मका निषेध करिकै निर्विशेष चैतन्यकूंही ब्रह्म कहैहै। पुनः कैसे हो आप—परंधाम हो अर्थात् स्थूलतैं आदिलैके अव्याकृतपर्यंत सर्वप्रपंचका आश्रयरूप हो। अथवा परमप्रकाशरूप हो। इहांभी (परम्) इस विशेषणकरिकै वृत्तिरूप अपरप्रकाशकी व्यावृत्ति कथन करी है। काहेतैं (ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव) यह श्रुति तिस वृत्तिरूप ज्ञानकूं मनकाही परिणामविशेष कथन करै है। पुनः कैसे हो आप—परम पवित्र हो अर्थात् लोकशास्त्रविषे प्रसिद्ध जितनेक पावन करणेहारे तीर्थादिक हैं तिन सर्वोंतैं आप परम उत्तम पावन करणेहारे हो। काहेतैं श्रद्धापूर्वक करेहुए ते तीर्थादिक इस पुरुषके केवल पापकर्मकूंही नाश करैं हैं तिन पापकर्मोंके कारणरूप अज्ञानकूं नाश करते नहीं। और आप परब्रह्म तौ इन अधिकारी पुरुषोंके वृत्तिविषे आरूढ होइकै अज्ञानरूप कारणसहित सर्व पापकर्मोंकूं नाश करोहो। या कारणतैंही (पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम्।) इत्यादिक स्मृतिवचन आपकूं पवित्रकरणेहारे तीर्थादिक सर्व पवित्रोंकाभी पवित्र करणेहारा

कथन करैंहैं । तथा सर्व मंगलोंकाभी मंगलरूप कथन करैंहैं । शंका—हे अर्जुन ! ऐसा हमारा स्वरूप तुमनैं केवल आपणी बुद्धिकारिकै निश्चय कऱ्याहै अथवा किसीप्रमाणतैं निश्चय कऱ्याहै ? ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन तिस उक्त स्वरूपविषे परमआप्तरूप ऋषियोंके तथा साक्षात् श्रीभगवान्‌के वचनरूप प्रमाणकूं कथन करैहै (पुरुषं शाश्वतम्) इत्यादिक सार्द्धश्लोककरिकै हे भगवन् ! ज्ञाननिष्ठावाले जे भृगुवसिष्ठादिक सर्व ऋषि हैं तथा देवऋषि जो है तथा असितऋषि जो है तथा देवलऋषि जो है तथा साक्षात् विष्णुका अवताररूप जो व्यासमुनि है यह सर्वऋषिभी हमारे ताईं इसीप्रकारके तुम्हारे स्वरूपकूं कथन करतेभये हैं । ते भृगु आदिक सर्व ऋषि किसप्रकारके हमारे स्वरूपकूं कथन करतेभये हैं ? ऐसी श्रीभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है (पुरुषमिति) हे भगवन् ! ते भृगु आदिक सर्व ऋषिभी अनंतमहिमावाले आप परमेश्वरकूं पुरुष कहैं हैं अर्थात् (पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः) इसश्रुतिविषे पुरुषशब्दकारिकै कथन कऱ्या जो निर्विशेष परब्रह्म है तिस परब्रह्मरूप आपकूं कथन करैंहैं । तथा ते ऋषि आपकूं शाश्वत कहैं हैं अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान सर्वकालविषे एकरूप कहैं हैं। तथा ते ऋषि आपकूं दिव्य कहैं हैं । तहां (परमे व्योमन्सर्वा भूतानि) इस श्रुतिविषे परमव्योमशब्दकारिकै कथन कऱ्या जो स्वस्वरूप है ता स्वस्वरूपका नाम दिव है ता दिवविषे जो विराजमान होवै है ताका नाम दिव्य है। ऐसे दिव्यरूप आपकूं कहैंहैं अर्थात् सर्व प्रपंचतैं रहित कहैं हैं । तथा ते ऋषि आपकूं आदिदेव कहैंहैं । इहां सर्व जगत्‌के कारणका नाम आदि है और स्वप्रकाशका नाम देव है जो आदि होवै तथा देव होवै ताका नाम आदिदेव है अर्थात् ते ऋषि आपकूं सर्व जगत्‌का कारणरूप तथा स्वप्रकाशरूप कहैंहैं । इहां कारणकी स्वप्रकाशता कहणेतैं नैयायिकोंनैं कल्पना करेहुए परमाणुरूप कारणकी तथा सांख्ययोंनैं कल्पना करेहुए प्रधानरूप कारणकी व्यावृत्ति करी। ते प्रधानपरमाणु आदि सर्व जड होणेतैं परप्रकाशही हैं । तथा ते ऋषि आपकूं अज कहैंहैं अर्थात् जन्मोंतैं रहित कहैं हैं । तथा ते ऋषि आपकूं विभु कहैं हैं अर्थात् सर्वत्र व्यापक कहैं हैं । हे भगवन् ! केवल ते भृगुआदिक ऋषिही हमारे ताईं इसप्रकारके तुम्हारे स्वरूपकूं नहीं कथन करैं हैं किंतु जिस आप परमेश्वरके वेदरूपवचनोंके अनुसारी हुएही तिन भृगुआदिक ऋषियोंके वचन प्रमाणरूप होवैं हैं । ऐसे साक्षात् आप भगवान्‌ही

हमारे ताईं (भोक्तारं यज्ञतपसाम्। सर्वभूतस्थितं यो माम् ।)इत्यादिक वचनोंकरिकै इसी प्रकारके आपके स्वरूपकूं कथन करतेभये हो । इहां यद्यपि (आहुस्त्वा-मृषयः सर्वे) इस वचनविषे स्थित जो सर्व यह शब्द है ता सर्वशब्दकरिकै ही तिन नारदादिक सर्वऋषियोंका ग्रहण होइसकै है तथापि नारद, असित, देवल, श्रीव्यास इन चारोंका जो अर्जुननैं नाम लैके पृथक् ग्रहण कऱ्याहै सो साक्षात् परमेश्वरके स्वरूपके वक्तापणेकरिकै तिन नारदादिकोंकी अत्यंत श्रेष्ठताके बोधन करणे वासतै है इति । और (आहुस्त्वामृषयः सर्वे) इस वचनकरिकै जो अर्जुननैं आपणे निश्चयविषे ऋषियोंके वचनोंकी संमति कथन करीहै ताकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्याहै । इन अधिकारी पुरुषोंनैं शास्त्रद्वारा आपणी बुद्धिकरिकै निश्चय-कऱ्याहुआभी आत्माका स्वरूप है ताके विषे पुनः संशयकी अनुत्पत्तिवासतै ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषोंकी संमति अवश्यकरिकै ग्रहण करणी ॥ १२ ॥ १३ ॥

तहां गुरुशास्त्र उपदिष्ट अर्थविषे इस अधिकारी पुरुषनैं कदाचित्भी संशय नहीं करणा किंतु सो गुरुशास्त्रनैं उपदेश कऱ्याहुआ सर्व अर्थ सत्य है याप्रकारकी सत्यत्वबुद्धिही करणी । इस अर्थकूं सूचनकरताहुआ सो अर्जुन तिन वचनोंविषे आपणे सत्यत्वबुद्धिकूं कथन करैहै-

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) सर्वम् । एतत् । ऋतम् । मन्ये । यत् । माम् । वदसि । केशव । न । हि । ते । भगवन् । व्यक्तिम् । विदुः । देवाः । न । दानवाः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे केशव ! मैं अर्जुनकेप्रति जो वचन आप कथनकरतेहो यह सर्ववचन मैं सत्य मानताहूं जिसकारणतैं हे भगवन् तुम्हारे प्रभावकूं देवताभी नहीं जानतेहैं तथा दानवभी नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥

भा० टी०-हे केशव ! मैं अर्जुनके प्रति जो पूर्व आपनैं आपका स्वरूप कथन कऱ्या । तथा भृगुआदिक सर्वऋषियोंनैं जो आपका स्वरूप कथन कऱ्याहै तिन सर्ववचनोंकूं मैं अर्जुन सत्यही मानताहूं । हे भगवन् ! तुम्हारे वचनों-विषे हमारेकूं किंचितमात्रभी अप्रमाणपणेकी शंका नहीं है । इस हमारे

हृदयकी वार्त्ताकूं सर्वज्ञ होणेतैं आप जानतेही हो । यह अर्थ अर्जुननैं केशव इस संबोधनकरिकै सूचन कऱ्या । तहां (केशौ वाति अनुकंप्यतया अवगच्छतीति केशवः) अर्थ यह—क नाम ब्रह्माका है और ईश नाम रुद्रका है तिन दोनोंकूं अनुग्रहकरिकै जो प्राप्तहोवै ताका नाम केशव है। इसप्रकारकी व्युत्पत्ति अंगीकार करिकै सो केशव शब्द निरतिशय ऐश्वर्यकाही प्रतिपादक है। ऐसे केशवनामवाले आप परमेश्वर हमारे हृदयके वृत्तांतकूं जानतेही हो इति। यातैं हे भगवन् ! जो पूर्व आपनैं (न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः) इत्यादिक वचन कथन करेथे ते सर्व आपके वचन यथार्थही हैं। हे भगवन् ! अर्थात् हे समग्रऐश्वर्यादिकषट्भगसंपन्न ! तुम्हारे प्रभावकूं बहुतबुद्धिमान् इंद्रादिकदेवताभी जानि सकते नहीं। तथा तुम्हारे प्रभावकूं मधुआदिक दानवभी जानिसकते नहीं। तथा तुम्हारे प्रभावकूं भृगुआदिक महान् ऋषिभी जानिसकते नहीं। जबी तिस तुम्हारे प्रभावकूं सर्वज्ञ इंद्रादिकदेवता तथा मधुआदिक दानव तथा भृगुआदिक महान् ऋषिभी नहीं जानिसकते तबी इदानींकालके अल्पज्ञ मनुष्य तिस आपके प्रभावकूं नहीं जानैंहैं याकेविषे क्या कहणा है ॥ १४ ॥

हे भगवन् ! जिसकारणतैं आप परमेश्वर तिन देवता ऋषि आदिक सर्वोंका आदिकारण हो तथा तिन देववावोंकरिकैभी जानणेकूं अशक्य हो तिसकारणतैं तुम आपही आपके प्रभावकूं यथावत् जानते हो। इस अर्थकूं अब अर्जुन कथन करैहै—

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) स्वयंम् । एँव । आत्मना । आत्मानम् । वेत्थ । त्वम् । पुरुषोत्तम । भूतभावन । भूतेश । देवदेव । जगत्पते ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे पुरुषोत्तम ! हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगत्पते ! श्रीभगवन् ! अन्यके उपदेशतैंविनाँही तूं आपणे स्वरूपकारिकै आपणे आत्माकूं जानताहै ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! अन्य किसीके उपदेशतैं विनाही तूं आपही आपणे स्वप्रकाशस्वरूपकरिकै आपणे निरुपाधिक स्वरूपकूं तथा सोपाधिक स्वरूपकूं जानता है। तहां आपणे निरुपाधिक शुद्धस्वरूपकूं तौ प्रत्यक्रूपकारिकै तथा अवि-

षयतारूपकरिकै जानता है। और आपणे सोपाधिक स्वरूपकूं तौ निरतिशयज्ञानऐ-श्वर्यादिक शक्तिमत् रूपकरिकै जानता है अन्य कोई देवता वा ऋषि वा दानव वा मनुष्य तिस तुम्हारे स्वरूपकूं जानता नहीं । शंका–हे अर्जुन ! अन्यदेवतादिकोंके करिकै जानणेकूं अशक्य स्वरूपकूं मैं परमेश्वरभी कैसे जानूंगा ? ऐसी भगवान्‌की शंकाकूं निवृत्त करता हुआ अर्जुन अत्यंतप्रेमकी उत्कंठाकरिकै श्रीभगवान्‌के बहुत संबोधनोंकूं कथन करैहै (हे पुरुषोत्तम) अर्थात् हे सर्वपुरुषोंविषे श्रेष्ठ ! तात्पर्य यह–तुम्हारी अपेक्षाकरिकै दूसरे सर्वपुरुष अपकृष्टही हैं । यातैं तिन दूसरे पुरुषोंकूं जो अर्थ जानणेकूं अशक्य है सो अर्थ सर्वतैं उत्तम तैं परमेश्वरकूं जानणेकूं शक्यही है इति । अब परमेश्वरविषे कथन कन्या जो पुरुषोत्तमपणा है तिस पुरुषोत्तमपणेकूं पुनः च्यारि संबोधन करिकै प्रतिपादन करैहै (हे भूतभावन इति) तहां सर्वभूतोंकूं जो उत्पन्न करै है ताका नाम भूतभावन है अर्थात् हे सर्वभूतोंके पिता! तहां इसलोकविषे कोईक पुरुष पिता हुआभी पुत्रादिकोंका नियंता होतानहीं तैसे परमेश्वरभी तिन सर्व भूतोंका पिता हुआभी तिन सर्वभूतोंका नियंता नहीं होवैगा किंतु सो परमेश्वर तौ भिन्नही कोई तिन भूतोंका नियंता होवैगा । ऐसी शंकाके निवृत्तकरणेवासतै अर्जुन ता परमेश्वरका अन्य संबोधन कहैहै (हे भूतेश इति) अर्थात् हे सर्वभूतोंके नियंता ! तहां इसलोकविषे कोईक राजादिकपुरुष आपणी प्रजादिकोंके नियंताहुएभी तिन प्रजादिकोंकरिकै आराधन करणेयोग्य होते नहीं तैसे सो परमेश्वरभी तिन सर्वभूतोंका नियंता हुआभी तिन सर्वभूतोंकरिकै आराधनकरणेयोग्य नहीं होवैगा किंतु ता परमेश्वरतैं भिन्न ही कोई आराधन करणेयोग्य होवैगा । ऐसी शंकाके निवृत्त करणे वासतै अर्जुन ता परमेश्वरका अन्यसंबोधन कहैहै (हे देवदेव इति) तहां सर्वप्राणि-योंकरिकै आराधन करणेयोग्य जे इंद्रादिक देवता हैं तिन इंद्रादिक देवतावोंक-रिकैभी जो आराधन कन्याजावैहै ताका नाम देवदेव है अर्थात् हे देवतावोंतैं आदि-लैके सर्वप्राणियोंकरिकै आराधन करणेयोग्य ! तहां इसलोकविषे कोईक पुरुष आराधन करणेयोग्य हुआभी पालनकर्त्तारूपकरिकै पति होता नहीं । तैसे सो पर-मेश्वरभी आराधनकरणेयोग्य हुआभी पालनकर्त्तारूपकरिकै पति नहीं होवैगा । किंतु तिस परमेश्वरतैं भिन्नही कोई इस जगत्‌का पति होवैगा । ऐसी शंकाके निवृत्त-करणेवासतै अर्जुन तिस परमेश्वरका अन्य संबोधन कहैहै (हे जगत्पते इति) अर्थात् अधिकारीजनोंके प्रति हितका उपदेश करिकै शुभकर्मोंविषे प्रवृत्त करणेहारा

तथा अहितका उपदेशकरिकै अशुभकर्मोंतैं निवृत्त करणेहारा ऐसा जो देव है ता देवकूं सृष्टिके आदिकालविषे उत्पन्नकरिकै आपही इस सर्व जगत्कूं पालन करते हो। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। इसप्रकारके सर्वविशेषणोंकरिकै विशिष्ट आप परमेश्वरही सर्वप्राणियोंके पिता हो तथा सर्वप्राणियोंके गुरु हो तथा सर्वप्राणियोंके राजा हो। इसकारणतैंही आप सर्व प्रकारकरिकै सर्व प्राणियोंकूं आराधन करणे-योग्य हो। ऐसे महान् प्रभाववाले आपविषे पुरुषोत्तमपणा है याकेविषे क्या कहणा है ॥ १५ ॥

हे भगवन्! जिसकारणतैं आप परमेश्वरकी विभूतियोंकूं अन्य कोईभी देवता वा ऋषि वा दानव वा मनुष्य जानिसकता नहीं। और ते आपकी विभूतियां हमारेकूं अवश्यकरिकै जानणी चाहियें। तिसकारणतैं ते आपकी विभूतियां आपही हमारे प्रति विस्तारतैं कथन करो, इस प्रकारकी प्रार्थना अर्जुन करैहै—

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) वक्तुम्[12]। अर्हसि[13]। अशेषेण[10]। दिव्याः[9]। हि[8]। आत्म-विभूतयः[11]। याभिः[1]। विभूतिभिः[2]। लोकान्[4]। इमान्[3]। त्वम्[5]। व्याप्य[6]। तिष्ठसि[7] ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे भगवन्! जिन[1] विभूतियोंकरिकै[2] इन[3] सर्वलोकोंकूं[4] व्यापकरिकै[6] तुम[5] स्थितहो[7] ते विभूतियां जिस[8]कारणतैं दिव्य[9] हैं तिस कारणतैं आपही ते समग्र[10] आपणी[11] विभूतियां कहणेकूं[12] योग्य[13] हो ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे भगवन्! जिन आपणी विभूतियोंकरिकै आप इस मनुष्यलो-कतैं आदिलैके ब्रह्मलोकपर्यंत सर्वलोकोंकूं व्याप्तकरिकै स्थित हो ते आपकी असा-धारणविभूतियां जिसकारणतैं दिव्य हैं अर्थात् अस्मदादिक असर्वज्ञपुरुषोंनैं आपेही जानणेकूं अशक्य हैं। तथा अवश्यकरिकै जानणी चाहिये। जिसकारणतैं आप सर्वज्ञही ते आपणी समग्रविभूतियां कहणेकूं योग्य हो ॥ १६ ॥

हे अर्जुन! लोकविषे प्रयोजनतैं विना किसीभी चेतनप्राणीकी प्रवृत्ति होती नहीं किंतु किसी प्रयोजनका उद्देशकरिकैही सर्वप्राणियोंकी प्रवृत्ति होवैहै। यातैं तिन विभूतियोंके जानणेकरिकै तुम्हारा जो प्रयोजन सिद्ध होता होवै सो आपणा प्रयोजन

तूं प्रथम हमारे प्रति कथन कर पश्चात् मैं तुम्हारे ताईं ते आपणी विभूतियां कथन करौंगा । ऐसी श्रीभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन दोश्लोकोंकरिकै वा आपणे प्रयोजनकूं कथन करै है–

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिंतयन् ॥
केषुकेषु च भावेषु चिंत्योसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) कथम् । विद्याम् । अहम् । योगिन् । त्वाम् । सदा । परिचिंतयन् । केषु । केषु । च । भावेषु । चिंत्यः । असि । भगवन् । मया ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे योगिन् मैं स्थूलबुद्धिवाला अर्जुन सर्वदा तुम्हारा ध्यानकरताहुआ तुम्हारेकूं किसप्रकारतैं जानूं हे भगवन् किनें किनें वस्तुवोंविषे मैं अर्जुननैं तूं परमेश्वर चिंतनकरणेयोग्य है ॥ १७ ॥

भा० टी०– हे योगिन् ! इहां निरतिशय ऐश्वर्यादिक शक्तिका नाम योग है सो योग जिसविषे विद्यमान होवै ताका नाम योगिन् है अर्थात् हे निरतिशयऐश्वर्यादिक शक्तिवाला कृष्ण भगवन् ! अत्यंतस्थूल बुद्धिवाला मैं अर्जुन सर्वकालविषे तुम्हारा ध्यान करताहुआ देवादिकोंकरिकैभी जानणेकूं अशक्य तैं परमेश्वरकूं किसप्रकारतैं जानूं । शंका–हे अर्जुन ! हमारी विभूतीयोंविषे मैं परमेश्वरकूं ध्यान करताहुआ तूं मैं परमेश्वरकूं जानैगा । यहही हमारे जानणेका प्रकार है । ऐसी श्रीभगवान्‌की शंकाकेहुए जिन विभूतियोंविषे स्थित आपका ध्यान करताहुआ मैं आपकूं जानूंगा तिन विभूतियोंकूंही मैं प्रथम जानता नहीं । इसप्रकारके उत्तरकूं अर्जुन कथन करैहै (केषुकेषु च भावेषु इति) हे भगवन् ! तुम्हारि विभूतिरूप किनकिन चेतन अचेतनरूप वस्तुवोंविषे मैं अर्जुन करिकै आप चिंतनकरणे योग्य हो ? अर्थात् किन किन वितिभूयोंविषे मैं अर्जुन आपका चिंतन करूं ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! जिनजिन विभूतियोंविषे आप चिंतनकरणेयोग्य हो तिन विभूतियोंकूं मैं अर्जुन जानता नहीं, इसकारणतैं आपही कृपाकरिकै तिन आपणे विभूतियोंकूं कथन करो । इसप्रकारकी प्रार्थना अर्जुन करै है–

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) विस्तरेण[७] । आत्मनः[२] । योगम्[३] । विभूतिम्[५] । च[४] । जनार्दन[१] । भूयः[६] । कथय[८] । तृप्तिः[१३] । हि[९] । शृण्वतः[११] । न[१४] । अस्ति[१५] । मे[१२] । अमृतम्[१०] ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन[१] ! आप आपणे[२] योगकूं[३] तथा[४] विभूतिकूं[५] पुनः[६] विस्तारकरिकै[७] कथनकरौ[८] जिसकारणतैं[९] तुम्हारे वचनरूप अमृतकूं[१०] श्रवणकारिकै[११] पानकरतेहुए मैं अर्जुनकी[१२] तृप्ति[१३] नहीं[१४] होवैहै[१५] ॥ १८ ॥

भा॰ टी॰– हे जनार्दन ! सर्वज्ञपणा तथा सर्वशक्तिसंपन्नपणा इत्यादिक ऐश्वर्यतारूप जो योग है तथा अधिकारीजनोंके ध्यानका आलंबनरूप जा विभूति है ऐसे आपणे योगकूं तथा विभूतिकूं आप पुनः विस्तारकरिकै कथन करो। यद्यपि तिस आपणे योगकूं तथा विभूतिकूं आप पूर्व सप्तम अध्यायविषे तथा नवम अध्यायविषे संक्षपतैं कथन करिआये हो तथापि अबी तिस योगकूं तथा विभूतिकूं विस्तार करिकै कथन करो । यह अर्थ अर्जुननै (भूयः) इस शब्दके कहणेकरिकै सूचन कन्याहै । और (हे जनार्दन) इस संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्के प्रति यह अर्थ सूचन कन्या । सर्व जनोंनैं स्वर्गादिक सुखोंकी प्राप्तिवासतै तथा मोक्षकी प्राप्तिवासतै जिसके प्रति याचना करीतीहै ताका नाम जनार्दन है । ऐसे आप जनार्दनके आगे यह हमारी याचनाभी उचित है इति । शंका–हे अर्जुन ! पूर्व कथन करेहुए अर्थके पुनः कथन करणेकी याचना तूं किसवासतै करताहै । पूर्व कथन करेहुए अर्थका पुनः कथन करणा पीसेहुए अन्नकूं पुनः पीसणेकी न्याईं संभवता नहीं । ऐसी श्रीभगवान्की शंकाके हुए अर्जुन ता पुनः कथन करणेकी याचनाविषे कारणकूं कहैहै (तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतमिति) हे भगवन् ! जिस कारणतैं अमृतकी न्याईं पदपदविषे स्वादु स्वादु ऐसे जे आपके वचन हैं ऐसे आपके अमृतमय वचनोंकूं श्रवण इंद्रियरूप मुखकरिकै पान करतेहुए मैं अर्जुनकी तृप्ति होती नहीं । अर्थात् इन वचनोंकूं श्रवणकरिकै अबी मैं तृप्त हुआहूं याप्रकारकी अलंबुद्धि करिकै तिन वचनोंके श्रवणविषयक हमारी इच्छा निवृत्त होती नहीं । तिसकारणतैं तिस आपणे योगकूं तथा विभूतिकूं पुनः हमारे प्रति विस्तारतैं कथन करो ॥ १८ ॥

अब इस पूर्वउक्त अर्जुनके प्रश्नका उत्तर श्रीभगवान् कथन करैं हैं–

श्रीभगवानुवाच ।

हंत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ॥
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) हंत । ते । कथयिष्यामि । दिव्याः । हि । आत्मविभूतयः । प्राधान्यतः । कुरुश्रेष्ठ । न । अस्ति । अंतः । विस्तरस्य । मे ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे कुरुवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन मैं अबी तुम्हारे ताईं प्रसिद्ध तथा दिव्य आपणी विभूतियां प्रधानताकरिकै कथन करताहूं जिसकारणतैं मैं परमेश्वरकी विभूतियोंके विस्तारका कोई पार नहीं है ॥ १९ ॥

भा०टी०- इहां (हंत) यह शब्द इदानींकालका वाचक है अर्थात् अबीही ते विभूतियां मैं तुम्हारे ताईं कहताहूं । अथवा हंत यह शब्द अनुमतिका वाचक है अर्थात् मैं परमेश्वरके आगे तुमनैं जिस अर्थके जाणणेकी प्रार्थना करी है सो अर्थ अवश्यकरीकै तुम्हारे ताईं कथन करूंगा तूं व्याकुल मतहोउ । इसप्रकार अर्जुनकूं धैर्य देकरिकै श्रीभगवान् तिस अर्थके कथन करणेका प्रारंभ करैं हैं । हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी जे असाधारणविभूतियां दिव्यरूपकरिकै प्रसिद्ध हैं ते आपणी विभूतियां मैं परमेश्वर तैं अर्जुनके ताईं प्राधनताकरिकै कथन करताहूं । अर्थात् आपणी प्रधानप्रधान विभूतियोंकूं मैं कथन करताहूं । शंका-हे भगवन् ! जितनी आपकी प्रधानरूप तथा अप्रधानरूप विभूतियां हैं ते सर्वही विभूतियां आप हमारे ताईं कथन करो । केवल प्रधान प्रधान विभूतियोंकूं किसवासतै कथन करतेहो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन आपणे विभूतियोंकी अनंतताकूं कथन करैं हैं (नास्त्यंतो विस्तरस्य मे इति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरकी जितनीक प्रधानरूप तथा अप्रधानरूप सर्वविभूतियां हैं ते सर्वविभूतियां कथन करणेकूं अशक्य हैं । जिसकारणतैं मैं परमेश्वरके तिन विभूतियोंके विस्तारका कोई अंत नहीं है अर्थात् सर्वविभूतियां इतनी हैं याप्रकारकी इयत्तासंख्यातैं रहित हैं । तिस कारणतैं प्रधान प्रधानभूत कोईक विभूतियांही मैं तुम्हारे ताईं कथन करताहूं ॥ १९ ॥

तहां तिन प्रधानप्रधान विभूतियोंविषेभी जो प्रथम मुख्य वस्तु चिंतनकरणेयोग्य है तिसकूं तूं श्रवण कर-

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) अहम् । आत्मा । गुडाकेश । सर्वभूताशयस्थितः । अहम् । आदिः । च । मध्यम् । च । भूतानाम् । अंतः । एव । च ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे गुडाकेश अर्जुन ! सर्व भूतोंके हृदयदेशविषे स्थित चैतन्य आनंदघन मैंहीहूं तथा मैं परमेश्वरही सर्वभूतोंका उत्पत्ति हूं तथा स्थिति हूं तथा विनाश हूं ॥ २० ॥

भा० टी०–हे गुडाकेश अर्जुन ! सर्वप्राणियोंके हृदयदेशविषे अंतर्यामिरूपकरिकै तथा प्रत्यक् आत्मारूपकरिकै स्थित जो चैतन्यस्वरूप आनंदघन परमात्मादेव है सो परमात्मा वासुदेव मैं ही हूं । इसप्रकारतैं अभेदरूप करिकै तुमनैं मैं परमेश्वरका ध्यान करणा । इहां (हे गुडाकेश) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन कऱ्या–गुडाका नाम निद्राका है ता निद्राकूं जो आपणे वश करैहै ताका नाम गुडाकेश है । ऐसा निद्रादिक विकारोंकूं आपणे वशकरणेहारा तूं अर्जुन अभेदरूपकरिकै मैं परमेश्वरके ध्यानकरणेविषे समर्थ है इति । इतनेकरिकै उत्तम अधिकारी पुरुषोंके ध्यानका प्रकार कथन कऱ्या । अब मध्यम अधिकारी पुरुषोंके ध्यानका प्रकार निरूपण करैं हैं (अहमादिः इति) हे अर्जुन । इसप्रकारतैं अभेदरूपकरिकै मैं परमेश्वरके ध्यानकरणेविषे जो तूं समर्थ नहीं होवै तौ आगे कथन करणेयोग्य ध्यान तुम्हारेकूं करणेयोग्य है । तिन वक्ष्यमाण ध्यानोंविषेभी प्रथम जो वस्तु ध्यानकरणेयोग्य है तिसकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं । (अहमादिः इति) हे अर्जुन ! लोकविषे चेतनरूपकरिकै प्रसिद्ध जितनेक प्राणी हैं तिन सर्वप्राणियोंका मैं परमेश्वरही उत्पत्ति हूं । तथा मैं परमेश्वरही तिन सर्वप्राणियोंकी स्थिति हूं । तथा मैं परमेश्वरही तिन सर्वप्राणियोंका विनाश हूं । अर्थात् तिन सर्वप्राणियोंकी उत्पत्ति स्थिति नाशरूप करिकै तथा तिन सर्वप्राणियोंका कारणरूप करिकै मैं परमेश्वरही तुम्हारेकूं ध्यान करणेयोग्य हूं । इतने करिकै मध्यम अधिकारीपुरुषोंके ध्यानका प्रकार कथन कऱ्या ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकारके ध्यानकरणेविषेभी जो तूं समर्थ नहीं होवै तौ आगे कथन करणेयोग्य बाह्यध्यानही तुम्हारेकूं करणेयोग्य है । इस प्रकारके अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् मंद अधिकारी पुरुषों ऊपरि अनुग्रह करिकै तिन बाह्यध्यानोंकूं इस दशम अध्यायकी समाप्तिपर्यंत विस्तारतैं कथन करैं हैं–

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) आदित्यानाम् । अहम् । विष्णुः । ज्योतिषाम् । रविः । अंशुमान् । मरीचिः । मरुताम् । अस्मि । नक्षत्राणाम् । अहम् । शशी ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! आदित्योंके मध्यमें विष्णुनामा आदित्य मैं परमेश्वर हूं तथा प्रकाशकोंके मध्यमें व्यापकप्रकाशवाला रविः मैं हूं तथा मरुद्गणोंके मध्यमें मरीचिनामा मरुत् मैं हूं तथा नक्षत्रोंके मध्यमें चंद्रमा मैं हूं ॥ २१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! द्वादश आदित्योंके मध्यमैं विष्णुनामा आदित्य मैं हूं । अथवा विष्णु कहिये वामन अवतार मैं हूं । तथा अग्नितैं आदिलैके जितनेक प्रकाश करणेहारे हैं तिन सर्व प्रकाशकोंके मध्यविषे सर्वविश्वविषे व्यापक है प्रकाश जिसका ऐसा जो सूर्य है सो मैं हूं । तथा मरुत्नामा जे उनंचास देवताविशेष हैं तिन मरुतोंके मध्यमें मरीचिनामा मरुत् मैं हूं । तथा अश्विनीतैं आदि लैके जितनेक आकाशविषे स्थित तारागणरूप नक्षत्र हैं तिन सर्व नक्षत्रोंके मध्यविषे तिन सर्व नक्षत्रोंका अधिपति चंद्रमा मैं हूं । तात्पर्य यह—ते द्वादश सूर्य तथा अग्नि आदिक सर्व ज्योति तथा उनंचास मरुद्गण तथा अश्विनीआदिक सर्वनक्षत्र यह सर्वही यद्यपि सामान्यरूपतैं मैं परमेश्वरकीही विभूति हैं तथापि तिनोंके मध्यविषे विष्णुनामा आदित्य तथा रविनामा ज्योति तथा मरीचिनामा मरुत् तथा चंद्रमानामा नक्षत्र यह सर्व प्रभावकी अधिकताकरिकै हमारी विशेषविभूति हैं । यातैं तिन द्वादश आदित्योंविषे विष्णुनामा आदित्य परमेश्वरही है याप्रकार परमेश्वरकी बुद्धिकरिकै सो विष्णुनामा आदित्य इन अधिकारी पुरुषोंनैं ध्यान करणेयोग्य है । इस प्रकारतैंही रवि मरीचि चंद्रमा यह तीनों मैं परमेश्वररूप करिकै ध्यान करणेयोग्य हैं । यह ध्यानकी रीति इस दशम अध्यायकी समाप्तिपर्यंत सर्व पर्यायोंविषे जानिलेणी इति । इहां यद्यपि वामन रामइत्यादिक साक्षात् परमेश्वरके अवतारही हैं तथा सर्व ऐश्वर्यतावाले हैं आदित्यादिकोंकी न्याईं परमेश्वरकी विभूतिरूप नहीं हैं तथापि जैसे (वृष्णीनां वासुदेवोस्मि) इस वक्ष्यमाण वचनविषे श्रीभगवान्नै तिस वासुदेवरूपतैं परमेश्वरके ध्यान करावणेवासतै आपणाभी तिन विभूतियोंविषे ही पठन कऱ्याहै । तैसे वामन रामादिकोंकाभी तिसतिस रूपतैं परमेश्वरके ध्यान करावणेवासतै श्रीभगवान्नै आपणी विभूतियोंविषे ही पठन कऱ्याहै ॥ २१ ॥

किंच–

वेदानां सामवेदोस्मि देवानामस्मि वासवः ॥
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) वेदानाम् । सामवेदः । अस्मि । देवानाम् । अस्मि । वासवः । इंद्रियाणाम् । मनः । च । अस्मि । भूतानाम् । अस्मि । चेतना ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेदोंके मध्यमें सामवेद मैं हूं तथा देवतावोंके मध्यमें इंद्र मैं हूं तथा इंद्रियोंके मध्यमें मन मैं हूं तथा भूतोंके मध्यमें चेतना मैं हूं ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ऋग् यजुष् साम अथर्वण इन च्यारि वेदोंके मध्यविषे गायनकी मधुरताकारिकै अत्यंत रमणीक जो सामवेद है सो सामवेद मैं हूं । तथा अग्नि वायु आदि सर्व देवताओंके मध्यविषे तिन सर्व देवताओंका अधिपति जो इंद्र है सो इंद्र मैं हूं । तथा चक्षु, श्रोत्र, त्वक रसन, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु, मन इन एकादश इंद्रियोंके मध्यविषे सर्व इंद्रियोंका प्रवर्त्तक जो मन है सो मन मैं हूं। तथा सर्वप्राणियोंके संबंधी जितनेक परिणाम हैं तिनोंका नाम भूत है । ऐसे परिणामरूप भूतोंके मध्यविषे चैतन्यकी अभिव्यक्ति करणेहारी जा बुद्धिकी वृत्तिरूप चेतना है सा चेतना मैं हूं ॥ २२ ॥

किंच–

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ॥
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) रुद्राणाम् । शंकरः । च । अस्मि । वित्तेशः । यक्षरक्षसाम् । वसूनाम् । पावकः । च । अस्मि । मेरुः । शिखरिणाम् । अहम् ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! रुद्रोंके मध्यमें शंकर मैं हूं तथा यक्षराक्षसोंके मध्यमें कुबेर मैं हूं तथा वसुवोंके मध्यमें अग्नि मैं हूं तथा रत्नोंवाले पर्वतोंके मध्यमें सुमेरु मैं हूं ॥ २३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! एकादशरुद्रोंके मध्यविषे आपणे भक्तजनोंके ताई निरतिशय मोक्षरूप आनंदकी प्राप्ति करणेहारा जो शंकरनामा रुद्र है सो शंकर

मैं हूं । तथा यक्षोंके तथा राक्षसोंके मध्यविषे संपूर्ण धनका अधिपति जो कुबेर है सो कुबेर मैं हूं । तथा अष्टवसुवोंके मध्यविषे अत्यंत श्रेष्ठ जो अग्नि है सो अग्नि मैं हूं । तथा नानाप्रकारके रत्नरूप शिखरोंवाले जितनेक पर्वत हैं तिन सर्व शिखरोंके मध्यविषे सुवर्णमय अत्यंत रमणीय जो सुमेरु है सो सुमेरु मैं हूं ॥२३॥

किंच—

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ॥
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) पुरोधसाम् । च । मुख्यम् । माम् । विद्धि । पार्थ । बृहस्पतिम् । सेनानीनाम् । अहम् । स्कंदः । सरसाम् । अस्मि । सागरः ॥२४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वपुरोहितोंके मध्यमें तूं मैं परमेश्वरकूं सर्वतैं श्रेष्ठ बृहस्पतिरूप जान तथा सेनापतियोंके मध्यमें स्कंद मैं हूं तथा जलाशयोंके मध्यमें सागर मैं हूं ॥ २४ ॥

भा० टी०—सर्वराजावोंविषे त्रिलोकीका पति देवराज इंद्र श्रेष्ठ है ऐसे देवराज इंद्रकाभी पुरोहित जो बृहस्पति है सो बृहस्पति सर्व राजावोंके पुरोहितोंतैं श्रेष्ठ है यातैं तिन सर्व पुरोहितोंके मध्यविषे मैं परमेश्वरकूं तूं बृहस्पतिरूप जान । तथा सर्व सेनापतियोंके मध्यविषे देवतावोंका सेनापति जो स्कंद है सो स्कंद मैं हूं । तथा देवताओंनैं खोदे हुए जितनेक जलके रहणेके स्थान हैं तिन जलाशयरूप सरोवरोंके मध्यविषे सगरके पुत्रोंनैं खोयाहुआ जो सागर है सो सागर मैं हूं ॥ २४ ॥

किंच—

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः)महर्षीणाम् । भृगुः । अहम् । गिराम् । अस्मि । एकम् । अक्षरम् । यज्ञानाम् । जपयज्ञः । अस्मि । स्थावराणाम् । हिमालयः॥२५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! महाऋषियोंके मध्यमें भृगुनामा ऋषि मैं हूं तथा सर्वगिरावोंके मध्यमें ओंकाररूप एक अक्षर मैं हूं तथा सर्वयज्ञोंके मध्यमें जपरूप यज्ञ मैं हूं तथा सर्वस्थावरोंके मध्यमें हिमालयपर्वत मैं हूं ॥ २५ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन! ब्रह्माके पुत्ररूप जितनेक महाऋषि हैं तिन सर्व महाऋषियोंके मध्यविषे अत्यंत तेजस्वी जो भृगुऋषि है सो भृगुऋषि मैं हूं। तथा अर्थके वाचक पदरूप जितनीक गिरा हैं तिन सर्व गिरावोंके मध्यविषे ब्रह्मका वाचक जो एक अक्षररूप ओंकार पद है सो ओंकार मैं हूं। तथा अश्वमेध ज्योतिष्टोम इसतैं आदिलैके जितनेक वेदविषे यज्ञ कथन करे हैं तिन सर्वयज्ञोंके मध्यविषे हिंसादिक सर्वदोषोंतैं रहित होणेतैं अत्यंत शुद्धि करणेहारा जो जपरूप यज्ञ है सो जपरूप यज्ञ मैं हूं। तथा इसलोकविषे चलायमानतैं रहित जितनेक स्थितिवाले स्थावर पदार्थ हैं तिन सर्व स्थावर पदार्थोंके मध्यविषे हिमालय पर्वत मैं हूं ॥ २५ ॥

किंच—

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ॥
गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) अश्वत्थः। सर्ववृक्षाणाम्। देवर्षीणाम्। च। नारदः। गंधर्वाणाम्। चित्ररथः। सिद्धानाम्। कपिलः। मुनिः ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! सर्ववृक्षोंके मध्यमैं पिप्पलवृक्ष मैं हूं तथा सर्वदेवऋषियोंके मध्यमैं नारद मैं हूं तथा सर्वगंधर्वोंके मध्यमैं चित्ररथनामा गंधर्व मैं हूं तथा सर्वसिद्धोंके मध्यमैं कपिल मुनि मैं हूं ॥ २६ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन! वनस्पतिरूप जितनेक वृक्ष हैं तिन सर्व वृक्षोंके मध्यविषे पिप्पलनामा वृक्ष मैं हूं। तथा जे देवता हुएही वेदमंत्रोंके दर्शनकरिकै ऋषिभावकूं प्राप्त हुए हैं तिनोंका नाम देवऋषि है ऐसे देवऋषियोंके मध्यविषे नारदनामा देवऋषि मैं हूं। तथा गायनकरणेहारे जितनेक गंधर्व हैं तिन सर्वगंधर्वोंके मध्यविषे चित्ररथनामा गंधर्व मैं हूं। तथा जे पुरुष विनाही प्रयत्नतैं जन्ममात्रकरिकैही धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यता इत्यादिक गुणोंकूं प्राप्त हुए होवैं तथा निश्चय कऱ्या है परमार्थवस्तु जिनोंनैं तिन पुरुषोंका नाम सिद्ध है ऐसे सिद्धोंके मध्यविषे कपिलमुनिनामा सिद्ध मैं हूं ॥ २६ ॥

किंच—

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतं गजेंद्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) उच्चैःश्रवसम् । अश्वानाम् । विद्धि । माम् । अमृतोद्भवम् । ऐरावतम् । गजेंद्राणाम् । नराणाम् । च । नराधिपम् ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वअश्वोंके मध्यमैं अमृतके मथनकरणेकालविषे उद्भवहुआ उच्चैःश्रवसनामा अश्व मेरेकूं तूं जान तथा सर्वगजोंके मध्यमैं ऐरावतनामा गज मेरेकूं जान तथा सर्वनरोंके मध्यमैं राजारूप मेरेकूं जान ॥ २७ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सर्व अश्वोंके मध्यविषे अत्यन्त श्रेष्ठ जो उच्चैःश्रवसनामा अश्व है जो उच्चैःश्रवसनामा अश्व अमृतकी प्राप्तिवासतै देवतावोंनैं तथा दैत्योंनैं मथन कियेहुए समुद्रतैं प्रगट होताभया है ऐसा उच्चैःश्रवसनामा अश्व मेरेकूं तूं जान। तथा सर्वगजोंके मध्यविषे ऐरावतनामा गज मेरेकूं तूं जान । जो ऐरावतनामा गज अमृतकी प्राप्तिवासतै देवतादैत्योंनैं मथन करेहुए समुद्रतैं प्रगट होताभया है । तथा सर्व नरोंके मध्यविषे सर्वप्रजाकूं धर्मविषे प्रवृत्त करणेहारा तथा अधर्मतैं निवृत्त करणेहारा जो राजा है सो राजा मेरेकूं तूं जान ॥ २७ ॥

किंच–

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ॥
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) आयुधानाम् । अहम् । वज्रम् । धेनूनाम् । अस्मि । कामधुक् । प्रजनः । च । अस्मि । कंदर्पः । सर्पाणाम् । अस्मि । वासुकिः ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वआयुधोंके मध्यमैं वज्र मैं हूं तथा सर्वधेनुवोंके मध्यमैं कामधेनु मैं हूं तथा सर्वकामोंके मध्यमैं पुत्रकी उत्पत्तिअर्थ काम मैं हूं तथा सर्वसर्पोंके मध्यमैं वासुकिनामा सर्प मैं हूं ॥ २८ ॥

भा० टी०–अस्त्ररूप जितनेक आयुध हैं तिन सर्वआयुधोंके मध्यविषे दधीचिके अस्थियोंतैं उत्पन्न हुआ जो वज्र है सो वज्र मैं हूं । तथा दुग्धकी प्राप्ति करणेहारी जितनीक धेनु हैं तिन सर्वधेनुवोंके मध्यविषे मनवांछित कामोंकी प्राप्ति करणेहारी तथा समुद्रके मथनतैं प्रगट हुई जा वसिष्ठकी कामधेनु है सा कामधेनु मैं हूं । तथा मैथुनकी अभिलाषारूप सर्वकामोंके मध्यविषे पुत्रकी उत्पत्तिवासतै जो कामरूप कंदर्प है सो कामरूप कन्दर्प मैं हूं । इहां (प्रजनश्च) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो

चकार पुत्रकी उत्पत्तितैं विना व्यर्थमैथुनके हेतुरूप कामकी निवृत्तिकूं बोधन करै है। तथा सर्वसर्पोंके मध्यविषे तिन सर्वसर्पोंका राजा जो वासुकि है सो वासुकि मैं हूं। इहां सर्पजातितैं नागजाति भिन्न होवैहै। तहां सर्प तौ विषवाले होवैं हैं। और नाग विषतैं रहित होवैं हैं इतना दोनोंविषे भेद होवै है। यातैं (अनंतश्चास्मि नागानाम्) इस वक्ष्यमाणवचनविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ २८ ॥

किंच—

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ॥
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) अनंतः। च। अस्मि। नागानाम्। वरुणः। यादसाम्। अहम्। पितॄणाम्। अर्यमा। च। अस्मि। यमः। संयमताम्। अहम् ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! नागोंके मध्यमें अनंतनाग मैं हूं तथा जलचरोंके मध्यमें वरुण मैं हूं तथा पितरोंके मध्यमें अर्यमा मैं हूं तथा नियमनकरणेहारोंके मध्यमें यम मैं हूं ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! सर्व नागोंके मध्यविषे तिन सर्व नागोंका राजारूप जो शेषनामा अनंत नाग है सो अनंतनाग मैं हूं। तथा जलविषे विचरणेहारे सर्व जीवोंके मध्यविषे तिन सर्व जलचारीजीवोंका राजारूप जो वरुण है सो वरुण मैं हूँ। तथा सर्वपितरोंके मध्यविषे तिन सर्वपितरोंका राजारूप जो अर्यमानामा पितर है सो अर्यमा मैं हूं। तथा धर्मअधर्मके सुखदुःखरूप फलकी प्राप्तिकरिकै अनुग्रहनिग्रहरूप संयमकूं करणेहारे जितनेक समर्थ पुरुष हैं तिन सर्व नियमनकर्त्ताओंके मध्यविषे यम मैं हूं ॥ २९ ॥

किंच—

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ॥
मृगाणां च मृगेंद्रोहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) प्रह्लादः। च। अस्मि। दैत्यानाम्। कालः। कलयताम्। अहम्। मृगाणाम्। च। मृगेंद्रः। अहम्। वैनतेयः। च। पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! दैत्योंके मध्यमैं प्रह्लाद मैं हूं तथा संख्यागणनकरणेहारोंके मध्यमें काल मैं हूं तथा मृगादिक पशुवोंके मध्यमें सिंह मैं हूं तथा सर्वपक्षियोंके मध्यमैं गरुड मैं हूं ॥ ३० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! दितिके वंशविषे उत्पन्न भये जितनेक दैत्य हैं तिन सर्व दैत्योंके मध्यविषे आपणे सात्त्विकस्वभावकरिकै सर्वप्राणियोंकूं अतिशयकरिकै आनंदकी प्राप्तिकरणेहारा जो प्रह्लाद है सो प्रह्लाद मैं हूं । तथा जितनेक संख्याके गणनकरणेहारे हैं तिन सर्वोंके मध्यविषे काल मैं हूं । तथा मृगतैं आदिलैके जितनेक पशु हैं तिन मृगादिक सर्वपशुवोंके मध्यविषे तिन सर्वपशुवोंका राजा जो सिंह है सो सिंह मैं हूं । तथा सर्व पक्षियोंके मध्यविषे तिन सर्व पक्षियोंका राजारूप तथा विनताका पुत्र जो गरुड है सो गरुड मैं हूं ॥ ३० ॥

किंच–

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) पवनः । पवताम् । अस्मि । रामः । शस्त्रभृताम् । अहम् । झषाणाम् । मकरः । च । अस्मि । स्रोतसाम् । अस्मि । जाह्नवी ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! वेगवालोंके मध्यमैं वायु मैं हूं तथा शस्त्रधारियोंके मध्यमैं राम मैं हूं तथा मत्स्योंके मध्यमैं मकर मैं हूं तथा नदियोंके मध्यमैं श्रीगंगाजी मैं हूं ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जितनेक पावनकरणेहारे पदार्थ हैं अथवा जितनेक वेगवाले पदार्थ हैं तिन सर्वोंके मध्यविषे पवन मैं हूं । तथा युद्धविषे अत्यंतकुशल जितनेक शस्त्रोंके धारण करणेहारे योद्धा हैं तिन सर्वोंके मध्यविषे सर्वराक्षसोंके कुलका नाशकरणेहारा परम शूरवीर जो दशरथका पुत्र श्रीराम है सो राम मैं हूं । तथा सर्व मत्स्योंके मध्यविषे मकरनामा मत्स्य मैं हूं । तथा वेगकरिकै चलायमान है जल जिन्होंविषे ऐसी जे यमुना गोदावरी आदिक सर्वनदियां हैं तिन सर्वनदियोंके मध्यविषे तिन सर्व नदियोंतैं श्रेष्ठ श्रीगंगाजी मैं हूं ॥ ३१ ॥

किंच—

सर्गाणामादिरंतश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२ ॥

(पदच्छेदः) सर्गाणाम् । आदिः । अंतः । च । मध्यम् । च । एव । अहम् । अर्जुन । अध्यात्मविद्या । विद्यानाम् । वादः । प्रवदताम् । अहम् ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अचेतनरूप कार्योंका उत्पत्ति तथा स्थिति तथा लय मैं परमेश्वर ही हूं तथा सर्वविद्याओंके मध्यमैं अध्यात्मविद्या मैं हूं तथा विवादके-र्त्तापुरुषोंकी कथावोंके मध्यमैं वादनामा कथा मैं हूं ॥ ३२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अचेतनरूप करिकै प्रसिद्ध जितनेक उत्पत्तिमान कार्य हैं तिन सर्वकार्योंका उत्पत्ति तथा स्थिति तथा लय मैं परमेश्वरही हूं । यद्यपि (अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च) इस वचनविषे पूर्व श्रीभगवान्नैं आपणेकूं सर्व भूतोंका उत्पत्तिस्थितिलयरूप कथन कऱ्या तथापि पूर्वभी तौ चेतन-रूपकरिकै प्रसिद्ध भूतोंकीही उत्पत्तिस्थितिलयरूपता कथन करीथी और अबी इहां अचेतनरूपकरिकै प्रसिद्ध भूतोंकी उत्पत्तिस्थितिलयरूपता कथन करी है । यातैं इहां पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति । तथा सर्वविद्यावोंके मध्यविषे मोक्षके प्राप्तिका हेतुरूप तथा जीवब्रह्मके अभेदका प्रतिपादक ऐसी जा उपनिषदरूप अध्यात्मविद्या है सा अध्यात्मविद्या मैं हूं । तथा परस्पर विवादकर्त्ता पुरुषोंकी जा वाद, जल्प, वितंडा यह तीनप्रकारकी कथा हैं तिन कथावोंके मध्यविषे वादनामा कथा मैं हूं । इहां यद्यपि (प्रवदताम्) यह शब्द विवादकर्त्तापुरुषोंका ही वाचक है तिन विवादकर्त्तापुरुषोंकी कथावोंका वाचक है नहीं तथापि जैसे पूर्व (भूतानामस्मि चेतना) इस वचनविषे भूतानां शब्दकी तिन भूतसंबंधी परि-णामोंविषे लक्षणा अंगीकार करीथी तैसे इहांभी प्रवदतां इस शब्दकी तिन विवादकर्त्तापुरुषसंबंधी कथावोंविषे लक्षणा अंगीकार करणी उचित है । तहां परस्पर रागद्वेषतैं रहित तथा परस्पर जयपराजयकी इच्छातैं रहित तथा परस्पर तत्त्वबोधनकरणेकी इच्छावाले ऐसे जे एकगुरुके पासि अध्ययनकरणेहारे दो शिष्य हैं अथवा गुरुके शिष्य दोनों हैं तिन दोनोंकी जा तत्त्वनिर्णयपर्यंत परस्पर प्रश्न उत्तररूप कथा है ताका नाम वादकथा है । और वादकथाका फलरूप जो

तत्त्वनिर्णय है तिस तत्त्वनिर्णयका प्रतिवादियोंके खंडनकरिकै संरक्षण करणेवासतै परस्पर जीतनेकी इच्छावाले दो पुरुषोंकी जो जय पराजयमात्रपर्यंत परस्पर कथा है ताका नाम जल्पकथा है तथा वितंडा कथा है। तहां छल जाति निग्रहस्थान इन तीनोंकारिकै परपक्षकूं दूषित करणा इतना अंश तौ जल्पकथाविषे तथा वितंडाकथाविषे समानही होवैहै, तथापि वितंडाकथाविषे तौ एक पुरुषनैं आपणे पक्षका केवल स्थापनही करीता है परपक्षविषे दूषण दईता नहीं। और अन्यपुरुषनैं तौ तिस पक्षविषे केवल दूषण दर्यीता है आपणे मतका स्थापन करीता नहीं। और जल्पकथाविषे तौ विवादकर्त्ता दोनों पुरुषोंनैं आपणा आपणा पक्ष स्थापनभी करीता है तथा दोनोंनैं परपक्षकूं दूषितभी करीता है इतना जल्प वितंडाका परस्पर भेद है। तहां अन्य अर्थके अभिप्राय करिकै उच्चारण करेहुए वचनका अन्य अर्थ कल्पनाकरिकै तिस वक्ता पुरुषकूं जो दूषण देणा है ताका नाम छल है। और असत् उत्तरका नाम जाति है और पराजयके हेतुका नाम निग्रहस्थान है छल जाति निग्रहस्थान इन तीनोंका विभाग तथा उदाहरण न्यायग्रंथोंविषे प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥

किंच-

अक्षराणामकारोस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ॥
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) अक्षराणाम् । अकारः । अस्मि । द्वंद्वः । सामासिकस्य । च । अहम् । एव । अक्षयः । कालः । धाता । अहम् । विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अक्षरोंके मध्यमैं अकार अक्षर मैं हूं तथा समाससमूहके मध्यमैं द्वंद्वसमास मैं हूं तथा मैं परमेश्वर ही क्षयतैं रहित कालरूप हूं तथा सर्वफलप्रदातावोंके मध्यमैं सर्वकर्मोंके फलप्रदाता अंतर्यामी ईश्वर मैं हूं॥ ३३॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! सर्व वर्णरूप अक्षरोंके मध्यविषे (अकारो वै सर्वावाक्) इस श्रुतितैं सर्ववाक्रूपकरिकै कथन कर्‍या जो अकार अक्षर है सो अकार अक्षर मैं हूं। तथा सर्वसमासोंका जो समूह है ताका नाम सामासिक है ऐसे समाससमूहके मध्यविषे उभयपदार्थ प्रधान जो रामकृष्णौ यह द्वंद्वसमास है सो द्वंद्वसमास मैं हूं। तहां उपकुंभं इत्यादिक अव्ययीभाव समास तौ पूर्वपदार्थप्रधान होवैहै । और

राजपुरुषः इत्यादिक तत्पुरुषसमास तौ उत्तरपदार्थप्रधान होवै है। और चित्रगुः इत्यादिक बहुव्रीहि समास तौ अन्य पदार्थप्रधान होवैहै। इसप्रकारतैं द्वंद्वसमासतैं भिन्न कोईभी समास उभयपदार्थप्रधान होवै नहीं यातैं तिन सर्वसमासोंतैं सो द्वंद्वसमास उत्कृष्ट है। और क्षणघटिकादिक नाशवान् कालका अभिमानीरूप तथा तिस सर्वकालकूं जानणेहारा जो परमेश्वरनामा अक्षय काल है जिस परमेश्वररूप अक्षयकालकूं (कालकालो गुणी सर्वविद्यः) इत्यादिक श्रुतियां कालकाभी कालरूपकरिकै प्रतिपादन करैंहैं, सो अक्षयकालरूपभी मैं परमेश्वरही हूं। यद्यपि (कालः कलयतामहम्)इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं पूर्वही आपणेकूं कालरूपता कथन करीथी तथापि पूर्व श्रीभगवान्नैं आपणेकूं नाशवान् कालरूपता कथन करीथी और अबी इहां अक्षयकालरूपता कथन करी है यातैं इस वचनविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं। और करेहुए कर्मके फलकी प्राप्तिकरणेहारे जितनेक राजादिक हैं तिन सर्व फलप्रदातावोंके मध्यविषे सर्व कर्मोंके फलप्रदाता जो ईश्वर है सो अंतर्यामी ईश्वर मैं हूं। इहां किसी टीकाविषे तौ (द्वंद्वः सामासिकस्य च) इस वचनका यह अर्थ कथन कऱ्याहै। वेदमंत्रोंके अर्थका कथन करणेवासतै जो विद्वान् पुरुषोंका अथवा गुरुशिष्यका एकत्र अवस्थान है ताका नाम समास है ता समासविषे तिन सर्वोंनैं जितनाक अर्थ निर्णय कऱ्या है ता सर्व अर्थका नाम सामासिक है। तिस सर्व अर्थके मध्यविषे द्वंद्व कहिये रहस्य अर्थ मैं हूं। तहां (द्वंद्वरहस्ये) इस सूत्रविषे शाब्दिक पुरुषोंनैं द्वंद्वशब्दकूं रहस्य अर्थका वाचक कह्याहै ॥ ३३ ॥

किंच–

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ॥
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) मृत्युः। सर्वहरः। च। अहम्। उद्भवः। च। भविष्यताम्। कीर्तिः। श्रीः। वाक्। च। नारीणाम्। स्मृतिः। मेधा। धृतिः। क्षमा ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा संहारकर्त्तावोंके मध्यमैं सर्वका संहार करणेहारा मृत्यु मैं हूं तथा भावीकल्याणोंके मध्यमैं उत्कर्षरूप उद्भव मैं हूं तथा सर्व नारियोंके मध्यमैं कीर्ति श्री वाक् स्मृति मेधा धृति क्षमा यह धर्मकी सप्त पत्नियां मैं हूं ॥ ३४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इसलोकविषे जितनेक संहारकरणेहारे हैं तिन सर्वोंके मध्यविषे सर्वजगत्का संहारकरणेहारा जो मृत्यु है सो मृत्यु मैं हूं। तथा होणेहारे जितनेक कल्याण हैं तिन सर्वकल्याणोंके मध्यविषे जो ऐश्वर्यका उत्कर्षरूप उद्भव है सो उद्भव मैं हूं। तथा सर्वनारियोंके मध्यविषे धर्मकी पत्नियांरूप जे कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा यह सप्त नारियां हैं ते मैं हूं। तहां इसपुरुषका धर्मीपणा है निमित्त जिसविषे ऐसी जा प्रसिद्धपणेकरिकै च्यारों दिशावोंविषे स्थित अनेक देशोंमें रहणेहारे लोकोंके ज्ञानकी विषयतारूप प्रख्याति है ताका नाम कीर्ति है। और धर्म अर्थ काम इन तीनोंका नाम श्री है। अथवा शरीरकी शोभाका नाम श्री है। अथवा उज्ज्वलकांतिका नाम श्री है। और सर्व अर्थकूं प्रकाश करणेहारी जा संस्कृत वाणीरूप सरस्वती है ताका नाम वाक् है। और पूर्व अनुभव करेहुए अर्थकी जा बहुतकालके पीछेभी स्मरणकरणेकी शक्ति है ताका नाम स्मृति है। और अनेकग्रंथोंके अर्थ धारणकरणेकी जा शक्ति है ताका नाम मेधा है। और अनेक प्रकारकी पीडाके प्राप्तहुएभी शरीरइंद्रियरूप संघातके स्थिरताकरणेकी जा शक्ति है ताका नाम धृति है। अथवा यथा इच्छापूर्वक प्रवृत्ति करावणेहारे कारणकरिकै चपलताके प्राप्त हुएभी तिस प्रवृत्तितैं निवृत्त करणेकी जा शक्ति है ताका नाम धृति है। और हर्षविषाद दोनोंविषे जा चित्तकी अविकारता है ताका नाम क्षमा है इति। जिन कीर्तिआदिक सप्तनारियोंके आभासमात्रके संबंधकरिकै भी यह जन सर्वलोकोंकरिकै आदर करणेयोग्य होवै है, ऐसी कीर्तिआदिक सप्त नारियोंकूं सर्वनारियोंतैं उत्तमपणा अतिप्रसिद्धही है ॥ ३४ ॥

किंच—

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम् ॥
मासानां मार्गशीर्षोहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) बृहत्साम । तथा । साम्नाम् । गायत्री । छंदसाम् । अहम् । मासानाम् । मार्गशीर्षः । अहम् । ऋतूनाम् । कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! गीतिविशेषरूप सामोंके मध्यमैं बृहत्साम मैं हूं तथा छंदोंके मध्यमैं गायत्रीछंद मैं हूं तथा मासोंके मध्यमैं मार्गशीर्षमास मैं हूं तथा ऋतुवोंके मध्यमैं वसंतऋतु मैं हूं ॥ ३५ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! ऋगादिक च्यारिवेदोंके मध्यविषे सामवेद मैं हूं । या प्रकारके वचनकरिकै सामवेदकी उत्कृष्टता पूर्व हमनैं कथन करीथी तिस सामवेद-विषेभी यह अन्यविशेषता है—ऋचावोंके अक्षरोंविषे आरूढ जे गीतिविशेषरूप साम हैं तिन सर्वसामोंके मध्यविषे (त्वामिद्धि हवामहे) इस ऋचाविषे स्थित गीति-विशेषरूप तथा सर्वका ईश्वररूपकरिकै इंद्रकी स्तुतिरूप जो बृहत्साम है सो बृह-त्साम मैं हूं । और नियमपूर्वक हैं अक्षर तथा पाद जिसके ताका नाम छंद है ऐसे छंदभावकरिकै विशिष्ट जे वेदकी ऋचा हैं तिन सर्व छंदोंके मध्यविषे द्विज-पणेका संपादक जा चतुर्विंशति अक्षरोंवाली गायत्री है जा गायत्री (गायत्री वा इदं सर्वं भूतम्) इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै प्रतिपादित है ऐसा गायत्रीनामा छंद मैं हूं । तथा द्वादशमासोंके मध्यविषे अत्यंत शीत आतपतैं रहित होणेतैं सुखका हेतु जो मार्गशीर्ष मास है सो मार्गशीर्ष मास मैं हूं । तथा षट्ऋतुवोंके मध्यविषे सर्वसुगंधिवाले पुष्पोंका आकार होणेतैं अत्यंतरमणीक तथा (वसंते ब्राह्मणमुपन-यीत । वसंते ब्राह्मणोऽग्निना दधीत । वसंते ज्योतिषा यजेत ।) इत्यादिक श्रुति-योंकरिकै प्रसिद्ध जो वसंतऋतु है सो वसंतऋतु मैं हूं ॥ ३५ ॥

किंच—

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥
जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

(पदच्छेदः) द्यूतम् । छलयताम् । अस्मि । तेजः । तेजस्विनाम् । अहम् । जयः । अस्मि । व्यवसायः । अस्मि । सत्त्वम् । सत्त्ववताम् । अहम् ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! छलकरणेहारे पुरुषोंका जूवारूप छल मैं हूं तथा तेजस्वीपुरुषोंका तेज मैं हूं तथा जयकरणेहारे पुरुषोंका जय मैं हूं तथा व्यवसाय-वाले पुरुषोंका व्यवसाय मैं हूं तथा सत्त्ववाले पुरुषोंका सत्त्व मैं हूं ॥ ३६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! परका वंचनरूप छलके करणेहारे जे धूर्त पुरुष हैं तिन छलवाले पुरुषोंका जो जूवारूप छल है जो जूवारूप छल सर्वस्वहरणकर-णेका कारण है सो जूवारूप छल मैं हूं । तथा अत्यंत उग्रप्रभाववाले जे तेजस्वी पुरुष हैं तिन तेजस्वी पुरुषोंका जो अप्रतिहत आज्ञारूप तेज है सो तेज मैं हूं । तथा

जयकरणेहारे पुरुषोंका जो पराजयहुए पुरुषोंकी अपेक्षाकरिकै उत्कृष्टतारूप जय है सो जय मैं हूं । तथा व्यवसायवाले पुरुषोंका जो नियमतैं फलकी प्राप्ति करणेहारा उद्यमरूप व्यवसाय है सो व्यवसाय मैं हूं । तथा सात्त्विकपुरुषोंका जो धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यतारूप सत्त्व है अर्थात् सत्त्वगुणका कार्य है सो सत्त्व मैं हूं ॥३६॥

किंच–

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पांडवानां धनंजयः ॥
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशनाकविः ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) वृष्णीनाम् । वासुदेवः । अस्मि । पांडवानाम् । धनंजयः । मुनीनाम् । अपि । अहम् । व्यासः । कवीनाम् । उशनाकविः ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यादवोंके मध्यमें वसुदेवका पुत्र कृष्ण मैं हूं तथा पांडवोंके मध्यमैं धनंजय मैं हूं तथा मुनियोंके मध्यमें व्यासमुनि मैं हूं तथा कवियोंके मध्यमें शुक्रकवि मैं हूं ॥ ३७ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! सर्वयादवोंके मध्यविषे वसुदेवका पुत्ररूपकरिकै प्रसिद्ध तथा तुम्हारे प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेशकरणेहारा यह कृष्ण मैं हूं । तथा सर्वपांडवोंके मध्यविषे धनंजयनामा जो तूं अर्जुन है सो मैं हूं । तथा मननशीलमुनियोंके मध्यविषे श्रीव्यासमुनि मैं हूं । तथा सूक्ष्म अर्थके विवेककरणेहारे कवियोंके मध्यविषे शुक्रनामा कवि मैं हूं ॥ ३७ ॥

किंच–

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ॥
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) दंडः । दमयताम् । अस्मि । नीतिः । अस्मि । जिगीषताम् । मौनम् । च । एव । अस्मि । गुह्यानाम् । ज्ञानम् । ज्ञानवताम् । अहम् ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! शिक्षाकरणेहारे पुरुषोंका दंड मैं हूं तथा जीतनेकी इच्छावाले पुरुषोंका न्यायरूप नीति मैं हूं तथा गुह्यअर्थोंका मौन मैं हूं तथा ज्ञानवाले पुरुषोंका ज्ञान मैं हूं ॥ ३८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! अशिक्षित दुष्टपुरुषोंकूं कुमार्गतैं निवृत्तकरिकै सुमार्गविषे प्रवृत्तकरणेहारे जे राजादिक पुरुष हैं तिन राजादिकोंका जो दुष्टपुरुषोंकूं तिस कुमार्गतैं निवृत्तकरणेका हेतुरूप दंड है सो दंड मैं हूं। तथा जीतणेकी इच्छावान् पुरुषोंका जो जयके उपायका प्रकाशक न्यायरूप नीति है सा नीति मैं हूं। तथा गुह्य अर्थोंके गोपराखणेका हेतुरूप जो वाक् इंद्रियका निग्रहरूप मौन है सो मौन मैं हूं। तात्पर्य यह–जो पुरुष वाक्इंद्रियका निग्रह करिकै तूष्णींस्थित होवैहै तिस पुरुषके अंतरके अभिप्रायकूं कोईभी जानिसकता नहीं । यातैं सो वाणीका निग्रहरूप मौन अर्थके गोपराखणेका हेतु है इति। अथवा इसका यह अर्थ करणा। गोप्यपदार्थोंके मध्यविषे संन्याससहित श्रवणमननपूर्वक जो आत्माका निदिध्यासनरूप मौन है सो मौन मैं हूं। तथा ज्ञानवाले सर्व ज्ञानीपुरुषोंका जो वेदांतशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासनकरिकै जन्य तथा सर्व अज्ञानका विरोधी मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका आत्मज्ञान है सो आत्मज्ञान मैं हूं ॥ ३८ ॥

किंच–

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ॥
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९॥

(पदच्छेदः) यत् । च । अपि । सर्वभूतानाम् । बीजम् । तत् । अहम् । अर्जुन । न । तत् । अस्ति । विना । यत् । स्यात् । मया । भूतम् । चराचरम् ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तथा जो चेतन इन सर्वभूतोंका कारण है सोकारण भी मैंहीहूं मैं परमेश्वरतैं विना जो चरअचररूप वस्तु होवै सो वस्तु नहीं है ॥ ३९॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जैसे प्रसिद्ध वृक्षोंके प्ररोहका कारण बीज होवैहै तैसे इन सर्व भूतोंके प्ररोहका कारणरूप जो माया उपहित चेतनरूप बीज है सो बीजरूप कारणभी मैंही हूं। हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरतैं विना जो कोई चरअचररूप वस्तु विद्यमान होवै है सो ऐसी कोई वस्तु है नहीं किंतु ते सर्व भूत मैं बीजरूप परमेश्वरका कार्य होणेतैं मैं सत्तास्फुरणरूप परमेश्वरकरिकैही व्याप्त हैं ॥ ३९ ॥

अब इस विभूतिप्रकरणके अर्थका उपसंहार करतेहुए श्रीभगवान् तिस विभूतिकूं संक्षेपतैं कथन करैहैं–

नांतोस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) न । अंतः । अस्ति । मम । दिव्यानाम् । विभूतीनाम् । परंतप । एषः । तु । उद्देशतः । प्रोक्तः । विभूतेः । विस्तरः । मया ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके दिव्य विभूतियोंका कोई अंत नहीं है और यह जो हमनें तुम्हारेप्रति विभूतिका विस्तार कथन कऱ्याहै सो एकदेश-करिकै कथन कऱ्याहै ॥ ४० ॥

भा०टी०—हे परंतप ! अर्थात् हे कामक्रोधादिक शत्रुवोंकूं ताप करणेहारा अर्जुन ! मैं परमेश्वरका तिन दिव्यविभूतियोंका कोई अंत नहींहै अर्थात् ते सर्वविभूतियां इतनी हैं या प्रकारकी संख्या तिन विभूतियोंकी नहीं है । यातैं सर्वज्ञ पुरुषोंनैंभी सा हमारे विभूतियोंकी संख्या जाणनेकूं वा कहणेकूं समर्थ नहीं होईता । शंका—हे भगवन् ! जबी सर्वज्ञपुरुषभी तिन विभूतियोंके कहणेकूं समर्थ नहीं है तबी (आदित्यानामहं विष्णुः ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै ते आपणी विभूतियां आप कैसे कहतेभये हो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (एष तु इति) हे अर्जुन ! यह जो हमनें तुम्हारे प्रति आपणी विभूतिका विस्तार कथन कऱ्याहै सोभी किसी एकदेशकरिकै कथन कऱ्याहै ॥ ४० ॥

किंच—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम् ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) यत् । यत् । विभूतिमत् । सत्त्वम् । श्रीमत् । ऊर्जितम् । एव । वा । तत् । तत् । एव । अवगच्छ । त्वम् । मम । तेजोऽंश-संभवम् ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो जो प्राणी ऐश्वर्यवाला है तथा लक्ष्मीवाला है तथा बलवाला है तिसं तिसं प्राणीकूं ही तूं मैं परमेश्वरके शक्तिके अंशकरिकै उत्पन्नहुआ जान ॥ ४१ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इसलोकविषे जो जो प्राणी ऐश्वर्यरूप विभूतिकरिकै युक्त है तथा जो जो प्राणी श्रीमत् है अर्थात लक्ष्मीकरिकै वा संपदाकरिकै वा शोभाकरिकै वा कांतिकरिकै युक्त है तथा जो जो प्राणी अत्यंत बलादिकोंकरिकै युक्त है तिस तिस प्राणीकूंही तूं मैं परमेश्वरकी शक्तिके अंशकरिकै उत्पन्न हुआ जान । यह भगवान्का वचन पूर्व नहीं कथन करीहुई विभूतियोंकेभी संग्रह करावणेवासतै है ॥ ४१ ॥

इसप्रकार एकदेशरूप अवयवकरिकै विभूतिकूं कथन करिकै अब सकलतारूप करिकै तिस विभूतिकूं कहैं हैं—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अथवा । बहुना । एतेन । किम् । ज्ञातेन । तव । अर्जुन । विष्टभ्य । अहम् । इदम् । कृत्स्नम् । एकांशेन । स्थितः । जगत् ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत ज्ञातकरिकै तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होवैगा इस सर्व जगतकूं मैं परमेश्वर एकदेशकरिकै धारणकरिकै स्थित हुआहूं ॥ ४२ ॥

भा० टी०—इहां (अथवा) यह पद पूर्वउक्त विभूतिपक्षतैं भिन्न पक्षका वाचक है सो पक्षांतर कहैं हैं । हे अर्जुन ! (आदित्यानामहं विष्णुः) इत्यादिक वचनोंकरिकै मंदअधिकारी पुरुषोंके ध्यानवासतै कथन करी जा हमनैं आपणी सावशेष विभूति है इस बहुतप्रकारकी सावशेष विभूतिके ज्ञानकरिकै तैं उत्तम अधिकारीकूं कौन फल है किंतु कोईभी फल तेरेकूं नहीं । जिसकारणतैं पूर्वउक्त यत्किंचित् विभूतिके ज्ञानहुएभी हमारी सर्वविभूतियोंका ज्ञान होता नहीं । यातैं तैं उत्तम अधिकारीकूं तौ याप्रकारतैं हमारा ध्यान कऱ्या चाहिये । हे अर्जुन ! मैं परमात्मादेव इस सर्वजगत्कूं आपणे एकदेशमात्रकरिकै धारण करिकै अथवा व्याप्त करिकै स्थित हूं मैं परमात्मादेवतैं भिन्न कोई वस्तु है नहीं । तहां श्रुति—

(पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।) अर्थ यह--इस परमात्मादेवका यह सर्व विश्व एक पाद है । और तीन पाद तौ आपणे निर्गुण स्वयंज्योतिस्वरूपविषे स्थित हैं इति । यातैं हे अर्जुन ! द्वादश आदित्योंविषे विष्णुनामा आदित्य मैं हूं तथा नक्षत्रोंके मध्यविषे चंद्रमा मैं हूं इत्यादिक परिच्छिन्न दृष्टिका परित्याग करिकै तूं सर्वजगत्विषे मैं परमात्मादेवकूं व्यापक देख इति । यद्यपि निरवयव निराकार परमात्माका अंश तथा पाद संभवता नहीं तथापि जैसे निरवयव आकाशके घटमठादिक उपाधियोंकरिकै घटाकाश मठाकाश मेघाकाश इत्यादिक अंशोंकी कल्पना होवैहै तैसे निरवयव निराकार परमात्मादेवके भी अविद्यादिक उपाधियोंकरिकै ते अंश तथा पाद कल्पना करे जावैं हैं । वास्तवतैं ते अंश तथा पाद हैं नहीं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशाध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व दशम अध्यायविषे श्रीभगवान् नानाप्रकारकी विभूतिकूं कथनकरिकै ताके अंतविषे (विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।) इस वचनकरिकै परमेश्वरके सर्व विश्वात्मक स्वरूपकूं कथन करताभया । तिसकूं श्रवणकरिकै परम उत्कंठाकूं प्राप्तहुआ सो अर्जुन परमेश्वरके तिस सर्व विश्वात्मक स्वरूपके साक्षात्कार करणेकी इच्छा करताहुआ तथा पूर्वउक्त अर्थकी प्रशंसा करता हुआ या प्रकारका वचन कहताभया--

अर्जुन उवाच ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोयं विगतो मम ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) मदनुग्रहाय । परमम् । गुह्यम् । अध्यात्मसंज्ञितम् । यत् । त्वया । उक्तम् । वचः । तेन । मोहः । अयम् । विगतः । मम ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! हमारे अनुग्रहवासतै आपनैं जो परम गुह्यं अध्यात्मनामवाला वचनं कथनं कऱ्याहै तिस वचनकरिकै मैं अर्जुनका यह मोह नष्टहोताभयाहै ॥ १ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! यह हमारे भ्रातापुत्रादिक सर्व बांधव मरणकूं प्राप्त होते हैं और मैं अर्जुन इनोंका हनन करता हूं इसप्रकारके शोकमोहरूप सागरविषे डूब्याहुआ जो मैं अर्जुन हूं तिस हमारे अनुग्रहवासतै अर्थात् तिस शोकमोहकी निवृत्तिरूप उपकारवासतै परमकृपालु सर्वज्ञ आपनैं (अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्) इस वचनतैं आदिलैके षष्ठ अध्यायकी समाप्तिपर्यंत त्वंपदार्थका निरूपक जो वाक्य कथन कऱ्या है कैसा है सो वाक्य–परम है अर्थात् निरतिशयमोक्षरूप पुरुषार्थविषे परिअवसानवाला है । अथवा परम कहिये शीघ्रही शोकमोहका निवर्त्तक होणेतैं उत्कृष्ट है । पुनः कैसा है सो वचन–गुह्य है अर्थात् शास्त्रनिषिद्ध कर्मविषे प्रवृत्त तथा श्रद्धातैं रहित तथा विषयोंविषे आसक्त ऐसे अनधिकारी पुरुषोंकूं नहीं देणेयोग्य है । पुनः कैसा है सो वचन–अध्यात्मसंज्ञित है अर्थात् आत्माअनात्माके विवेककूं विषय करणेहारा है । तहां आत्माअनात्माके विवेक करणेवासतै जो शास्त्र है ताका नाम अध्यात्म है सो अध्यात्म है संज्ञा क्या नाम जिसका ताका नाम अध्यात्मसंज्ञित है । ऐसे आपके वचनकरिकै मैं अर्जुनका यह स्वअनुभवसिद्ध मोह नष्ट होताभया है । अर्थात् मैं अर्जुन इन भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करता हूं तथा मैं अर्जुननैं यह भीष्मद्रोणादिक हनन करीते हैं इत्यादिक नानाप्रकारका विपर्ययरूप मोह हमारा तिस आपके वचनकरिकै नष्ट होताभया है । जिस कारणतैं तिस पूर्वउक्त वचनविषे (नायं हंति न हन्यते । न जायते म्रियते वा कदाचित् । वेदाविनाशिनं नित्यम् । अच्छेद्योयमदाह्योयम् ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै इस आत्माकूं आपनैं सर्वविकारोंतैं रहित कथन कऱ्या है तिस कारणतैं सो हमारा मोह अभी नष्ट होताभयाहै । तहां इस श्लोकके प्रथमपादविषे जो एक अक्षर अधिक है सो आर्ष है अर्थात् ऋषिप्रणीत होणेतैं दुष्ट नहीं है ॥ १ ॥

तहां जैसे त्वंपदार्थका निर्णय है प्रधान जिसविषे ऐसा षष्ठ अध्यायपर्यंत आपका वचन हमनैं श्रवण कऱ्या है । तैसे तत्पदार्थका निर्णय है प्रधान जिसविषे ऐसा सप्त अध्यायतैं आदिलैके दशम अध्यायपर्यंत आपका वचनभी हमनैं श्रवण कऱ्या है इस वार्त्ताकूं अर्जुन कथन करैहै–

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ॥
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) भवाप्ययौ । हि । भूतानाम् । श्रुतौ । विस्तरशः । मया । त्वत्तः । कमलपत्राक्ष । माहात्म्यम् । अपि । च । अव्ययम् ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे कमलपत्राक्ष ! इन भूतोंके उत्पत्तिप्रलय दोनोंतैं भगवान्‌तैं ही हमनैं विस्तारतैं श्रवण करेहैं तथा आपका सोपाधिक माहात्म्य तथा निरुपाधिक अव्ययरूप माहात्म्य भी हमनैं श्रवण कन्याहै ॥ २ ॥

भा० टी०—हे कमलपत्राक्ष श्रीभगवन् ! इहां कमलके पत्रकी न्याई दीर्घ तथा विशाल तथा किंचित् रक्ततायुक्त तथा अत्यंत मनोरम हैं अक्षि क्या नेत्र जिसके ताका नाम कमलपत्राक्ष है । इस संबोधनकरिकै अर्जुननैं भगवान्‌की जो अत्यंत सौंदर्यता कथन करीहै सो परमेश्वरविषयक प्रेमकी अतिशयतातैं कथन करीहै । अथवा (हे कमलपत्राक्ष) इस संबोधनका यह अर्थ करणा—(कमलति प्रकाशयति इति कमलमात्मज्ञानम् ।) अर्थ यह—स्वस्वरूपानंदरूप जो ब्रह्मसुख है ताका नाम कं है तिस ब्रह्मसुखकूं जो प्रकाश करैहै ताका नाम कमल है ऐसा महावाक्यजन्य आत्मज्ञान है । आत्मज्ञानकरिकैही ता ब्रह्मसुखका प्रकाश होवै है । तथा (पतनात् त्रायते इति पत्रम् ।) अर्थ यह—इन धिकारी पुरुषोंकूं इस जन्ममरणके प्रवाहरूप संसारसमुद्रविषे पतनतैं जो रक्षण करैहै ताका नाम पत्र है ऐसा पत्ररूपभी सो आत्मज्ञान ही है अर्थात् कमलरूप होवै तथा सोईही पत्ररूप होवै ताका नाम कमलपत्र है । (कमलपत्रेण अक्ष्यते प्राप्यते इति कमलपत्राक्षः ।) अर्थ यह—तिस कमलपत्रनामा आत्मज्ञानकरिकै जो प्राप्त होवै ताका नाम कमलपत्राक्ष है अर्थात् हे आत्मज्ञानकरिकै प्राप्त होणे योग्य ! शुद्ध परब्रह्म तैं परमेश्वरतैंही इन सर्वभूतोंके उत्पत्ति प्रलय हमनैं (अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य । अहं सर्वस्य प्रभवः ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै विस्तारतैं श्रवण करे हैं । कोई संक्षेपतैं एकही बार श्रवण नहीं करे । हे भगवन् ! आप परमेश्वरतैं इन सर्व भूतोंके उत्पत्ति प्रलयकूं ही केवल हमनैं नहीं श्रवण कन्या किंतु तुम्हारा माहात्म्यभी हमनैं बहुतवार श्रवण कन्या है । तहां महात्मारूप परमेश्वरका जो निरतिशय ऐश्वर्यरूप भाव है ताका नाम माहात्म्य है सो माहात्म्य यह है—इस लोकविषे जो कर्त्ता होवे है सो विकारीही होवेहै । और यह परमेश्वर तौ इस जगतके उत्पत्ति

आदिकोंका करताहुआ भी अविकारीरूपही है । और इस लोकविषे जो पुरुष दूसरोंकूं प्रेरणा करिकै शुभ अशुभ कर्म करावैहै सो पुरुष विषमतादोषवाला ही होवैहै । और यह परमेश्वर तौ जीवोंकूं प्रेरणा करिकै शुभ अशुभ कर्म करावता हुआभी विषमतादोषतैं रहित है । और इस लोकविषे जो पुरुष विचित्र फलका प्रदाता होवै है सो पुरुष असंग उदासीन होवै नहीं । और यह परमेश्वर तौ बंधमोक्षादिक विचित्र फलका प्रदाता हुआभी असंग उदासीनही है । इसतैं आदिलैके दूसराभी सर्वात्मत्व आदिक सोपाधिक माहात्म्यभी हमनैं बहुतवार श्रवण कऱ्याहै । हे भगवन् ! आप परमेश्वरका केवल यह सोपाधिक माहात्म्यही हमनैं श्रवण नहीं कऱ्या किंतु आप परमेश्वरका निरुपाधिक अव्यय-रूप माहात्म्यभी हमनैं श्रवण कऱ्याहै । इहां व्यय नाम नाशका है ता नाशतैं जो रहित होवै ताका नाम अव्यय है ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानं परमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । एतत् । यथा । आत्थ । त्वम् । आत्मानम् । परमेश्वर । द्रष्टुम् । इच्छामि । ते । रूपम् । ऐश्वरम् । पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे परमेश्वर ! जिस प्रकारतैं आपणे आत्माकूं तूं कथन करताहै सो आपका कहणा यथार्थही है तथापि हे पुरुषोत्तम ! तुम्हारा ऐश्वर रूप देखणेकूं मैं इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥

भा० टी०—हे परमेश्वर ! जिस सोपाधिक निरतिशय ऐश्वर्यरूप करिकै तथा जिस निरुपाधिक निरतिशय ऐश्वर्यरूपकरिकै आप आपणे स्वरूपकूं कथन करते भये हो, सो आपका कहणा यथार्थही है । किसी कालविषेभी आपका कहणा अयथार्थ नहीं है । अर्थात् तुम्हारे वचनविषे कहांभी हमारेकूं अविश्वासकी शंका नहीं है । हे पुरुषोत्तम ! यद्यपि हमारा आपके वचनोंविषे दृढ विश्वास है तथापि कृतार्थ होणेकी इच्छा करिकै मैं अर्जुन तुम्हारे ऐश्वर्यरूपके देखणेकी इच्छा करता हूं । अर्थात् ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति बल वीर्य तेज इत्यादि गुणोंकरिकै संपन्न जो आप ईश्वरका अद्भुत स्वरूप है ताका नाम ऐश्वर्यरूप है ता रूपके देखणेकी मैं इच्छा करता हूं । तहां सर्व पुरुषोंतैं सर्वज्ञतादिक

गुणोंकरिकै जो उत्तम होवै ताका नाम पुरुषोत्तम है । इस पुरुषोत्तम संबोधनकरिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌के प्रति यह अर्थ सूचन कर्‍या । हे भगवन् ! तुम्हारे वचनविषे हमारेकूं अविश्वास नहीं है । तथा आपके तिस ऐश्वर्यरूपके देखणेकी इच्छाभी हमारेकूं बहुत है । इस हमारे वृत्तांतकूं आप सर्वज्ञ होणेतैं तथा अंतर्यामी होणेतैं जानतेही हो ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हारे करिकै देखणेकूं अशक्य जो हमारा स्वरूप है तिस स्वरूपके देखणेकी इच्छा तूं किसवासतै करता है । जो वस्तु देखणेकूं शक्य होवैहै तिस वस्तुकेही देखणेकी इच्छा करणी उचित होवैहै । ऐसी श्रीभगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहै है-

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ॥
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) मन्यसे । यदि । तत् । शक्यम् । मया । द्रष्टुम् । इति । प्रभो । योगेश्वर । ततः । मे । त्वम् । दर्शय । आत्मानम् । अव्ययम् ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे प्रभो ! सो तुम्हारा ऐश्वररूप मैं अर्जुननैं देखणेकूं शक्य है इसप्रकार जबी आप मानते होवौ तबी हे योगियोंके ईश्वर हमारे ताईं आप नाशतैं रहित तिस ऐश्वररूपविशिष्ट आत्माकूं दिखावो ॥ ४ ॥

भा० टी०-तहां सृष्टि, स्थिति, संहार, प्रवेश, प्रशासन इन पांचोंके करणे-विषे जो समर्थ होवै ताका नाम प्रभु है । हे प्रभो ! अर्थात् हे सर्वके स्वामिन् ! सो आपका ऐश्वररूप मैं अर्जुननैं देखणेकूं शक्य है । ऐसे जबी आप मानते होवौ अर्थात् ऐसे जबी आप जानते होवौ । अथवा यह अर्जुन इस हमारे रूपको देखै ऐसी जबी आप इच्छा करतेहोवौ तबी हे सर्वयोगियोंके ईश्वर ! तिस आपकी इच्छाके वशतैं मैं अत्यंत जिज्ञासु अर्जुनके ताईं परम कारुणिक आप तिस ऐश्वररूप विशिष्ट तथा नाशतैं रहित आत्माकूं दिखावो अर्थात् तिस आपके स्वरूपकूं हमारे चक्षुवोंका विषय करौ । इहां जे पुरुष अणिमादिक अष्टसिद्धियों करिकै युक्त हैं तिनोंका नाम योगी है तिन सर्व योगियोंका जो ईश्वर होवै ताका नाम योगेश्वर है । इस योगेश्वरसंबोधनकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ भगवान्‌के प्रति

सूचन कऱ्या । अणिमादिक सिद्धियोंकारिकै युक्त जे योगी पुरुष हैं ते योगी पुरुषभी आपणी इच्छाके वशतैं अशक्य कार्यकूंभी सिद्धकरिसकैं हैं । और आप तौ तिन योगियोंके भी ईश्वर हो अर्थात् परमेश्वरके ध्यान करिकैही तिन योगी पुरुषोंकूं ऐसा सामर्थ्य प्राप्तभया है । यातैं आप जो कदाचित् तिस स्वरूपके दिखावणेकी इच्छा करोगे तौ मैं अर्जुन तिस आपके स्वरूपकूं अवश्यकरिकै देखूंगा इति । अथवा (हे योगेश्वर) इस संबोधनका यह दूसरा अर्थ करणा– मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारका जो जीवब्रह्मके एकत्वका दर्शनरूप ज्ञानयोग है ताका नाम योग है ता योगका जो ईश्वर होवै अर्थात् अधिकारी जनोंके प्रति ता ज्ञान-योगकी प्राप्ति करणेविषे जो समर्थ होवै ताका नाम योगेश्वर है ॥ ४ ॥

इसप्रकार अत्यंत भक्त अर्जुनकारिकै प्रार्थना करेहुए श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति तिस स्वरूपके दिखावणेकी इच्छा करतेहुए कहैं हैं–

श्रीभगवानुवाच ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) पश्य । मे । पार्थ । रूपाणि । शतशः । अथ । सहस्रशः । नानाविधानि । दिव्यानि । नानावर्णाकृतीनि । च ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! नानाप्रकारके वर्ण तथा आकृति हैं जिन्होंके ऐसे नानाप्रकारके अद्भुत अनेक शत तथा अनेकसहस्र मैं परमेश्वरके रूपोंकूं तूं देख ॥ ५ ॥

भा० टी०–इहां इस श्लोकतैं आदिलैके अगले च्यारिश्लोकोंविषे क्रमतैं (पश्य) इस शब्दकी आवृत्तिकरिकै श्रीभगवान् ते आपणे दिव्यरूप मैं तुम्हारेकूं दिखावताहूं तूं सावधान होउ इसप्रकार ता अर्जुनकूं अभिमुख करताभया है । और (शतशः अथ सहस्रशः) इन संख्यावाचक दोनोंपदोंकारिकै श्रीभगवान्नैं तिन रूपोंविषे अपरिमितरूपता कथन करी है यातैं यह अर्थ सिद्धभया । हे अर्जुन ! विलक्षण विलक्षण नीलपीतादिक वर्ण हैं जिन्होंके तथा विलक्षणविलक्षण अवयवोंकी रचना-विशेषरूप आकृति है जिनोंकी ऐसे जे अनेकप्रकारके तथा अत्यंत अद्भुत तथा

अपरिमित संख्यावाले मैं परमेश्वरके रूप हैं तिन रूपोंकूं तूं देख अर्थात् तिन रूपोंके देखणेकूं तूं योग्य होउ ॥ ५ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति आपणे दिव्यरूपोंके दिखावणेकी प्रतिज्ञा करी । अब तिस प्रतिज्ञाके पूर्णकरणेवासतै श्रीभगवान् तिस अर्जुनके प्रति दोश्लोकोंकारिकै यत्किंचितमात्र ते आपणे रूप कथन करैं हैं–

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) पश्य । आदित्यान् । वसून् । रुद्रान् । अश्विनौ । मरुतः । तथा । बहूनि । अदृष्टपूर्वाणि । पश्य । आश्चर्याणि । भारत ॥६॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं आदित्योंकूं तथा वसुवोंकूं तथा रुद्रोंकूं तथा अश्विनीकुमारोंकूं तथा मरुतोंकूं देखँ तथा पूर्व नहीं देखेहुए बहुत अद्भुत रूपोंकूं देखँ ॥ ६ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! तूं द्वादश आदित्योंकूं देख । तथा अष्ट वसुवोंकूं देख । तथा एकादश रुद्रोंकूं देख । तथा दोनों अश्विनीकुमारोंकूं देख । तथा उनंचास मरुतोंकूं देख । तथा इनोंतैं अन्य दूसरेभी देवतावोंकूं तूं देख । हे अर्जुन ! जे रूपतैं अर्जुननैं तथा किसी अन्य प्राणीनैं इस मनुष्यलोकविषे कबीभी देखे नहीं हैं ऐसे बहुत अद्भुतरूपोंकूं अबी तूं देख इति । तहां (बहूनि) यह वचन (शतशोथ सहस्रशः) इस पूर्व उक्तवचनका व्याख्यानरूप है । और (आदित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।) यह वचन (नानाविधानि) इस पूर्व उक्तवचनका व्याख्यानरूप है । और (अदृष्टपूर्वाणि) यह वचन (दिव्यानि) इस पूर्व उक्तवचनका व्याख्यानरूप है । और (आश्चर्याणि) यह वचन (नानावर्णाकृतीनि च) इस पूर्व उक्तवचनका व्याख्यानरूप है ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! केवल इतनेमात्र रूपोंकूंही तूं देखणेयोग्य नहीं है, किंतु यह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत्‌ही हमारे देहविषे स्थितहुआ तूं देख । इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं--

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ॥
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) इह । एकस्थम् । जगत् । कृत्स्नम् । पश्य । अद्य । सचराचरम् । मम । देहे । गुडाकेश । यत् । च । अन्यत् । द्रष्टुम् । इच्छसि ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! हमारे इस देहविषे एकअवयवविषे स्थित जंगमस्थावरसहित समस्त जगतकूं तूं आज देख तथा जो कोई अन्यभी जयपराजयादिक देखणेकूं इच्छाकरता है सोभी देख ॥ ७ ॥

भा० टी०–हे गुडाकेश ! अर्थात् हे निद्राकूं जयकरणेहारा अर्जुन ! इस हमारे देहविषे किसीएक नखके अग्रमात्ररूप अवयवविषे स्थित इस स्थावरजंगमसहित समग्र जगतकूं तूं अबी देख । जो सर्व जगत् तिसतिस स्थानविषे भ्रमणकरिकै शतकोटि वर्षपर्यंतभी देखणेकूं अशक्य है । तिस सर्व जगतकूं तूं अभी एकत्र स्थितहुआही देख । हे अर्जुन ! जो कोई अन्यभी जयपराजयादिकोंके देखणेकी इच्छा करता होवै तिन जयपराजयादिकोंकूं भी तूं आपणे संशयकी निवृत्ति करणेवासतै इस हमारे देहविषे देख ॥ ७ ॥

तहां (मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।) अर्थ यह–सो आपका ऐश्वररूप मैं अर्जुननैं देखणेकूं शक्य है, इसप्रकार जो आप मानते होवैं तौ सो रूप हमारेकूं दिखावो । यह जो वचन पूर्व अर्जुननैं श्रीभगवान्‌के प्रति कथन कऱ्या था तिस रूपके देखणेविषे श्रीभगवान् अब किंचित् विशेषता कथन करैं हैं–

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ॥
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) न । तु । माम् । शक्यसे । द्रष्टुम् । अनेन । एव । स्वचक्षुषा । दिव्यम् । ददामि । ते । चक्षुः । पश्य । मे । योगम् । ऐश्वरम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं पुनः इस आपणी चक्षुकरिकै दिव्यरूप मैं परमेश्वरकूं कदाचितभी देखणेकूं नहीं समर्थ है इसकारणतैं मैं परमेश्वर तुम्हारे ताईं दिव्य चक्षु देताहूं तिस दिव्य चक्षुकरिकै मैं परमेश्वरके ऐश्वर्यरूप योगकूं तूं देख ॥ ८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! यह स्वभावतैं सिद्ध जो तुम्हारा प्राकृतचक्षु है इसप्राकृतचक्षुकरिकै दिव्यरूपवाले मैं परमेश्वरके देखणेकूं तूं कदाचित्भी समर्थ नहींहै । शंका–हे भगवन् ! तबी मैं अर्जुन तिस तुम्हारे स्वरूपकूं कैसे देखसकूंगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (दिव्यमिति) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके तिस दिव्यरूपके देखणेविषे समर्थ ऐसी दिव्य कहिये अप्राकृतचक्षुकूं मैं परमेश्वर तुम्हारे ताईं देताहूं । तिस दिव्यचक्षुकरिकै तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके योगकूं अर्थात् न बनतेहुए अर्थके बनावणेकी सामर्थ्यतारूप योगकूं देख। कैसा है सो योग–ऐश्वर है अर्थात् मैं ईश्वरकाही असाधारण धर्म है अन्य किसीविषे सो योग रहता नहीं । इहां किसीपुस्तकविषे (न तु मां शक्ष्यसे) इस प्रकारकाभी पाठ होवैहै ता पाठका यह अर्थ करणा–तूं अर्जुन इस चक्षुकरिकै दिव्यरूपवाले मैं परमेश्वरके देखणेकूं समर्थ नहीं होवैगा ॥ ८ ॥

तहां श्रीभगवान् अर्जुनके ताईं सो आपणा दिव्यरूप दिखावतेभये । तिसरूपकूं देखिकै अत्यंत विस्मयकूं प्राप्त हुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति सो देख्याहुआ दिव्यरूप कथन करता भया । इस वृत्तांतकूं (एवमुक्त्वा) इत्यादिक षट् श्लोकोंकरिकै धृतराष्ट्रके प्रति संजय कहैहै–

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ॥
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) एवम् । उक्त्वा । ततः । राजन् । महायोगेश्वरः । हरिः । दर्शयामास । पार्थाय । परमम् । रूपम् । ऐश्वरम् ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! सो महान्योगेश्वर कृष्णभगवान् इसप्रकारका वचन कहिकै तिसतें अनंतर अर्जुनके ताईं आपणे दिव्य ऐश्वर रूपकूं दिखावताभया ॥ ९ ॥

भा० टी०–हे धृतराष्ट्र ! सो महायोगेश्वर हरि अर्थात् सर्वतैं उत्कृष्ट तथा सर्वयोगिजनोंका ईश्वर तथा आपणे भक्तजनोंके सर्वक्लेशोंकूं हरणकरणेहारा कृष्ण भगवान् इस प्राकृत चक्षुकरिकै तूं अर्जुन दिव्यरूप मैं परमेश्वरकूं नहीं देखसकैगा यातैं मैं तुम्हारेकूं दिव्यचक्षु देताहूं, या प्रकारका वचन तिस अर्जुनके प्रति कहिकै

तिस दिव्यचक्षुके देणेतैं अनंतर तिस अनन्यभक्त अर्जुनके ताईं देखणेविषे अशक्यभी आपणे दिव्य ऐश्वररूपकूं दिखावता भया ॥ ९ ॥

अब तिस दिव्यरूपकूं अनेक विशेषणोंकरिकै युक्त कथन करैं हैं—

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अनेकवक्त्रनयनम् । अनेकाद्भुतदर्शनम् । अनेकदिव्याभरणम् । दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे राजन् ! अनेक हैं मुख तथा नेत्र जिसविषे तथा अनेक अद्भुत वस्तुवोंका है दर्शन जिसविषे तथा अनेक भूषण हैं जिसविषे तथा दिव्य अनेक उठायेहुए हैं आयुध जिसविषे ऐसे रूपकूं सो भगवान् दिखावताभया ॥ १० ॥

भा० टी०—हे राजन् ! अनेक हैं मुख तथा नेत्र जिस रूपविषे, तथा विस्मयकी प्राप्ति करणेहारे अनेक वस्तुवोंका है दर्शन जिस रूपविषे। तथा अनेक दिव्यभूषण हैं जिस रूपविषे, तथा उठायेहुए हैं चक्र गदा आदिक दिव्य आयुध जिस स्वरूपविषे ऐसे स्वरूपकूं सो कृष्ण भगवान् तिस अर्जुनके ताईं दिखावता भया ॥ १० ॥

किंच—

दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) दिव्यमाल्यांबरधरम् । दिव्यगंधानुलेपनम् । सर्वाश्चर्यमयम् । देवम् । अनंतम् । विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे राजन् ! दिव्यमाला तथा वस्त्र धारण करेहैं जिसनैं तथा दिव्य गंधवाले वस्तुवोंका है लेपन जिसविषे तथा सर्व आश्चर्यमय तथा प्रकाशरूप तथा अपरिच्छिन्न तथा सर्वओरतैं हैं मुख जिसविषे ऐसे रूपकूं दिखावता भया ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे राजन् ! पुष्पमय तथा रत्नमय ऐसी जे दिव्यमाला हैं तिन दिव्य मालावोंकूं धारण कर्‍याहै जिसनैं तथा पीतांबरादिक दिव्य वस्त्रोंकूं धारण कर्‍याहै जिसनैं तथा दिव्य गंधवाले कर्पूरचंदनादिकोंका है लेपन जिसविषे तथा सर्वाश्चर्यमय है अर्थात् तेज बल, वीर्य, शक्ति, रूप, गुण, अवयव, अवस्थान इत्यादिक सर्व विशेषोंकरिकै अनेक अद्भुतरूपोंवाला है। पुनः कैसा है सो रूप—देव है अर्थात्

प्रकाशस्वरूप है। पुनः कैसा है सो रूप—अनंत है अर्थात् देशकाल वस्तु परिच्छेद-तैं रहित है। पुनः कैसा है सो रूप—विश्वतोमुख है अर्थात् सर्व ओरतैं हैं मुख जिस-विषे। ऐसे आपणे स्वरूपकूं श्रीभगवान् ता अर्जुनके प्रति दिखावता भया। इस-प्रकारतैं पूर्व अष्टमश्लोकविषे स्थित (दर्शयामास) इस पदोंके साथि इन दोनों श्लोकोंका अन्वय करणा। अथवा (अर्जुनो ददर्श) इस पदका अध्याहार करिकै इन दोनों श्लोकोंका अन्वय करणा। अर्थात् ऐसे स्वरूपकूं सो अर्जुन देखता भया ॥ ११ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे तिस विश्वरूपका (देवं) यह विशेषण कथन कऱ्याथा। अब तिस विशेषणका इस श्लोकविषे विस्तारतैं वर्णन करैहैं—

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

(पदच्छेदः) दिवि। सूर्यसहस्रस्य। भवेत्। युगपत्। उत्थिता। यदि। भाः। सदृशी। सा। स्यात्। भासः। तस्य। महात्मनः ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे राजन्! आकाशविषे एकही कालमैं जबी सहस्रसूर्यकी प्रभा उत्थित हुई होवै तबी सा प्रभा तिस विश्वरूपकी प्रभाके तुल्य होवै ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे राजन्! आकाशविषे सहस्रसूर्यकी अर्थात् एकही कालविषे उदयहुए अपरिमित सूर्योंके समूहकी एकही कालविषे जो कदाचित् प्रभा उत्थित हुई होवैहै तौ सा प्रभा तिस विश्वरूपकी प्रभाके तुल्य होवै अथवा नहींभी तुल्य होवै। और मैं तो यह मानताहूं तिन सूर्योंकी प्रभातैंभी ता विश्वरूपकी प्रभा अत्यंत उत्कृष्ट है। इसतैं परे दूसरी कोई उपमा है नहीं। तहां एकही कालविषे अपरिमित सूर्योंका उदय होणाही संभवता नहीं। यातैं यह उपमा अभूत उपमा है ता अभूत उपमाकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या। सर्व प्रकारतैं ता विश्वरूपके प्रभाकी उपमा संभवती नहीं ॥ १२ ॥

तहां पूर्व (इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।) इस वचनकरिकै श्रीभग-वाननैं अर्जुनके प्रति आपणे देहके किसी अवयवविषे सर्व जगत्के देखणेकी आज्ञा करीथी सो अर्जुन तिस अर्थकूंभी अनुभव करता भया। यह वार्ताभी संजय धृतराष्ट्रके प्रति कथन करैहै—

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) तत्र । एकस्थम् । जगत् । कृत्स्नम् । प्रविभक्तम् । अनेकधा । अपश्यत् । देवदेवस्य । शरीरे । पांडवः । तदा ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे राजन् ! तिसकालविषे सो अर्जुन देवतावोंकरिकै पूज्य भगवान्के तिस विश्वरूपशरीरविषे किसी एकदेशविषे स्थित अनेकप्रकारकरिकै भिन्न भिन्न सर्व जगत्कूं देखता भया ॥ १३ ॥

भा० टी०–हे राजन् ! जिसकालविषे श्रीभगवान्नें अर्जुनके प्रति आश्चर्यमय विश्वरूप दिखाया तिसकालविषे सो अर्जुन इंद्रादिक सर्व देवतावोंकरिकै पूज्य भगवान्के तिस विश्वरूप शरीरविषे किसी एक अवयवविषे सर्वजगत्कूं देखता भया । कैसा है सो जगत्–देव, पितर, मनुष्य इत्यादिक अनेक प्रकारोंकरिकै भिन्न भिन्न है ॥ १३ ॥

हे धृतराष्ट्र ! इस प्रकार अद्भुत विश्वरूपके दर्शन हुएभी सो अर्जुन भयकूं नहीं प्राप्त होता भया । तथा तिस रूपकूं देखिकै सो अर्जुन आपणे नेत्रोंकूं भी नहीं मूँदता भया । तथा संभ्रमके वशतैं सो अर्जुन तिस कालविषे अवश्य कर्त्तव्य अर्थकूं विस्मरणभी नहीं करता भया । तथा भयभीत होइकै सो अर्जुन तिस देशतैं भागताभी नहीं भया । किंतु महान्‌चित्तक्षोभके प्राप्तहुएभी अत्यंत धैर्यवाला होणेतैं सो अर्जुन तिस कालविषे उचित व्यवहारकूंही करता भया । यह सर्व अर्थ संजय धृतराष्ट्रके प्रति कथन करैहै–

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ॥
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) ततः । सः । विस्मयाविष्टः । हृष्टरोमा । धनंजयः । प्रणम्य । शिरसा । देवम् । कृतांजलिः । अभाषत ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! तिसतैं अनंतर विस्मयकरिकै प्राप्तहुआ तथा पुलकित रोमांचवाला हुआ सो धनंजय तिस नारायण देवकूं आपणे मस्तककरिकै नमस्कारकरिकै आपणे दोनों हस्त जोडिकै यह वचन कहता भया ॥ १४ ॥

भा० टी०—हे राजन् ! युधिष्ठिर राजाके राजसूय यज्ञवासतैं सर्वराजोंकूं जीतिकै सो अर्जुन धनकूं ले आवता भया है यातैं ता अर्जुनकूं धनंजय कहैं हैं । तथा सो अर्जुन साक्षात् महादेवके साथभी युद्ध करताभया है । ऐसा अत्यंत प्रसिद्ध पराक्रमवाला तथा अग्निकी न्याई अत्यंत तेजस्वी तथा अत्यंत धैर्यवान् सो अर्जुन तिस विश्वरूपके दर्शनतैं अनंतर विस्मयकरिकै आविष्ट हुआ अर्थात् तिस अद्भुतरूपके दर्शनतैं उत्पन्न भया जो चित्तका कोई अलौकिक चमत्काररूप विस्मय है ता विस्मयकरिकै व्याप्तहुआ । इसी कारणतैंही हृष्टरोमा हुआ अर्थात् ता विस्मय-करिकै पुलकित हुएहैं सर्व शरीरके रोम जिसके ऐसा सो अर्जुन तिस विश्वरूपके धारण करणेहारे नारायणदेवकूं भूमिविषे लगायेहुए आपणे मस्तककरिकै अत्यंत श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करिकै तथा आपणे दोनों हस्तोंकूं जोडिकै इस वक्ष्यमाण वचनकूं कहताभया ॥ १४ ॥

तहां श्रीभगवान्नैं हमारे प्रति जो विश्वरूप दिखाया है सो विश्वरूप यद्यपि सर्वलोकोंकरिकै देखणेकूं अशक्य है तथापि श्रीभगवान्नैं प्राप्त करेहुए दिव्यचक्षु-करिकै मैं अर्जुन तिस विश्वरूपकूं प्रत्यक्ष देखताहूं । यातैं हमारे कोई अहो-भाग्य हैं । इसप्रकार आपणे अनुभवकूं प्रगट करताहुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्के प्रति कहै है—

अर्जुन उवाच ।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसं-घान् ॥ ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगां-श्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) पश्यामि । देवान् । तव । देव । देहे । सर्वान् । तथा । भूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणम् । ईशम् । कमलासनस्थम् । ऋषीन् । च । सर्वान् । उरगान् । च । दिव्यान् । १५ ॥

(पदार्थः) हे देव ! तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे मैं अर्जुन सर्व देवतावोंकूं देखताहूं तथा स्थावर जंगमरूप भूतोंके समूहकूं देखताहूं तथा कमलरूप आसन-विषे स्थित सर्वके नियंता चतुर्मुख ब्रह्माकूं देखता हूं तथा सर्व ऋषियोंकूं देखताहूं तथा दिव्य सर्पोंकूं देखताहूं ॥ १५ ॥

भा० टी०–हे विश्वरूपके धारण करणेहारे नारायण देव ! तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे मैं अर्जुन वसु रुद्र आदित्य इत्यादिक सर्व देवतावोंकूं देखताहूं । अर्थात् इस दिव्यचक्षुजन्य ज्ञानका विषय करताहूं। याप्रकारका (पश्यामि) इस शब्दका अर्थ आगेभी सर्व पर्यायोंविषे जानिलेणा। तथा इस तुम्हारे विश्वरूप देहविषे मैं अर्जुन स्थावरजंगमरूप सर्वभूतोंके समूहकूंभी देखताहूं । और सर्वभूतों का नियंता जो चतुर्मुख ब्रह्मा है जो ब्रह्मा कमलरूप आसनविषे स्थित है अर्थात् पृथिवीरूप कमलका कर्णिकारूप जो सुमेरु है ता सुमेरुरूप आसनविषे स्थित है अथवा विष्णुभगवान्‌के नाभिकमलरूप आसनविषे स्थित है ऐसे चतुर्मुख ब्रह्माकूंभी मैं अर्जुन तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे देखताहूं । तथा वसिष्ठतें आदिलैके जे ब्रह्माके पुत्ररूप नारदसनकादिक ऋषि हैं तिन सर्व ऋषियोंकूंभी मैं तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे देखताहूं । तथा इस लोकविषे अप्रसिद्ध जे वासुकि आदिक सर्प हैं तिन सर्पोंकूंभी मैं तुम्हारे इस विश्वरूप देहविषे देखताहूं ॥ १५ ॥

तहां जिस भगवान्‌के विश्वरूप देहविषे सो अर्जुन इन पूर्वउक्त सर्व पदार्थोंकूं देखताभयाहै तिसी विश्वरूप देहकूं सो अर्जुन अब अनेक अद्भुत विशेषणोंकरिकै वर्णन करैहै–

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोनंतरूपम् ॥
नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् । पश्यामि । त्वाम् । सर्वतः । अनंतरूपम् । न । अन्तम् । न । मध्यम् । न । पुनः । तव । आदिम् । पश्यामि । विश्वेश्वर । विश्वरूप ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे सर्व विश्वके ईश्वर ! हे सर्व विश्वरूप ! अनेक हैं बाहु उदर मुख नेत्र जिसविषे तथा सर्वत्र अनंत हैं रूप जिसके ऐसे तुम्हारेकूं मैं अर्जुन देखताहूं । पुनः तुम्हारे अंतकूंभी मैं नहीं देखताहूं तथा मध्यकूंभी नहीं देखताहूं तथा आदिकूंभी नहीं देखताहूं ॥ १६ ॥

भा० टी०–हे सर्वविश्वका ईश्वर ! तथा हे सर्वविश्वरूप श्रीभगवन् ! अनेक हैं बाहु जिसविषे अनेक हैं उदर जिसविषे तथा अनेक हैं मुख जिसविषे तथा

अनेक हैं नेत्र जिसविषे ऐसे तुम्हारे विश्वरूपकूं मैं अर्जुन इस दिव्यचक्षुकरिकै देखता हूं । तथा सर्वत्र अनंत हैं रूप जिसके ऐसे तुम्हारेकूं मैं देखताहूं । तथा तुम्हारे अवसानरूप अंतकूंभी मैं देखता नहीं । तथा तुम्हारे मध्यकूंभी मैं देखता नहीं । तथा तुम्हारे आदिकूंभी मैं देखता नहीं । काहेतैं जो पदार्थ देशकरिकै अथवा कालकरिकै परिच्छिन्न होवैहै तिस पदार्थकाही आदि मध्य अंत होवैहै । और आप तौ सर्वदेशविषे तथा सर्वकालविषे विद्यमान हो, यातैं आपका सो आदि मध्य अंत संभवता नहीं । इहां (हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप !) यह जो दो संबोधन भगवान्‌के अर्जुननैं कथन करे हैं सो तिसकालविषे अतिसंभ्रमतैं कथन करेहैं ॥ १६ ॥

अब अर्जुन तिसी विश्वरूप भगवान्‌कूं अन्यप्रकारतैं अनेक विशेषणोंकरिकै युक्त कथन करै है–

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमंतम् ॥ पश्यामि त्वां दुर्निरीक्षं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) किरीटिनम् । गदिनम् । चक्रिणम् । च । तेजोराशिम् । सर्वतः । दीप्तिमंतम् । पश्यामि । त्वाम् । दुर्निरीक्षम् । समंतात् । दीप्तानलार्कद्युतिम् । अप्रमेयम् ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! किरीटकूं धारणकरणेहारे तथा गदाकूं धारणकरणेहारे तथा चक्रकूं धारणकरणेहारे तथा तेजका समूहरूप तथा सर्व ओरतैं प्रकाशमान तथा देखणेकूं अशक्य तथा प्रकाशमान अग्नि सूर्यके प्रभाकी न्याई प्रभावाले तथा अप्रमेय ऐसे तुम्हारेकूं मैं अर्जुन सर्वओरतैं देखताहूं ॥ १७ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! कैसा है सो आपका विश्वरूप–मस्तक ऊपरि मुकुटकूं धारण करणेहारा है । तथा हस्तोंविषे गदाकूं धारण करणेहारा है । तथा चक्रकूं धारण करणेहारा है । तथा सर्वओरतैं प्रकाशमान है । तथा सर्व तेजका समूहरूप है । इसकारणतैंही दुर्निरीक्ष है अर्थात् इस दिव्यचक्षुतैं विना देखणेकूं अशक्य है । इहां (दुर्निरीक्ष्यम्) इसप्रकारका जो मूलश्लोकविषे पाठ होवै तौ दुःख यह शब्द निषेधका वाचक जानणा अर्थात् सो आपका स्वरूप नहीं

देख्याजावै है। पुनः कैसा है सो विश्वरूप, अत्यंत दीप्तिमान् जो अग्नि सूर्य हैं तिन अग्निसूर्य दोनोंके प्रभाकी न्याईं है प्रभा जिसकी। तथा अप्रमेय है अर्थात् इसप्रकारका यह स्वरूप है याप्रकारतैं निश्चयकरणेकूं अशक्य है। ऐसे स्वरूपकूं धारण करणेहारे तुम्हारेकूं सर्व ओरतैं मैं अर्जुन इस दिव्यचक्षुकरिकै देखताहूं। यद्यपि (दुर्निरीक्ष्यम्) इस वचनकरिकै अर्जुननैं ता विश्वरूपके दर्शनका निषेध कथन कऱ्याथा। और (पश्यामि) इस वचनकरिकै ता विश्वरूपका दर्शन कथन कऱ्याहै। यातैं पूर्व उत्तर वचनका विरोध प्राप्त होवैहै तथापि अधिकारीके भेदतैं ते दोनों वचन संभवैहैं। तहां दिव्यचक्षुतैं रहित पुरुषकूं तौ सो विश्वरूप देखणेकूं अशक्य है। और दिव्यचक्षुवाले पुरुषकूं सो विश्वरूप देखणेकूं शक्य है ॥ १७ ॥

हे भगवन्! बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकैभी तर्कना करणेकूं अशक्य ऐसा जो तुम्हारा निरतिशय ऐश्वर्य है ता ऐश्वर्यके दर्शनतैं मैं अर्जुन आप परमेश्वरकूं इसप्रकारका मानताहूं। इस वार्त्ताकूं अर्जुन कथन करै है–

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) त्वम्। अक्षरम्। परमम्। वेदितव्यम्। त्वम्। अस्य। विश्वस्य। परम्। निधानम्। त्वम्। अव्ययः। शाश्वतधर्मगोप्ता। सनातनः। त्वम्। पुरुषः। मतः। मे ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन्! आपही परम अक्षर हो तथा आपही जानणे योग्य हो तथा आपही इस जगत्का परम आश्रय हो तथा आपही अव्यय हो तथा अनादि धर्मके पालक हो तथा आपही सनातन परमात्मा पुरुष हमारेकूं संमत हो ॥ १८ ॥

भा॰ टी॰–हे भगवन्! (एतद्वै तदक्षरं गार्गि) इत्यादिक श्रुतिनैं अक्षररूपकरिकै प्रतिपादन कऱ्याहुआ तथा (अव्यक्तात्पुरुषः परः) इत्यादिक श्रुतिनैं सर्वतैं पररूपकरिकै प्रतिपादन कऱ्याहुआ जो निर्गुणब्रह्म है सो निर्गुण ब्रह्मरूपभी आपही हो। जिसकारणतैं आप निर्गुण ब्रह्मरूप हो इसकारणतैं आपही मुमुक्षुजनोंनैं वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकरिकै जानणेयोग्य हो। तथा आपही इस

सर्वजगत्का परम आश्रय हो अर्थात् इस सर्व कल्पितप्रपंचका अधिष्ठानरूप हो। इसी कारणतैंही आप अव्यय हो अर्थात् नित्य हो। तथा नित्य वेदकरिकै प्रतिपादित होणेतैं शाश्वतरूप जो वर्णाश्रमका धर्म है ता धर्मकूंभी आपही पालन करणेहारे हो। अथवा (शाश्वत धर्मगोप्ता) यह दो पद जानणे। तहां शाश्वत यह पद तौ श्रीभगवान्का संबोधन है अर्थात् हे शाश्वत ! हे नित्यरूप ! इसपक्षविषे अव्ययः इस पदका विनाशतैं रहित यह अर्थ करणा। इसी कारणतैं ही जो सनातन परमात्मादेवरूप पुरुष है सो परमात्मापुरुषभी आपकूंही मैं मानताहूं ॥ १८ ॥

किंच–

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) अनादिमध्यांतम्। अनंतवीर्यम्। अनंतबाहुम्। शशिसूर्यनेत्रम्। पश्यामि। त्वाम्। दीप्तहुताशवक्त्रम्। स्वतेजसा। विश्वम्। इदम्। तपंतम् ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! उत्पत्ति स्थिति नाशतैं रहित तथा अनंत है प्रभाव जिसका तथा अनंत हैं बाहु जिसकी तथा चंद्रमा सूर्य हैं नेत्र जिसके तथा प्रज्वलित अग्नि है मुखोंविषे जिसके तथा आपणे तेजकरिकै इस सर्वविश्वकूं तपायमानकरणेहारा ऐसे आपके स्वरूपकूं मैं अर्जुन देखताहूं ॥ १९ ॥

भा॰ टी॰–हे भगवन् ! पुनः सो आपका विश्वरूप कैसा है, उत्पत्तितैंभी रहित है। तथा स्थितितैंभी रहित है। तथा विनाशतैंभी रहित है। तथा अपरिमित है वीर्य क्या प्रभाव जिसका तथा अनंत हैं बाहु जिसकी। इहां (अनंतबाहुम्) यह शब्द मुखादिक सर्व अवयवोंकी अनंतताका उपलक्षण है। तथा चंद्रमा सूर्य यह दोनों हैं नेत्र जिसके। तथा प्रज्वलित अग्नि है मुख जिसका। अथवा प्रज्वलित अग्नि है मुखोंविषे जिसके। तथा आपणे तेजकरिकै इस सर्व जगत्कूं तपायमान करणेहारा है। ऐसे तुम्हारे इस विश्वरूपकूं मैं अर्जुन इस दिव्यचक्षुकरिकै देखताहूं ॥ १९ ॥

अब अर्जुन तिस भगवान्‌के विश्वरूपकी सर्वत्र व्यापकताकूं कथन करै है–

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) द्यावापृथिव्योः । इदम् । अंतरम् । हि । व्याप्तम् । त्वया । एकेन । दिशः । च । सर्वाः । दृष्ट्वा । अद्भुतम् । रूपम् । उग्रम् । तव । इदम् । लोकत्रयम् । प्रव्यथितम् । महात्मन् ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे महात्मन् तैं एकनैं ही स्वर्गपृथिवीके मध्यमैं यह अंतरिक्ष व्याप्त कऱ्याहै तथा सर्व दिशा व्याप्तकरी हैं तुम्हारे इस अद्भुत उग्र रूपकूं देखिकै तीन लोक अत्यंतभययुक्त हुएहैं ॥ २० ॥

भा० टी०–हे महात्मन् ! अर्थात् हे साधुपुरुषोंकूं अभयकी प्राप्ति करणेहारा विश्वरूप भगवन् ! स्वर्ग पृथिवी इन दोनोंके मध्यविषे स्थित जो यह अंतरिक्ष लोक है सो अंतरिक्ष तैं एकपरमेश्वरनैंही व्याप्त कऱ्या है । तथा पूर्वपश्चिमादिक सर्व दिशाभी तैं विश्वरूपनैं ही व्याप्त करीहैं । इहां अंतरिक्षका तथा दिशावोंका ग्रहण स्थावरजंगमरूप सर्वविश्वका उपलक्षण है । अर्थात् यह स्थावरजंगमरूप सर्व विश्व तैं विश्वरूप परमेश्वरनैंही व्याप्त कऱ्या है। और जो वस्तु जिसनैं व्याप्त करीताहै सो वस्तु तिसका स्वरूपही होवैहै । जैसे मृत्तिकानैं व्याप्त करेहुए घटशरावादिक कार्य मृत्तिकास्वरूपही होवैं हैं तैसे तैं परमेश्वरनैं व्याप्त कऱ्याहुआ यह सर्वविश्व तुम्हाराही स्वरूप है अर्थात् सर्व विश्वरूप तूं ही है । तहां श्रुति–(ब्रह्मैवेदं सर्वम्) अर्थ यह–यह सर्व जगत् ब्रह्मरूपही है इति । हे भगवन् ! तुम्हारे इस विश्वरूपकूं देखिकै तीन लोक भयकरिकै अत्यंत व्यथाकूं प्राप्त होतेभये हैं । अब ता विश्वरूपके दर्शनविषे भयकी हेतुता सिद्ध करणेवासतै ता विश्वरूपके हेतुगर्भित दो विशेषणोंकूं अर्जुन कथन करै है (अद्भुतम् उग्रम् इति) हे भगवन् ! कैसा है सो तुम्हारा विश्वरूप–अद्भुत है अर्थात् आपणे दर्शनतैं अत्यंत विस्मयकी प्राप्ति करणेहारा है । पुनः कैसा है सो रूप–उग्र है अर्थात् महान् तेजस्वी होणेतैं अत्यंत दुःखकरिकै जान्याजावै है । यातैं हे भगवन् ! अबी इस आपके विश्वरूपकूं अंतर्धान करो ॥ २० ॥

अब मैं परमेश्वरही सर्व पृथिवीके भारका संहार करणेहारा हूं। याप्रकारतैं आपणेविषे सर्व पृथिवीके भारका संहारकरतापणेकूं प्रगट करणेहारे भगवान्कूं देखिकै सो अर्जुन कहै है–

अमी हि त्वा सुरसंघा विशंति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

(पदच्छेदः) अमी। हि। त्वाम्। सुरसंघाः। विशंति। केचित्। भीताः। प्रांजलयः। गृणंति। स्वस्ति। इति। उक्त्वा। महर्षिसिद्धसंघाः। स्तुवंति। त्वाम्। स्तुतिभिः। पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! येह देवतावोंके समूह तुम्हारे प्रति हि प्रवेश करैं हैं तथा केईक पुरुष भयकूं प्राप्तहुए दोनों हाथोंकूं जोडिकै स्तुति करैं हैं तथा महाऋषि सिद्ध पुरुष इस जगत्का स्वस्ति होवौ इसे प्रकारका वचन कहिकै तैं परमेश्वरकी परिपूर्ण अर्थके बोधक वचनोंकरिकै स्तुति करैंहैं ॥ २१ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! पृथिवीके भारके उतारणेवासतै मनुष्यरूपकरिकै अवतारकूं प्राप्तहुए तथा दुष्टजनोंके विनाश करणेवासतै युद्धकूं करतेहुए जे यह वसु आदित्य इत्यादिक देवतावोंके समूह हैं ते सर्व देवगण तुम्हारेविषेही प्रवेश करते हुए हमारेकूं देखणेमें आवैं हैं। इहां (त्वा असुरसंघाः) या प्रकारका पदच्छेदकरिकै इस वचनका यह दूसराभी अर्थ करणा–असुरोंका अंशरूप होणेतैं असुररूप जे यह दुर्योधनादिक हैं जे दुर्योधनादिरूप असुरगण इस पृथिवीविषे भाररूप हैं ऐसे दुर्योधनादिक असुरगण दुष्ट अदृष्टोंकरिकै प्रेरणाकरेहुए आपणे मरणवासतै तुम्हारेविषे प्रवेश करैंहैं। जैसे पतंग आपणे मरणवासतै अग्निविषे प्रवेश करैंहैं। तथा दोनों सेनावोंके मध्यविषे केईक पुरुष भीतहुए अर्थात् भागणेविषे भी असमर्थ हुए आपणे दोनों हाथ जोडिकै दूरतैंही तुम्हारी स्तुति करैंहैं। इसप्रकारतैं महान् युद्धके प्राप्तहुए उत्पातादिकोंके निमित्तोंकूं देखिकै इस सर्वविश्वका स्वस्ति होवो अर्थात् रक्षण होवो, इसप्रकारके वचनोंकूं कहिकै नारदादिक सर्व महाऋषि तथा कपिलादिक सर्व सिद्ध युद्धके देखणेवासतै तहां आयेहुए सर्व विश्वके विनाशके निवृत्तकरणे वासतै परिपूर्ण अर्थके बोधक तथा गुणोंकी उत्कृष्टताकूं प्रतिपादन करणेहारे ऐसे वचनोंकरिकै आप परमेश्वरकी स्तुतिकूं करैंहैं ॥ २१ ॥

किंच–

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) रुद्रादित्याः । वसवः । ये । च । साध्याः । विश्वे । अश्विनौ । मरुतः । च । ऊष्मपाः । च । गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः । वीक्षंते । त्वाम् । विस्मिताः । च । एव । सर्वे ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जे रुद्र आदित्य हैं तथा वसु हैं तथा साध्य हैं तथा विश्वेदेव हैं तथा अश्विनीकुमार हैं तथा मरुत् हैं तथा ऊष्मपा हैं तथा गंधर्व यक्ष असुर सिद्धोंके समूह हैं ते सर्वे ही तुम्हारेकूं देखते तथा विस्मयकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ २२ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! रुद्र है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है। तथा आदित्य है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है । तथा वसु है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है । तथा साध्य है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है । तथा विश्व है नाम जिनोंका ऐसा जो देवतावोंका समूह है। तथा दोनों अश्विनीकुमार जो हैं तथा मरुत है नाम जिनोंका ऐसे जे उनंचास देवताविशेष हैं। तथा ऊष्मपा है नाम जिनोंका ऐसा जो पितरोंका समूह है जे पितर (ऊष्मभागा हि पितरः) इस श्रुतिविषे ऊष्मपा नामकरिकै कथन करेहैं तथा गंधर्वोंके जो समूह हैं। तथा यक्षोंके जो समूह हैं। तथा असुरोंके जो समूह हैं। तथा सिद्धोंके जो समूह हैं । यह पूर्वउक्त सर्वही तैं विश्वरूपवाले परमेश्वरकूं देखतेहैं । तिस अद्भुतरूपके दर्शनतैं अनंतर ते सर्वही विस्मयकूं प्राप्त होवैं हैं॥२२॥

तहां पूर्व वीसवें श्लोकविषे (लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्) इस वचनकरिकै ता विश्वरूपके दर्शनतैं तीन लोकोंकूं भयकी प्राप्ति कथन करीथी। अब तिस पूर्व उक्त अर्थका उपसंहार करैं हैं–

रूपं महत्ते बहुवक्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ॥ बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) रूपम् । महत् । ते । बहुवक्त्रनेत्रम् । महाबाहो । बहुबाहूरुपादम् । बहूदरम् । बहुदंष्ट्राकरालम् । दृष्ट्वा । लोकाः । प्रव्यथिताः । तथा । अहम् ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे महाबाहुवाले भगवन् ! अत्यंत महान् तथा बहुत हैं मुख नेत्र जिसविषे तथा बहुत हैं बाहु ऊरु पाद जिसविषे तथा बहुत हैं उदर जिसविषे तथा बहुत दंष्ट्रावोंकरिकै अतिभयानक ऐसे तुम्हारे इस विश्वरूपकूं देखिकै सर्वप्राणी तथा मैं अर्जुन व्यथाकूं प्राप्त होते भयेहैं ॥ २३ ॥

भा० टी०—हे महान् भुजावाले विश्वरूप भगवन् ! तुम्हारे इस अद्भुत विश्वरूपकूं देखिकै सर्व प्राणी भयकरिकै अतिव्यथाकूं प्राप्त होतेभयेहैं । तथा मैं अर्जुनभी ता रूपकूं देखिकै भयकरिकै अतिव्यथाकूं प्राप्त होताभयाहूं । कैसा है सो तुम्हारा विश्वरूप--महत् है अर्थात् अत्यंत महत् परिमाणवाला है । पुनः कैसा है सो तुम्हारा रूप—बहुत हैं मुख जिसविषे तथा बहुत हैं नेत्र जिसविषे तथा बहुत हैं भुजा जिसविषे तथा बहुत हैं ऊरु जिसविषे तथा बहुत हैं पाद जिसविषे तथा बहुत हैं उदर जिसविषे तथा जो रूप बहुत दंष्ट्रावोंकरिकै अत्यंत भयानक है ऐसे आपके रूपके देखणे मात्रतैंही हमारे सहित सर्व प्राणी भयकरिकै पीडित होतेभये हैं ॥ २३ ॥

अब अर्जुन ता परमेश्वरके विश्वरूपविषे क्षोभायमानपणा स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं-

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) नभःस्पृशम् । दीप्तम् । अनेकवर्णम् । व्यात्ताननम् । दीप्तविशालनेत्रम् । दृष्ट्वा । हि । त्वाम् । प्रव्यथितांतरात्मा । धृतिम् । न । विंदामि । शमम् । च । विष्णो ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे विष्णुभगवन् ! संपूर्ण आकाशविषे व्यापक तथा अत्यंत प्रज्वलित तथा अनेक हैं वर्ण जिसविषे तथा विस्फारित हैं मुख जिसविषे तथा प्रज्वलित विशाल हैं नेत्र जिसविषे ऐसे तुम्हारेकूं देखकै ही व्यथाकूं प्राप्त हुआहै मन जिसका ऐसा मैं अर्जुन धैर्यकूं तथा शमकूं नहीं प्राप्त होताहूं ॥ २४ ॥

भा॰ टी॰—हे विष्णु ! अर्थात् हे सर्वत्रव्यापक भगवन् ! मैं अर्जुन तुम्हारेकूं देखिकै भयकरिकै केवल व्यथामात्रकूंही नहीं प्राप्त भयाहूं किंतु भयकरिकै अत्यंत व्यथाकूं प्राप्त हुआ है अंतरात्मा क्या मन जिसका ऐसा मैं अर्जुन तुम्हारेकूं देखिकरिकैही धृतिकूंभी नहीं प्राप्त होताहूं। अर्थात् देहइंद्रियादिक संघातके धारण करणेका सामर्थ्यरूप धैर्यकूंभी नहीं प्राप्त होताहूं। तथा मनकी स्थिरतारूप शमकूंभी नहीं प्राप्त होताहूं । कैसा है सो आपका स्वरूप, इस संपूर्ण आकाशरूप अंतरिक्षलोकविषे व्याप्त होइरह्याहै। अथवा आकाशकी न्याईं सर्वपदार्थोंकूं स्पर्श करिरह्या है। पुनः कैसा है सो आपका स्वरूप, दीप्त है अर्थात् महान् अग्निकी न्याईं अत्यंत प्रज्वलित है । पुनः कैसा है सो स्वरूप, अनेक वर्ण है अर्थात् भयकी प्राप्ति करणेहारे अनेक रूपोंकरिकै युक्त है । पुनः कैसा है सो स्वरूप, विस्फारित हुए हैं मुख जिसविषे अर्थात् फाटेहुए हैं मुख जिसविषे। पुनः कैसा है सो स्वरूप, सूर्यमंडलकी न्याईं प्रज्वलित तथा विशाल हैं नेत्र जिसविषे ऐसे आपके स्वरूपकूं देखिकरिकैही भयकरिकै व्यथाकूं प्राप्त हुआहै मन जिसका ऐसा मैं अर्जुन धृतिकूं तथा शमकूं प्राप्त होता नहीं। इहां (हे विष्णो) इस संबोधनकरिकै अर्जुननैं विश्वरूप भगवान्की व्यापकता कथन करी। ताकरिकै यह अर्थ बोधन कऱ्या । जिसकारणतैं आप विश्वरूप सर्वत्र व्यापक हो तिस कारणतैं तुम्हारे करिकै युक्त भयानक देशकूं परित्याग करिकै मैं अर्जुन अन्यत्र जाणेविषे समर्थ नहींहूं । यातैं यह भयानक विश्वरूप आपनैं अंतर्धान कऱ्या चाहिये ॥ २४ ॥

अब इस पूर्वउक्त अर्थकूंही पुनः दूसरे प्रकारतैं कथन करताहुआ अर्जुन श्रीभगवान्के प्रसन्नताकी प्रार्थना करै है—

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ॥ दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

(पदच्छेदः) दंष्ट्राकरालानि[1] । च[2] । ते[4] । मुखानि[5] । दृष्ट्वा[6] । एव[7] । कालानलसन्निभानि[3] । दिशः[8] । न[9] । जाने[10] । न[13] । लभे[14] । च[11] । शर्म[12] । प्रसीद[17] । देवेश[15] । जगन्निवास[16] ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! दंष्ट्रावोंकरिकै भयंकर तथा प्रलय अग्निके तुल्य तुम्हारे मुखोंकूं देखिकरिकै ही मैं अर्जुन दिशावोंकूंभी नहीं जानताहूं तथा सुखकूंभी नहीं प्राप्तहोताहूं । यातैं हे देवेश ! हे जगन्निवास हमारे ऊपरि प्रसन्न होवौ ॥ २५ ॥

भा० टी०—हे भगवन् दंष्ट्रावोंकरिकै अत्यंत विकराल होणेतैं भयकी प्राप्ति करणेहारे तथा प्रलयकालके अग्निके तुल्य ऐसे जे आपके मुख हैं तिन आपके मुखोंविषे यद्यपि मैं अर्जुन प्राप्त हुआ नहीं तथापि तिन आपके मुखोंकूं केवल देखिकरिकै ही भयके वशतैं मैं अर्जुन पूर्व अपर इत्यादिक भेदकरिकै दिशावोंकूंभी जानता नहीं । इसी कारणतैंही मैं अर्जुन तुम्हारे दर्शनहुएभी सुखकूं प्राप्तहोता नहीं । यातैं हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप हमारे ऊपरि प्रसन्न होवौ । जिसकरिकै भयतैं रहित होइकै मैं अर्जुन तुम्हारे दर्शनजन्य सुखकूं प्राप्त होऊं । तहां अन्य किसीकी नहीं अपेक्षा करिकै जो आपेही प्रकाशमान होवै ताका नाम देवेश है। और आपणी समीपता मात्रतैं जो सर्वकूं चेष्टा करावै ताका नाम ईश है । जो देव होवै सोईही ईश होवै ताका नाम देवेश है अर्थात् स्वप्रकाशरूप सर्वके प्रेरकका नाम देवेश है। अथवा इंद्रादिक सर्वदेवतावोंका जो ईश होवै ताका नाम देवेश है और इस सर्वजगतका जो निवास होवै अर्थात् अधिष्ठान होवै ताका नाम जगन्निवास है॥२५॥

तहां पूर्व इस एकादशअध्यायके सप्तमश्लोकविषे (मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि) इस वचनकरिकै श्रीभगवानूनैं अर्जुनके प्रति यह वार्त्ता कथन करीथी । सर्वदा हमारे जयकूं तथा दुर्योधनादिकोंके पराजयकूं देखणाही तुम्हारेकूं इष्ट है । तिस जयपराजयकूंभी तूं इस हमारे देहविषेही देख इति । अब तिस आपणे जयकूं तथा दुर्योधनादिकोंके पराजयकूंभी मैं देखताहूं इस अर्थकूं अर्जुन पांच श्लोकोंकरिकै कथन करैहै—

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ॥ भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥ वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ॥ केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) अमी । च । त्वाम् । धृतराष्ट्रस्य । पुत्राः । सर्वे । सह । एव । अवनिपालसंघैः । भीष्मः । द्रोणः । सूतपुत्रः । तथा । असौ ।

सह । अस्मदीयैः । अपि । योधमुख्यैः । वक्त्राणि । ते । त्वरमाणाः । विशंति । दंष्ट्राकरालानि । भयानकानि । केचित् । विलग्नाः । दशनांतरेषु । संदृश्यंते । चूर्णितैः । उत्तमांगैः ॥ २६ ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! पुनः यह धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्र सर्व राजावोंके समूह सहित ही अत्यंत शीघ्रतावाले हुए तैं परमेश्वरविषे प्रवेश करैंहैं तथा भीष्म तथा द्रोण तथा यह कर्ण ये तीनों हमारे संबंधीरूपभी मुख्ययोधावों सहित तुम्हारेविषे प्रवेश करैं हैं । हे भगवन् ! दंष्ट्रावोंकरिकै विकराल तथा अतिभयानक ऐसे तुम्हारे मुखोंविषे यह दुर्योधनादिक सर्व शीघ्रही प्रवेश करैंहैं । तहां केईक योधा चूर्णहुए शिरोंकरिकै विशिष्टहुए दांतोंकी मध्यसंधियोंविषे लगेहुए देखणेमैं आवैं हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

भा० टी०–हे भगवन् ! यह धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक सर्व पुत्र शल्यराजातैं आदिलैके सर्व राजावोंसहितही अत्यंत शीघ्रतातैं परमेश्वरविषे प्रवेश करतेहैं । हे भगवन् ! केवल यह दुर्योधनादिकही तुम्हारेविषे प्रवेश नहीं करते किंतु सर्वलोकोंनैं अजेयतारूप करिकै संभावना कऱ्याहुआ जो यह भीष्म पिताह है तथा द्रोणाचार्य है तथा सर्वकालविषे हमारा द्वेषी जो यह सूतपुत्र कर्ण है यह तीनोंभी हमारे संबंधीरूप धृष्टद्युम्नादिक मुख्य योधावोंसहित तैं परमेश्वरविषे प्रवेश करैंहैं । अब तिस विश्वरूप भगवान्‌विषे तिन दुर्योधनादिकोंके प्रवेशका द्वार कथन करैंहैं–(वक्त्राणि इति) हे भगवन् ! जे आपके मुख दंष्ट्रावोंकरिकै अत्यंत विकराल हैं याकारणतैंही ते मुख अत्यंत भयानक हैं । ऐसे आपके मुखोंविषे ही यह दुर्योधनादिक सर्व अत्यंत शीघ्रतातैं प्रवेश करैंहैं । तिन प्रवेश करणेहारोंविषेभी केईक योधा तौ चूर्णभावकूं प्राप्तहुए मस्तकोंकरिकै युक्त हुए आपके दांतोंके मध्यसंधियोंविषे लगेहुए हमनैं देखेहैं । और किसी टीकाविषे तौ इन दोनों श्लोकोंके पदोंकी (अमी धृतराष्ट्रस्य पुत्राः त्वां विशंति भीष्मद्रोणादयः ते वक्त्राणि विशंति) या प्रकारतैं योजना करिकै यह अर्थ कथन कऱ्याहै–धृतराष्ट्रके अत्यंत पापिष्ठ जे दुर्योधनादिक पुत्र हैं ते दुर्योधनादिक पापिष्ठ तौ तीनलोकरूप शरीरवाले आप परमेश्वरविषेही प्रवेश करैंहैं अर्थात ते दुर्योधनादिक आपणे पापकर्मके अनुसार तैं विश्वरूप भगवान्‌के पायुस्थानविषे स्थित नरकोंकूं ही प्राप्त होवैं हैं । और यह

भीष्मद्रोणादिक तौ आप परमेश्वरके भक्त हैं, यातैं यह भीष्मादिक तौ आप परमेश्वरके जिन मुखोंतैं अग्नि ब्राह्मण देवता उत्पन्न हुए हैं तिन मुखोंविषेही प्रवेश करैंहैं । इस प्रकार दुर्योधनादिकोंके तथा भीष्मादिकोंके गतिकी विलक्षणताके बोधन करणेवासतै इसप्रकारतैं पदोंका अन्वय करणा युक्त है ॥ २६ ॥ २७ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे दुर्योधनादिक सर्वराजावोंका भगवान्‌के मुखोंविषे प्रवेश कथन कऱ्या सो प्रवेश दो प्रकारका होवैहै । एक प्रवेश तौ अबुद्धिपूर्वक होवैहै दूसरा प्रवेश बुद्धिपूर्वक होवैहै। तहां न जानिकै जो प्रवेश है ताकूं अबुद्धिपूर्वक प्रवेश कहैंहैं । और जानिकै जो प्रवेश है ताकूं बुद्धिपूर्वक प्रवेश कहैं हैं । तहां भगवान्‌के मुखोंविषे तिन राजावोंके अबुद्धिपूर्वक प्रवेशविषे अर्जुन दृष्टांतकूं कथन करैंहैं-

यथा नदीनां बहवोंबुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवंति ॥ तथा तवामी नरलोकवीरा विशंति वक्त्राण्यभितो ज्वलंति ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) यथा । नदीनाम् । बहवः । अंबुवेगाः । समुद्रम् । एव । अभिमुखाः । द्रवंति । तथा । तव । अमी । नरलोकवीराः । विशंति वक्त्राणि । अभितः । ज्वलंति ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जैसे नदियोंके बहुत जलोंके वेग समुद्रके अभिमुखहुए समुद्रकूं ही प्रवेश करैं हैं तैसे यह मनुष्यलोकके वीर तुम्हारे सर्व ओरतैं प्रकाशमान् मुखोंकूं ही प्रवेश करैंहैं ॥ २८ ॥

भा० टी०-हे भगवन् ! जैसे अनेक मार्गोंविषे प्रवृत्तहुई जे श्रीगंगायमुनादिक नदियां हैं तिन नदियोंके जे बहुत जलोंके वेग हैं अर्थात् जिन जलोंके जे वेगवाले प्रवाह हैं ते बहुतजलोंके प्रवाह समुद्रके अभिमुख हुए तिस समुद्रविषेही अबुद्धिपूर्वक प्रवेश करैंहैं । तैसे इस मनुष्यलोकविषे शूरवीर जे दुर्योधनादिक राजे हैं ते यह दुर्योधनादिक राजे तैं परमेश्वरके सर्व ओरतैं प्रकाशमान मुखोंविषे अबुद्धिपूर्वक प्रवेश करैं हैं । तहां कितनेक पुस्तकोंविषे (अभितो ज्वलंति) इस वचनके स्थान-विषे (अभिविज्ज्वलन्ति) याप्रकारकाभी पाठ होवै है इस प्रकारके पाठ हुएभी सो पूर्वउक्त अर्थही जानणा ॥ २८ ॥

अब श्रीविश्वरूप भगवान्‌के मुखोंविषे तिन राजावोंके बुद्धिपूर्वक प्रवेशविषे अर्जुन दृष्टांतकूं कथन करैहै-

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशंति नाशाय समृद्ध-वेगाः ॥ तथैव नाशाय विशंति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) यथा । प्रदीप्तम् । ज्वलनम् । पतंगाः । विशंति । नाशाय । समृद्धवेगाः । तथा । एव । नाशाय । विशंति । लोकाः । तव । अपि । वक्त्राणि । समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! जैसे पतंग अत्यंतवेगवाले हुए आपणे नाशवासतै प्रज्वलित अग्निविषे प्रवेशकरैं हैं तैसे ही यह दुर्योधनादिक भी अत्यंत वेगवाले हुए आपणे नाशवासतै तुम्हारे मुखोंविषे प्रवेश करैं हैं ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! जैसे पतंग अत्यंत वेगवाले हुए आपणे मरणवासतै प्रज्वलित अग्निविषे बुद्धिपूर्वक प्रवेश करैं हैं तैसे यह दुर्योधनादिक सर्व राजेभी अत्यंत वेगवाले हुए आपणे मरणवासतै तैं परमेश्वरके मुखोंविषे बुद्धिपूर्वक प्रवेश करैंहैं॥२९॥

तहां पूर्व युद्धकी कामनावाले राजावोंका भगवान्के मुखोंविषे प्रवेशका प्रकार कथन कऱ्या अब तिस प्रवेशकालविषे श्रीभगवान्के प्रवृत्तिके प्रकारकूं तथा भग-वान्के दीप्तरूप प्रकाशके प्रवृत्तिके प्रकारकूं अर्जुन कहैहै—

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वल-द्भिः ॥ तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रत-पंति विष्णो ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) लेलिह्यसे । ग्रसमानः । समंतात् । लोकान् । समग्रान् । वदनैः । ज्वलद्भिः । तेजोभिः । आपूर्य । जगत् । समग्रम् । भासः । तव । उग्राः । प्रतपंति । विष्णो ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे विष्णुभगवन् ! संपूर्ण लोकोंकूं ग्रासकरताहुआ तूं आपणे प्रज्वलित मुखोंकरिकै सर्वओरतैं आस्वादन करता है इस समग्र जगत्कूं आपणी दीप्तियोंकरिकै सर्व ओरतैं पूर्णकरिकै याकारणतैं तुम्हारी ते उग्र दीप्तियां संतापकूं उत्पन्न करैं हैं ॥ ३० ॥

भा० टी०—हे विष्णो ! अर्थात् हे सर्वत्र व्यापक विश्वरूप भगवन् ! इसप्रकार अत्यंत वेगकरिकै तुम्हारे मुखविषे प्रवेशकरतेहुए जे दुर्योधनादिक सर्व राजे हैं तिन

सर्व राजावोंकूं तूं ग्रास करताहुआ अर्थात् तिन आपणे मुखोंद्वारा आपणे उदरविषे प्रवेश करावताहुआ तिन आपणे प्रज्वलित मुखोंकरिकै सर्वओरतैं आस्वादन करैं हैं अर्थात् जैसे यह मनुष्य कोई स्वादुवस्तुकूं भक्षण करिकै आपणी जिह्वाकरिकै तालु ओष्ठादिकोंकूं चाटै है तैसे तूं परमेश्वरभी तिन दुर्योधनादिक राजावोंकूं भक्षण करिकै आपणी जिह्वाकरिकै तालु ओष्ठादिकोंकूं चाटैहै । क्या करिकै आपणे दीप्तिरूप तेजोंकरिकै इस समग्र जगत्कूं सर्वओरतैं परिपूर्ण करिकै । हे भगवन् ! जिसकारणतैं तूं आपणी दीप्तियोंकरिकै इस सर्वजगत्कूं सर्व ओरतैं परिपूर्ण करैहै तिस कारणतैं ते तुम्हारी अत्यंत तीव्र दीप्तियां प्रज्वलित अग्निकी न्याई संतापकूं उत्पन्न करैं हैं ॥ ३० ॥

इस प्रकार तिन भगवान्की दीप्तियोंकरिकै व्याकुल हुआ अर्जुन यह साक्षात् परिपूर्ण भगवान् हैं याप्रकारतैं भगवान्के स्वरूपका नहीं स्मरणकरिकै भगवान्के प्रति कहैं हैं--

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोस्तु ते देववर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) आख्याहि । मे । कः । भवान् । उग्ररूपः । नमः । अस्तु । ते । देववर । प्रसीद । विज्ञातुम् । इच्छामि । भवंतम् । आद्यम् । न । हि । प्रजानामि । तव । प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! ऐसे उग्ररूपवाले आप कौन हो यह वार्ता हमारे ताईं कथन करो हे सर्वदेवतावोंविषे श्रेष्ठ ! तुम्हारे ताईं हमारा नमस्कार होवै आप प्रसन्न होवो मैं अर्जुन सर्वके कारणरूप तुम्हारेकूं जानणेकी इच्छा करताहूं जिसकारणतैं तुम्हारी चेष्टाकूं मैं नहीं जानताहूं ॥ ३१ ॥

भा० टी०--उग्र है क्या अत्यंत क्रूर है रूप क्या आकार जिसका ताका नाम उग्ररूप है अथवा प्रलयकालविषे सर्व जगत्का संहार करणेहारा जो रुद्र है ताका नाम उग्र है ता उग्रके रूपकी न्याईं है रूप क्या आकार जिसका ताका नाम उग्ररूप है । अथवा उग्र है क्या सर्वलोकोंकूं भयकी प्राप्ति करणेहारा है रूप जिसका ताका नाम उग्ररूप है । अथवा उग्र है क्या क्रूर है रूप क्या कर्म जिसका

ताका नाम उग्ररूप है। ऐसे उग्ररूपवाले आप कौन हो ? अर्थात् प्रलयकालके रुद्र हो अथवा प्रलयकालकी अग्नि हो अथवा महान् मृत्यु हो अथवा कालांतक हो अथवा परमपुरुष हो अथवा इन सर्वोंतैं कोई अन्य हो। जो अबी आपका स्वरूप है सो स्वरूप मैं अर्जुनके ताईं आप कृपाकारिकै कथन करो। याकारणतैंही मैं अर्जुनका आप सर्वजगत्के गुरुरूप परमेश्वरके ताईं नमस्कार होवै। हे सर्वदेवतावोंविषे श्रेष्ठ भगवन् ! आप हमारे ऊपरि प्रसाद करो अर्थात् क्रूरताका परित्याग करिकै प्रसन्न होवौ। हे भगवन् ! सर्व जगत्का कारणरूप जो आप हो तिस कारणरूप आप परमेश्वरकूं मैं अर्जुन विशेषरूपतैं जानणेकी इच्छा करताहूं। शंका–हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरका स्वरूप तौ हमारी चेष्टाके दर्शनतैंही जानणेकूं शक्य है। यातैं (को भवान्) यह तुम्हारा प्रश्न संभवता नहीं। ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहैहै (न हि प्रजानामि इति) हे भगवन् ! जिसकारणतैं मैं अर्जुन आप परमेश्वरका सखा हुआभी आपकी चेष्टारूप प्रवृत्तिकूं जानता नहीं इसकारणतैं आपही आपका स्वरूप हमारे प्रति कथन करो ॥ ३१ ॥

इसप्रकार अर्जुनकरिकै प्रार्थना करयाहुआ श्रीभगवान् जो आपणा स्वरूप है तथा जिस कार्यके करणेवास्तै आपणी प्रवृत्ति है यह सर्व वार्त्ता तीन श्लोकों-करिकै अर्जुनके प्रति कथन करैहैं–

श्रीभगवानुवाच।

कालोस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेपि त्वा न भविष्यंति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

(पदच्छेदः) कालः[3]। अस्मि[4]। लोकक्षयकृत्[1]। प्रवृद्धः[2]। लोकान्[6]। समाहर्त्तुम्[7]। इह[5]। प्रवृत्तः[8]। ऋते[15]। अपि[16]। त्वा[14]। न[17]। भविष्यंति[18]। सर्वे[13]। ये[10]। अवस्थिताः[12]। प्रत्यनीकेषु[9]। योधाः[11] ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वलोकोंका[1] संहारकर्त्ता तथा अत्यंत वृद्धिकूं प्राप्त हुआ कालरूप[3] परमेश्वर मैं[4] हूं तथा इस कालविषे[5] दुर्योधनादिकोंकूं[6] भक्षण[7] करणे-वास्तै प्रवृत्त[8] हुआहूं यातैं प्रतिपक्षियोंकी[9] सेनाओंविषे जे[10] योधा[11] स्थित[12] हैं ते सर्व[13] योधा तुम्हारे[14] युद्धरूप व्यापारतैं विना[15] भी[16] नहीं[17] विद्यमान[18] होवैंगे ॥ ३२ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! भूमिविषे भाररूप जे प्राणी हैं तिन दुष्टप्राणियोंके नाशकरणेहारा अथवा प्रलयकालविषे सर्व प्राणियोंके नाश करणेहारा तथा महान् वृद्धिकूं प्राप्तहुआ क्रियाशक्ति उपहित कालरूप परमेश्वर मैं हूं । इसप्रकार आपणे स्वरूपकूं कथन करिकै श्रीभगवान् आपणी प्रवृत्तिकूं कथन करैंहैं । (लोकान् इति) हे अर्जुन ! जिस कार्यके करणे वासतै मैं भगवान् अबी प्रवृत्त हुआहूं तिसकूं तूं श्रवण कर । भूमिविषे भाररूप दुर्योधनादिकलोकोंकूं भक्षण करणेवासतै इस लोकविषे मैं प्रवृत्त हुआहूं । शंका-हे भगवन् ! मैं अर्जुनकी प्रवृत्तितैं विना आप इन दुर्योधनादिकोंकूं कैसे नाश करोगे ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं । (ऋतेपि त्वा इति) हे अर्जुन ! तुम्हारेतैं विनाभी अर्थात् तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतैं विनाभी केवल मैं परमेश्वरके व्यापारमात्रकरिकैही यह भीष्म द्रोण कर्णादिक सर्व योधा नाशकूं प्राप्त होवैंगे । तथा इस दुर्योधनकी सेनाविषे इन भीष्मद्रोणादिकोंतैं भिन्न दूसरेभी जितनेक योधा स्थित हैं ते सर्वही योधा मैं परमेश्वरनैंही हनन करिराखेहैं । यातैं तिन्होंके हननकरणेविषे तैं अर्जुनके युद्धरूप व्यापारका कोई अत्यंत प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे व्यापारतैं विनाही यह दुर्योधनादिक सर्व नाश होवैंगे ॥ ३२ ॥

हे भगवन् ! हमारे युद्धरूप व्यापारतैं विनाही जो कदाचित् यह दुर्योधनादिक नाश होते होवैं तौ आप वारंवार हमारेकूं युद्ध करणेविषे किसवासतै प्रवृत्त करतेहो ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं-

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥ मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । त्वम् । उत्तिष्ठ । यशः । लभस्व । जित्वा । शत्रून् । भुंक्ष्व । राज्यम् । समृद्धम् । मया । एव । एते । निहताः । पूर्वम् । एव । निमित्तमात्रम् । भव । सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तिसकारणतैं तूं युद्धवासतै उद्यमवाला होउ तथा यशकूं प्राप्त होउ तथा शत्रुवोंकूं जीतैंकै निष्कंटक राज्यकूं भोगैं हे सव्यसाचिन् ! यह तुम्हारे युद्धतैं पूर्वही मैं परमेश्वरनैंही हननकरि छोडेहैं तूं केवल निमित्तमात्र होउ ॥ ३३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! जिसकारणतैं तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतैं विनाभी यह भीष्मद्रोणादिक अवश्यकरिकै नाशकूं प्राप्त होवैंगे तिस कारणतैं तूं अर्जुन अबी युद्धकरणेवासतै उद्यमवाला होउ। ता युद्धविषे इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं हनन करिकै तूं यशकूं प्राप्त होउ अर्थात् जे भीष्मद्रोणादिक इंद्रादिक देवतावोंकरिकैभी दुर्जय थे ते भीष्मद्रोणादिक अतिरथि इस अर्जुननैं शीघ्रही जय करिलिये। याप्रकारके यशकूंही तूं प्राप्त होउ। जिसकारणतैं इसप्रकारका यश महान् पुण्यकर्मोंकरिकै प्राप्त होवैहै। तिसकारणतैं ऐसे यशकी प्राप्तिवासतै तूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होउ अर्थात् तुम्हारेकूं इसप्रकारके महान् यशकी प्राप्ति करणेवासतैही मैं भगवान् तुम्हारेकूं इस युद्धविषे प्रवृत्त करताहूं। कोई तुम्हारे युद्धतैं विना यह भीष्मद्रोणादिक नहीं नाश होवैंगे इसवासतैं मैं तुम्हारेकूं युद्धविषे प्रवृत्त करता नहीं। हे अर्जुन ! इन शत्रुवोंके मारणेकरिकै तुम्हारेकूं केवल यशकी ही प्राप्ति नहीं होवैगी किंतु इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं विनाही प्रयत्नतैं जयकरिकै सर्व ऐश्वर्य संपन्न निष्कंटकराज्यकूं भी तूं भोग। शंका–हे भगवन् ! इन भीष्मद्रोणादिक अतिरथियोधावोंके विद्यमान हुए तिन दुर्योधनादिक शत्रुवोंका जय करणा अत्यंत दुर्लभ है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् कहैं हैं (मयैवैते इति) हे अर्जुन ! तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतैं पूर्वही यह भीष्मद्रोणादिक कालरूप मैं परमेश्वरनैंही आयुषतैं रहित करिराखे हैं केवल तुम्हारेकूं लोकविषे यशकी प्राप्ति करणेवासतै यह भीष्मद्रोणादिक सर्व योधा हमनैं रथतैं नीचे गिराये नहीं। यातैं हे सव्यसाचिन् ! तूं केवल निमित्तमात्र होउ अर्थात् यह भीष्मद्रोणादिक योधा अर्जुननैंही जय करे हैं याप्रकारके सर्वलोकोंके वचनोंका आस्पद होउ। तहां वामहस्तकरिकैभी शरोंके चलावणेका स्वभाव जिसका होवै ताका नाम सव्यसाची है। तात्पर्य यह–ऐसे महान् पराक्रमवाले तैं अर्जुनकूं इन भीष्मद्रोणादिकोंका जय करणा कोई असंभावित नहीं है। किंतु संभवताही है। यातैं तुम्हारे युद्धरूप व्यापारतैं अनंतर मैं परमेश्वर इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं रथतैं नीचे गेरैंगा तिसकूं देखिकै सर्वलोक ऐसी कल्पना करैंगे, इस अर्जुननैंही इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं हनन कऱ्याहै ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो द्रोणाचार्य है सो द्रोणाचार्य कैसा है–सर्व ब्राह्मणोंविषे उत्तम ब्राह्मण है तथा धनुर्वेदका आचार्य है तथा

हम सर्वोंका गुरु है तथा दिव्य अस्त्रकरिकै संपन्न है । और इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो भीष्मपितामह है सो भीष्मपितामह कैसा है—आपणी इच्छातैं मरणेहारा है तथा दिव्य अस्त्रकारिकै संपन्न है जिस भीष्मपितामहकूं परशुरामनैंभी पराजय कऱ्या नहीं । और इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो जयद्रथ है सो जयद्रथ कैसा है—जिस जयद्रथका वृद्धक्षत्रनामा पिता जो योधा इस हमारे पुत्रका शिर भूमिविषे गेरैगा तिस योधाकाभी शिर तिसी कालविषे भूमिविषे गिरैगा याप्रकारका संकल्प करिकै तपकूं करताभयाहै । तथा जो जयद्रथ आपभी सर्वदा महादेवके आराधनपरायण है तथा दिव्य अस्त्रकारिकै संपन्न है ऐसा जयद्रथराजाभी जीतणेकूं अशक्य है । और इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जो कर्ण है सो कर्ण कैसा है—साक्षात् सूर्यके समान है तथा सूर्यभगवान्‌के आराधनकरिकै प्राप्तहुआ है दिव्य अस्त्र जिसकूं तथा इंद्रनैं दईहुई जा एकपुरुषके नाशकरणेहारी तथा व्यर्थकरणेकूं अशक्य ऐसी शक्ति है ता शक्तिकरिकै युक्त है । इन्होंतैं आदिलैके दूसरेभी कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा इत्यादिक जे महान् प्रभाववाले योधा हैं ते सर्व योधा सर्वप्रकारतैं दुर्जयही हैं । ऐसे भीष्मद्रोणादिक महान् योधावोंके विद्यमान हुए मैं अर्जुन ! इन दुर्योधनादिक शत्रुवोंकूं जीतिकै निष्कंटक राज्यकूं कैसे भोगौंगा । तथा यशकूं कैसे प्राप्त होवौंगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवास्तै श्रीभगवान् ता शंकाके विषयभूत योधावोंकूं स्वस्ववाचक नामोंकारिकै कथन करतेहुए कहैहैं—

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ॥ मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

(पदच्छेदः) द्रोणम् । च । भीष्मम् । च । जयद्रथम् । च । कर्णम् । तथा । अन्यान् । अपि । योधवीरान् । मया । हतान् । त्वम् । जहि । मा । व्यथिष्ठाः । युध्यस्व । जेतासि । रणे । सपत्नान् ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! द्रोणाचार्यकूं तथा भीष्मपितामहकूं तथा जयद्रथकूं तथा कर्णकूं तथा इन्होंतैं अन्य भी योधावोंकूं जे योधा मैं परमेश्वरनैंही हनन करिराखेहैं तिन सर्वयोधावोंकूं तूं अर्जुन हनन कर तूं मत व्यथाकूं प्राप्त होउ तथा युद्धकूं कर इस संग्रामविषे शत्रुवोंकूं तूं अवश्य जीतैगा ॥ ३४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! द्रोणाचार्य तथा भीष्मपितामह तथा जयद्रथ तथा कर्ण तथा इन्होंतैं भिन्न दूसरेभी जितनेक महान् योधा हैं, जे भीष्मादिक सर्वयोधा यह भीष्मादिक कैसे जय होवैंगे याप्रकारकी तुम्हारी शंकाके विषयभूत हैं ते भीष्मद्रोणादिक सर्व योधा कालरूप मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे युद्धतैं पूर्वही हननकरिराखेहैं ऐसे भीष्मद्रोणादिक योधावोंकूं तूं अर्जुन अबी हनन कर । पूर्व हनन कियेहुए योधावोंके हननकरणेविषे तुम्हारेकूं कौन परिश्रम होवैगा ? किंतु तिन्होंके हननकरणेविषे तुम्हारेकूं कोई भी परिश्रम होवैगा नहीं । यातै तूं व्यथाकूं मत प्राप्त होउ । अर्थात् यह भीष्मद्रोणादिक महान् योधा कैसे हनन कियेजावैंगे इसप्रकारकी भयनिमित्तक पीडारूप व्यथाकूं तूं मत प्राप्त होउ। हे अर्जुन ! तिस भयकूं परित्यागकरिकै तूं युद्धकूं कर । इसप्रकार भयका परित्याग करिकै जबी तूं युद्धकूं करैगा तबी इस संग्रामविषे थोडेही कालमैं इन दुर्योधनादिक सर्वशत्रुवोंकूं जीतैगा । तात्पर्य यह —इस दुर्योधनकी सेनाविषे स्थित जितनेक भीष्मादिक योधा हैं तिन योधावोंविषे किसी योधातैं आपणे पराजयकी शंकाकूं तूं मतकर । तथा किसीभी योधाके हननकरणेजन्य पापकी शंकाकूं तूं मतकर ॥ ३४ ॥

तहां दुर्योधनके जय होणेकी आशाके विषयभूत जे द्रोणाचार्य तथा भीष्मपितामह तथा जयद्रथ तथा कर्ण यह च्यारि योधा हैं तिन च्यारोंके हनन हुएतैं अनंतर निराश्रय हुए दुर्योधनकाभी हननही होवैगा इसप्रकारका विचार करिकै यह धृतराष्ट्र आपणे जयकी आशाका परित्याग करिकै जबी इन पांडवोंके साथि मित्रभावकरिकै युद्धतैं निवृत्त होवैगा तबी पांडवोंकी तथा कौरवोंकी दोनोंकीही शांति होवैगी । इसप्रकारके अभिप्रायवाला संजय तिसतैं अनंतर क्या वृत्तान्त होताभया ऐसी धृतराष्ट्रकी जिज्ञासाके हुए कहैं हैं—

सञ्जय उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ॥ नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

(पदच्छेदः) एतत् । श्रुत्वा । वचनम् । केशवस्य । कृतांजलिः । वेपमानः । किरीटी । नमस्कृत्वा । भूयः । एव । आह । कृष्णम् । सगद्गदम् । भीतभीतः । प्रणम्य ॥ ३५ ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! श्रीभगवान्‌के इस पूर्वउक्त वचनकूं श्रवणकरिकै जोडे हैं दोनोंहस्त जिसनैं तथा कंपायमानहुआ तथा अत्यंतभययुक्तहुआ सो अर्जुन श्रीभगवान्‌कूं नमस्कारकरिकै तथा अत्यंतनम्रहोइकै सगद्गद जैसे होवै तैसे पुनः भी कहताभया ॥ ३५ ॥

भा० टी०—हे धृतराष्ट्र ! श्रीभगवान्‌के इस पूर्वउक्त वचनकूं श्रवणकरिकै सो किरीटी अर्जुन अर्थात् इंद्रनैं दिया है किरीट जिसकूं ऐसा परम वीररूपकरिकै प्रसिद्ध अर्जुन कंपायमान हुआ अर्थात् परम आश्चर्यके दर्शनजन्य संभ्रमकरिकै कंपायमान हुआ सो अर्जुन श्रीकृष्णभगवान्‌कूं नमस्कार करिकै सगद्गद जैसे होवै तैसे पुनःभी कहता भया । तहां भयकरिकै अथवा हर्षकरिकै निकस्याहुआ जो अश्रुजल है ता अश्रुवोंकरिकै नेत्रोंके पूर्ण हुए तथा कफकरिकै अवरुद्ध हुए कंठपणेकरिकै जे वाणीके मंदपणा तथा सकंपपणा इत्यादिक विकार हैं तिनोंका नाम सगद्गद है ऐसे सगद्गदकरिकै युक्त जैसे होवै तैसे अर्जुन भीतभीत हुआ अर्थात् अत्यंतभयकरिकै युक्तहुआ पूर्व श्रीकृष्णभगवान्‌कूं नमस्कार करिकै पुनः भी प्रणाम करिकै अर्थात् अत्यंत नम्र होइकै पुनःभी यह वक्ष्यमाण वचन कहताभया इति । इहां किसी टीकाविषे (एवाह) इस वचनविषे (एव आह) याप्रकारका पदच्छेदकरिकै आह इसपदकूं प्रसिद्धका वाचक अव्ययपद मान्या है काहेतैं आह इसप्रकारका पदच्छेद करिकै आह इसपदकूं जो वचनरूप क्रियाका वाचक मानिये तौ पुनः अर्जुन उवाच यह वक्ष्यमाण वचन पुनरुक्त होवैगा । यातैं (प्रणम्य अर्जुन उवाच) याप्रकारतैंही पदोंका संबंध करणा (प्रणम्य आह) याप्रकारतैं पदोंका संबंध करणा नहीं ॥ ३५ ॥

अब एकादश श्लोकोंकरिकै अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति सो वचन कहै है—

अर्जुन उवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ॥ रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवंति सर्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

(पदच्छेदः) स्थाने । हृषीकेश । तव । प्रकीर्त्या । जगत् । प्रहृष्यति । अनुरज्यते । च । रक्षांसि । भीतानि । दिशः । द्रवंति । सर्वे । नमस्यन्ति । च । सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

(पदार्थः) हे हृषीकेश ! तुम्हारी प्रकीर्तिकरिकै यह सर्व जगत् हर्षकूं प्राप्त होवैहै तथा अनुरागकूं प्राप्त होवैहै तथा राक्षस भयकूं प्राप्तहुए सर्वदिशा-वोंविषे भागे जावैं ह तथा सर्व सिद्धोंके समूह नमस्कार करैं हैं यह सर्व वार्त्ता युक्तही है ॥ ३६ ॥

भा० टी०–हे हृषीकेश ! अर्थात् हे सर्वइंद्रियोंके प्रवर्त्तक जिसकारणतैं तूं परमेश्वर अत्यंत अद्भुतप्रभाववाला है तथा भक्तवत्सल है तिसकारणतैं तुम्हारी प्रकीर्तिकरिकै अर्थात् तुम्हारी निरतिशय उत्कृष्टताके कीर्त्तन करिकै तथा श्रवण करिकै केवल मैं अर्जुनही अत्यंत हर्षकूं नहीं प्राप्त होता किंतु राक्षसोंका विरोधी जितनाक चेतनमात्ररूप जगत् है सो सर्वजगतभी तिस आपकी प्रकीर्तिकरिकै महान् हर्षकूं प्राप्त होवैहै यह वार्त्ताभी युक्तही है । तथा तिस तुम्हारी प्रकीर्त्ति-करिकै यह सर्व जगत् तैं परमेश्वरविषयक अनुरागकूं जो प्राप्त होवै है सोभी युक्त ही है । तथा तिस तुम्हारी प्रकीर्तिकरिकै सर्व राक्षस भयकूं प्राप्त हुए जो सर्व दिशावोंविषे भागे भागे जावैं हैं सोभी युक्तही है । तथा सर्व कपिलादिक सिद्धोंके समूह तैं परमेश्वरके ताईं जो श्रद्धाभक्तिपूर्वक नमस्कार करैं हैं सोभी युक्तही है इति । और किसी टीकाविषे तौ (स्थाने हृषीकेश) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है । हे हृषीकेश ! (कालोस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्स-माहर्तुमिह प्रवृत्तः ।) अर्थ यह–भूमिविषे भाररूप जे दुष्टजन हैं तिन सर्व दुष्ट लोकोंके संहार करणेवासतै मैं कालरूप परमेश्वर प्रवृत्त हुआहूं । यह वचन आपनैं पूर्व कथन कऱ्याथा तिस आपके प्रकृष्टवचनरूप प्रकीर्त्तिकूं श्रवणकरिकै यह साधु-लोकरूप जगत् जो परमसंतोषकूं प्राप्त होवैहै सोभी युक्तही है अर्थात् साधुलोकोंके रक्षण करणेवासतै परमेश्वरनैं सर्व दुष्टजनोंके संहार किये हुए तिन साधुलोकोंकूं परमसंतोषकी प्राप्ति होणी युक्तही है। तथा तैं परमेश्वरके तिस प्रकृष्टवचनकूं श्रवण करिकै ते साधुलोक तैं भक्तवत्सल तथा सर्वभूतोंके सुहृदरूप परमात्मादेवविषे जो अनुरागकूं करैं हैं सोभी युक्तही है । अर्थात् सर्वलोकोंके उपद्रवकूं निवृत्त करणे वासतै उद्यमवाले तथा परमकृपालुरूप ऐसे तैं परमेश्वरविषे तिन साधुलोकोंका अनुराग होणा युक्तही है । तथा तैं परमेश्वरके तिस प्रकृष्टवचनके श्रवण करिकै सर्व राक्षस भयकूं प्राप्तहुए जो पूर्वादिक दिशावोंके कोणोंविषे भागेभागे जावैं हैं सोभी युक्तही है। तथा तैं परमेश्वरके तिस प्रकृष्ट वचनके श्रवणकरिकै सर्वलोकोंके

सुखकी इच्छा करणेहारे सर्व सिद्धोंके समूह तैं परमेश्वरके ताईं जो नमस्कार करैं हैं सोभी युक्तही है। इहां सिद्ध यह शब्द देवजातिमात्रका उपलक्षण है अर्थात् देव, ऋषि, सिद्ध, गंधर्व, चारण इत्यादिक सर्व देवत्वजातिवाले पुरुष हे स्वामिन्! जो तुमनैं दुष्टजनोंके संहार करणेकी प्रतिज्ञा करी है सा प्रतिज्ञा अवश्यकरिकै पूर्ण करणी। या प्रकारकी प्रार्थनापूर्वक तैं परमेश्वरके ताईं जो प्रणाम करैंहैं सोभी युक्तही है इति। तहां (स्थाने हृषीकेश) यह श्लोक रक्षोघ्ननामा मंत्ररूप-करिकै मंत्रशास्त्रविषे प्रसिद्ध है। जिस मंत्रके अनुष्ठानकरिकै दुष्टराक्षसोंका हनन होवै ता मंत्रका नाम रक्षोघ्नमंत्र है ॥ ३६ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे अर्जुननैं श्रीभगवान्‌विषे सर्वलोकोंके हर्षकी विषयता तथा अनुरागकी विषयता तथा नमस्कार्यता कथन करी। अब तिसी अर्थकी सिद्धि करणेविषे अर्जुन हेतु कहैहै–

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्गरीयसे ब्रह्मणोप्यादि-कर्त्रे ॥ अनंत देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

(पदच्छेदः) कस्मात्। च। ते। न। नमेरन्। महात्मन्। गरीयसे। ब्रह्मणः। अपि। आदिकर्त्रे। अनंत। देवेश। जगन्निवास। त्वम्। अक्षरम्। सत्। असत्। तत्परम्। यत् ॥ ३७ ॥

(पदार्थः) हे महात्मन्! हे अनंत! हे देवेश! हे जगन्निवास! ब्रह्माके भी गुरुरूप तथा जनकरूप ऐसे आपके ताईं ते सर्वदेवता किसवासतै नहीं नमस्कार करैंगे किंतु करैंगेही। हे भगवन्! तूं ही सतरूप है तथा असतरूप है तथा तिनँ दोनोंतैं परै जो अक्षरब्रह्म है सोभी तूं है ॥ ३७ ॥

भा० टी०–हे महात्मन्! अर्थात् हे परम उदारचित्तवाला! तथा हे अनंत! अर्थात् हे देश काल वस्तु परिच्छेदतैं रहित! तथा हे देवेश! अर्थात् हे हिरण्य-गर्भादिक सर्व देवतावोंके नियंता! तथा हे जगंनिवास! अर्थात् हे सर्व जगत्‌का आश्रयरूप! तुम्हारे ताईं ते सर्वसिद्धोंके समूह तथा सर्व देवता किसवासतै नहीं नमस्कार करैंगे किंतु आपके ताईं तिन सर्वोंका नमस्कार करणा उचितही है। कैसे हो आप–सर्वजगत्‌का गुरुरूप जो ब्रह्मा है तिस ब्रह्माकेभी अत्यंत गुरुरूप हो।

तथा इस सर्व जगत्का जनक जो ब्रह्मा है तिस ब्रह्माकेभी जनक हो: ऐसे आपके ताईं तिन सर्वसिद्धादिकोंका नमस्कार उचितही है । इहां (कस्माच्च) इस वचनके अंतविषे स्थित जो चकार है ता चकारकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन कऱ्या । ब्रह्मादिक देवतावोंकाभी नियंतापणा तथा उपदेष्टापणा इत्यादिक हेतुवोंविषे एक एकभी हेतु आप परमेश्वरविषे तिन सर्वसिद्धोंकी नमस्कार्यताका प्रयोजक है । जबी एकएकभी हेतु आपविषे ता नमस्कार्यताका प्रयोजक हुआ जबी महात्मापणा तथा अनंतपणा तथा जगन्निवासपणा इत्यादिक अनेक शुभगुणोंकरिकै युक्त हुआ सो हेतु आपविषे ता नमस्कार्यताका प्रयोजक है याकेविषे क्या आश्चर्य है इति । पुनः कैसे हो आप—सत्रूप हो तथा असत्रूप हो । तहां अस्ति इस प्रकारकी विधिमुख प्रतीति करिकै जो वस्तु प्रतीत होवै है ता वस्तुका नाम सत् है । और नास्ति इसप्रकारकी निषेधमुख प्रतीत करिकै जो वस्तु प्रतीत होवै है ता वस्तुका नाम असत् है । अथवा व्यक्तका नाम सत् है । और अव्यक्तका नाम असत् है । सो सत् असत्रूपभी आपही हो । तथा तिस सत् असत्तैंभी सूक्ष्म जो सर्वका मूलकारणरूप अक्षरब्रह्म है सो अक्षरब्रह्मभी आपही हो । तैं परमेश्वरतैं भिन्न कोईभी वस्तु नहीं है । तहां श्रुति—(सर्वं ह्येतद्ब्रह्म) अर्थ यह—यह सर्व जगत् ब्रह्मरूपही है इति । हे भगवन् ! इस पूर्वउक्त सर्व हेतुवोंकरिकै ते सिद्धादिक सर्वलोक तैं परमेश्वरके ताईं नमस्कार करैं हैं । तथा अत्यंत हर्षकूं तथा अनुरागकूं करैं हैं इसविषे कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ३७ ॥

अब अत्यंत भक्तिके वेगतैं सो अर्जुन पुनः भी श्रीकृष्णभगवान्‌की स्तुति करै है—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

(पदच्छेदः) त्वम् । आदिदेवः । पुरुषः । पुराणः । त्वम् । अस्य । विश्वस्य । परम् । निधानम् । वेत्ता । असि । वेद्यम् । च । परम् । च । धाम । त्वया । ततम् । विश्वम् । अनंतरूप ॥ ३८ ॥

(पदार्थः) हे अनन्तरूप ! तूं परमेश्वरही आदिदेव है तथा पुरुष है तथा पुराण है तथा तूंही इस विश्वका परम निधान है तथा सर्वके जाननेहारा है तथा

सर्वदृश्यरूप है तथा परम धामरूप है तथा तुमनैही यह सर्वविश्व व्याप्त-कन्याहै ॥ ३८ ॥

भा०टी०—हे अनंतरूप अर्थात् हे देश काल वस्तु परिच्छेदतैं रहित स्वरूप ! इस सर्व जगत्के उत्पत्तिका हेतु होणेतैं तुमही आदिदेव हो । तथा सर्वत्र अस्ति भाति प्रियरूपकारिकै पूर्ण होणेतैं तुमही पुरुष हो । अथवा सर्व शरीररूप पुरियों-विषे शयनकर्त्ता होणेतैं तुमही पुरुष हो । तथा तुमही पुराण हो अर्थात् अनादि हो । अथवा इस शरीरके नाश हुएभी आप नाश होते नहीं यातैं पुराण हो । तथा तुमही इस सर्वविश्वका परम निधान हो अर्थात् इस सर्व विश्वके लयका स्थानरूप हो । इहां (आदिदेवः परं निधानम्) इन दोनों पदोंकारिकै अर्जुननैं श्रीभगवान्‌विषे सर्वजगत्के उत्पत्तिका हेतुपणा तथा लयका स्थानपणा कथन कन्या । ताकरिकै परमेश्वरविषे सर्वजगत्का उपादानकारणपणा कथन कन्या । काहेतैं जिसतैं कार्य उत्पन्न होवैहै तथा जिसविषे कार्य लय होवैहै सो उपादान-कारणही होवैहै । जैसे घटरूप कार्य मृत्तिकातैंही उत्पन्न होवैहै । तथा मृत्तिका-विषेही लय होवै है, यातैं सा मृत्तिका ता घटका उपादानकारणही होवै है । इसप्रकार तैं परमेश्वरविषे सर्व जगत्का उपादानकारणपणा कहिकै अब सर्वज्ञतारूप हेतुकारिकै सांख्यशास्त्रकल्पित जडप्रधानरूप कारणकी व्यावृत्ति करताहुआ अर्जुन तिस परमेश्वरविषे जगत्का निमित्तकारणपणाभी कथन करैहै । (वेत्तासि इति) हे भगवन् ! सर्वज्ञ होणेतैं आपही इस सर्वजगत्के जानणेहारे हो अर्थात् आपही इस सर्वजगत्का कर्त्तारूप निमित्तकारण हो । तहां इस सर्वजगत्कूं जो परमेश्वरतैं भिन्न अंगीकार करिये तौ द्वैतभावकी प्राप्ति होवैगी । ता द्वैतभावकी निवृत्ति करणेवासतै अर्जुन कहै है (वेद्यमिति) हे भगवन् ! जितनाक यह दृश्यप्रपंच है सो भी तूंही है अर्थात् ज्ञानस्वरूप तैं परमेश्वरविषे इस जडरूप दृश्यप्रपंचका कोईभी वास्तव संबंध है नहीं यातैं यह सर्व दृश्यप्रपंच तैं परमेश्वरविषे कल्पितही है । और कल्पित वस्तु अधिष्ठानतैं पृथक् होवै नहीं । जैसे कल्पित सर्पादिक रज्जुरूप अधिष्ठानतैं पृथक् होवै नहीं । यातैं द्वैतभावकी प्राप्ति होवै नहीं इति । इसीकारणतैंही आप परमधाम हो अर्थात् सत् चित् आनंदघन तथा कार्यसहित अविद्यातैं रहित जो व्यापक विष्णुका परमपद है सो परमपदभी आपही हो । हे भगवन् स्वतः सत्तास्फूर्तितैं रहित जो यह सर्व

विश्व है सो यह सर्व विश्व स्थितिकालविषे मायिकसंबंधकरिकै तैं सत्तास्फुरणरूप कारणनैंही व्याप्त कऱ्याहै। जैसे रज्जुरूप अधिष्ठाननैं आपणे इदम्‌रूपकरिकै कल्पित सर्पदंडादिक व्याप्त करै हैं तैसे तैं परमेश्वरनैंही आपणे अस्ति भाति प्रियरूपकरिकै यह सर्व जगत् व्याप्त कऱ्याहै ॥ ३८ ॥

अब अर्जुन श्रीभगवान्‌की सर्वदेवतारूप करिकै स्तुति करैहै–

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥ नमो नमस्तेस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोपि नमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

(पदच्छेदः) वायुः। यमः। अग्निः। वरुणः। शशांकः। प्रजापतिः। त्वम्। प्रपितामहः। च। नमः। नमः। ते। अस्तु। सहस्रकृत्वः। पुनः। च। भूयः। अपि। नमः। नमः। ते ॥ ३९ ॥

(पदार्थः) हे भगवन्! वायु यम अग्नि वरुण चंद्रमा प्रजापति तथा प्रपितामह इत्यादिक सर्वदेवतारूप तूं परमेश्वरही है यातैं तैं परमेश्वरके ताईं हमारा अनेकसहस्रवार नमस्कार नमस्कार होउ तथा तुम्हारे ताईं पुनः भी वारंवार नमस्कार नमस्कार होउ ॥ ३९ ॥

भा० टी०–हे भगवन्! तूं परमेश्वरही वायुरूप है। तथा तूं परमेश्वरही यमरूप है तथा तूं परमेश्वरही अग्निरूप है। तथा तूं परमेश्वरही वरुणरूप है। तथा तूं परमेश्वरही चंद्रमारूप है। इहां (शशांकः) यह शब्द सूर्यादिक देवतावोंकाभी उपलक्षक है अर्थात् तूं परमेश्वरही सूर्यादिक सर्वदेवतारूप है। तथा तूं परमेश्वरही प्रजापतिरूप है इहां (प्रजापतिः) इस शब्दकरिकै विराट्‌का ग्रहण करणा अथवा हिरण्यगर्भका ग्रहण करणा अथवा दक्षादिकोंका ग्रहण करणा। तथा तूं परमेश्वरही प्रपितामहरूप है अर्थात् तिस हिरण्यगर्भकाभी पितारूप जो कारणब्रह्म है सो भी तूं परमेश्वरही है। हे भगवन्! जिसकारणतैं सर्वदेवतारूप होणेतैं तूं परमेश्वर सर्वप्राणियोंकरिकै नमस्कार करणेयोग्य है तिसकारणतैं मैं अत्यंत अनाथ अर्जुनकाभी तुम्हारे ताईं अनेक सहस्रवार नमस्कार होउ नमस्कार होउ। तथा पुनःभी आपके ताईं वारंवार नमस्कार होउ नमस्कार होउ। इहां पुनः पुनः नमस्कारोंकी आवृत्तिकरिकै अर्जुननैं भक्तिश्रद्धापूर्वक भगवत्‌के नमस्कारोंविषे अलंबु-

द्धिका अभाव सूचन कऱ्या अर्थात् तैं परमेश्वरके ताईं श्रद्धाभक्तिपूर्वक पुनः पुनः नमस्कारोंके करणेतैं मैं अर्जुनकी तृप्ति होती नहीं ॥ ३९ ॥

किंच-

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः ॥ ४० ॥

(पदच्छेदः) नमः । पुरस्तात् । अथ । पृष्ठतः । ते । नमः । अस्तु । ते । सर्वतः । एव । सर्व । अनंतवीर्यामितविक्रमः । त्वम् । सर्वम् । समाप्नोषि । ततः । असि । सर्वः ॥ ४० ॥

(पदार्थः) हे सर्व ! तुम्हारे ताईं अग्रभागविषे हमारा नमस्कार होवउ तथा पृष्ठविषे भी नमस्कार होवउ तथा तुम्हारे ताईं सर्वदिशावोंविषे ही नमस्कार होवउ तूं परमेश्वर अनंतवीर्य अमितविक्रमवाला है तथा तूं इस सर्वजगत्कूं व्याप्त करै है तिसैं कारणतैं तूं परमेश्वर सर्व कह्याजावै है ॥ ४० ॥

भा० टी०-हे सर्व ! अर्थात् हे सर्वात्मारूप भगवन् ! मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं अग्रभागविषेभी नमस्कार होवौ । तथा मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं पृष्ठभागविषेभी नमस्कार होवौ । तथा मैं अर्जुनका तैं परमेश्वरके ताईं सर्व दिशवोंविषे नमस्कार होवौ । इहां यद्यपि सर्वात्मारूप व्यापक परमेश्वरके अग्रभाग पृष्ठभागादिक संभवते नहीं, परिच्छिन्न पदार्थकेही ते अग्रभागादिक होवैं हैं तथापि अर्जुननैं तिस सर्वात्मारूप परमेश्वरके ते अग्रभागादिक कल्पना करिकै कथन करे हैं । वास्तवतैं ता सर्वात्मारूप परमेश्वरके ते अग्रभागादिक हैं नहीं इति । और किसी टीकाविषे तौ (पुरस्तात्) इस पदका कर्मोंके आदिविषे यह अर्थ कऱ्या है । और (पृष्ठतः) इस पदका तिन कर्मोंकी समाप्तिविषे यह अर्थ कऱ्या है । और (सर्वतः) इस पदका तिन कर्मोंके मध्यविषे यह अर्थ कऱ्या है अर्थात् कर्मोंके आदिविषेभी तैं परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार होवौ । तथा तिन कर्मोंकी समाप्तिविषेभी तैं परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार होवौ । तथा तिन कर्मोंके मध्यविषेभी तैं परमेश्वरके ताईं हमारा नमस्कार होवौ । इस व्याख्यानविषे तिस सर्वात्मारूप परमेश्वरके अग्रभागादिक कल्पना करे जावैं नहीं इति । हे भगवन्

आप कैसे हो—अनंतवीर्य अमितविक्रम हो । तहां अनंत है वीर्य जिसका तथा अमित है विक्रम जिसका ताका नाम अनंतवीर्य अमितविक्रम है । तहां शरीरके बलका नाम वीर्य है । और शिक्षाशस्त्रोंके प्रयोगकी जा कुशलता है ताका नाम विक्रम है । तहां एक वीर्यकरिकैही अधिकता तथा एक विक्रमकरिकैही अधिकता तौ भीम दुर्योधनादिकोंविषे तथा अन्यराजावोंविषेभी विद्यमान है परंतु अनंतवीर्यकरिकैं अधिकता तथा अमितविक्रमकरिकै अधिकता आप परमेश्वरतैं विना दूसरे किसीविषे है नहीं किंतु एक आपविषेही है । अथवा (अनंतवीर्य अमितविक्रमः) यह दो पद जानणे तहां अनंतवीर्य यह पद तौ हे अनंतवीर्य ! या प्रकारतैं श्रीभगवान्का संबोधन है इति । तहां अर्जुननैं श्रीभगवान्का (हे सर्व) यह संबोधन कथन कऱ्या था ता सर्वशब्दके अर्थकूं अब अर्जुन कथन करैहै (सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः इति) हे भगवन् ! जिसकारणतैं तूं परमेश्वर इस सर्वजगत्कूं आपणे सत्ता स्फुरणरूपकरिकै व्याप्त करि रह्याहै तिस कारणतैं तूं परमेश्वर सर्व इस नामकरिकै कह्या जावैहै अर्थात् तैं परमेश्वरतैं अतिरिक्त कोईभी वस्तु नहीं है ॥ ४० ॥

हे भगवन् ! जिसकारणतैं मैं अर्जुन तैं परमेश्वरके माहात्म्यके अज्ञानतैं तुम्हारे अनेक अपराधोंकूं करता भयाहूं तिसकारणतैं परमकृपालुरूप तैं परमेश्वरकूं दंडवत् प्रणामकरिकै मैं अर्जुन तिन आपणे अपराधोंकी क्षमा करावाहूं । इस अर्थकूं अब अर्जुन दो श्लोकोंकरिकै कहैहै—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ॥ अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

(पदच्छेदः) सखा । इति । मत्वा । प्रसभम् । यत् । उक्तम् । हे कृष्ण । हे यादव । हे सखे । इति[17] । अजानता । महिमानम् । तव । इदम् । मया । प्रमादात् । प्रणयेन । वा । अपि ॥ ४१ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! तुम्हारे इसविश्वरूपकूं तथा ऐश्वर्यरूपकूं न जानणेहारे मैं अर्जुननैं यह कृष्ण हमारा सखाहै इसप्रकार मानिकै चित्तके विक्षेपतैं अथवा स्नेहकरिकै भी[12] जे[13] हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! इसप्रकारके अभिभवपूर्वक वचन कहे हैं ते सर्व आप क्षमा करौ ॥ ४१ ॥

भा० टी०-हे भगवन् ! यह कृष्णभगवान् हमारा सखा है अर्थात् समान वयवाला है अथवा हमारे मामेका पुत्र है इस प्रकारका तुम्हारेकूं मानिकै हमनैं आपणे चित्तके विक्षेपरूप प्रमादतैं अथवा स्नेहकारिकै आपके प्रति जे प्रसभवचन कथन करे हैं अर्थात् आपणी उत्कृष्टताका ख्यापनरूप अभिभव करिकै जे अनुचित वचन कथन करेहैं ते सर्व हमारे अपराध आप क्षमा करौ । शंका- हे अर्जुन ! ऐसे अनुचित वचन तुमनैं किसहेतुतैं कथन करेहैं ? ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन तिन अनुचितवचनोंके कहणेविषे हेतुकूं कथन करैहै । (अजानता महिमानं तवेदमिति) हे भगवन् ! जिसकारणतैं तुम्हारे इस विश्वरूपकूं तथा तुम्हारे ऐश्वर्य-रूप महिमाकूं मैं अर्जुन पूर्व जानता नहींथा, इसकारणतैं मैं अर्जुन आपके प्रति ते अनुचितवचन कहता भयाहूं । शंका-हे अर्जुन ! तुमनैं हमारेकूं ऐसे कौन अनुचित वचन कहेहैं ? ऐसी श्रीभगवान्की शंकाके हुए अर्जुन तिन अनुचितवचनोंका स्वरूप कथन करैहै (हे कृष्ण हे यादव हे सखे इति) हे भगवन् ! सर्व जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयकरणेहारे तथा ब्रह्मादिक सर्वदेवतावोंके भी गुरुरूप ऐसे आप परमेश्वर-कूं मैं अर्जुन हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! इसप्रकारके संबोधनों करिकै बुला-वता भयाहूं इति । तहां किसी मूलपुस्तकविषे (महिमानं तवेमम्) याप्रकारकाभी पाठ होवैहै इसप्रकारके पाठविषे तौ (महिमानम् इमम्) इन दोनोंपदोंका सामाना-धिकरण्यही जानणा अर्थात् तुम्हारे इस विश्वरूपमहिमाकूं मैं अर्जुन पूर्व जानता नहीं था ॥ ४१ ॥

किंच-

यच्चावहासार्थमसत्कृतोसि विहारशय्यासनभोज-नेषु ॥ एकोथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामह-मप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

(पदच्छेदः) यत् । च । अवहासार्थम् । असत्कृतः । असि । विहारशय्यासनभोजनेषु । एकः । अथवा । अपि । अच्युत । तत्सम-क्षम् । तत् । क्षामये । त्वाम् । अहम् । अप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

(पदार्थः) हे अच्युत ! तथा परिहासके वासतै विहारशय्याआसनभोजन-विषे एकला स्थितहुआ अथवा कदाचित् तिनसखावोंके सम्मुख स्थितहुआ तूं

परमेश्वर मैं अर्जुननैं जो पराभव कऱ्या है सो सर्वअपराध मैं अर्जुन तैं अप्रमेयके प्रति क्षमाकरावताहूं ॥ ४२ ॥

भा० टी०—हे अच्युत ! अर्थात् हे सर्वदा निर्विकार ! क्रीडारूप जो विहार है तिस विहारविषे तथा वस्त्रतूलिकादिकों करिकै रचीहुई जा शयनकरणेका स्थानरूप शय्या है तिस शय्याविषे तथा सिंहासनादिरूप जो आसन है ता आसनविषे तथा सजातीय बहुतपुरुषोंकी पंक्तिविषे अन्नका भक्षणरूप जो भोजन है ता भोजनविषे सर्वसखावोंकूं छोडिकै एकले स्थितहुए आपका अथवा परिहास करतेहुए तिन सखावोंके समीप स्थितहुए आपका मैं अर्जुननैं उपहासके वासतै जो पराभव कऱ्याहै ते अनुचितवचनरूप सर्व अपराध अथवा असत्करणरूप सर्व अपराध मैं अर्जुन तुम्हारेतैं क्षमा करावताहूं । कैसे हो आप—अप्रमेय हो अर्थात् अचिंत्यप्रभाववाले हो । तात्पर्य यह—अचिंत्यप्रभाववाला तथा सर्वविकारोंतैं रहित तथा परमकृपालुरूप ऐसे आप परमेश्वरनैं तुम्हारे प्रभावकूं न जानणेहारे मैं अर्जुनके ते सर्व अपराध क्षमा करणे ॥ ४२ ॥

अब अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति सा पूर्वउक्त अचिंत्यप्रभावता स्पष्टकारिकै वर्णन करैहै—

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥ न त्वत्समोस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

(पदच्छेदः) पिता । असि । लोकस्य । चराचरस्य । त्वम् । अस्य । पूज्यः । च । गुरुः । गरीयान् । न । त्वत्समः । अस्ति । अभ्यधिकः । कुतः । अन्यः । लोकत्रये । अपि । अप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

(पदार्थः) हे उपमातैं रहित प्रभाववाला ! इस चराचररूप सर्वलोकका तूं पितारूप है तथा पूज्य है तथा गुरुरूप है तथा गुरुतर है तीनलोकविषे तुम्हारेसमान भी कोई अन्य नहीं है तौ तुम्हारेतैं अधिक कहांतैं होवै ॥ ४३ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! इस स्थावरजंगमरूप सर्वजगत्‌मात्रका तूं पिता है अर्थात् जनक है। तहां श्रुति—(यतो वा इमानि भूतानि जायंते ।) अर्थ यह—जिस परमात्मादेवतैं यह सर्वभूतप्राणी उत्पन्न होवैं हैं । इत्यादिक श्रुतियां

तैं परमेश्वरकूं सर्वजगत्का जनक कहैं हैं। तथा सर्वका ईश्वर होणेतैं आपही पूज्यहो। तथा आपही सर्वशास्त्रके उपदेशकरणेहारे गुरुरूप हो । इसी कारण-तैंही सर्वप्रकारकरिकै आप गुरुतर हो अर्थात् सर्वतैं उत्कृष्ट हो । इसीकारणतैंही हे भगवन् ! तीन लोकोंविषे तैं परमेश्वरके समानभी दूसरा कोई है नहीं तौ तिन तीन लोकोंविषे तैं परमेश्वरतैं अधिक दूसरा कोई कहांतैं होवैगा किंतु कोईभी अधिक नहीं है। तात्पर्य यह–तैं परमेश्वरके समान दूसरा कोई है नहीं । काहेतें जो कदाचित् तैं परमेश्वरके समान दूसरा कोई अंगीकार करिये तौ सो दूसराभी ईश्वरही सिद्ध होवैगा। तहां एक ईश्वर तौ इस जगत्के उत्पन्नकरणेकी इच्छा करैगा और दूसरा ईश्वर तिसी कालविषे इस जगत्के संहारकरणेकी इच्छा करैगा । यातैं कोईभी व्यवहार सिद्ध नहीं होवैगा किंतु सर्व व्यवहारोंका लोप होवैगा । यातैं तैं परमेश्वरके समान दूसरा कोई है नहीं । जबी तीन लोकोंविषे तैं परमेश्वरके समानबी कोई नहीं भया तबी तुम्हारेतैं अधिक कौन होवैगा? किंतु सर्वप्रकारकरिकै तुम्हारेतैं अधिक कोई है नहीं । तहां श्रुति–(न त्वत्समश्चाभ्य-धिकश्च दृश्यते ।) अर्थ यह–तिस परमेश्वरके समानभी कोई देखणेविषे आवता नहीं । तथा तिस परमेश्वरतैं अधिकभी कोई देखणेविषे आवता नहीं इति । तहां तैं परमेश्वरके समान पुरुषकाही असंभव है इस पूर्वउक्त अर्थविषे अर्जुन हेतु कहैहै (हे अप्रतिमप्रभाव इति) इहां सादृश्यका नाम प्रतिमा है, सा सादृ-रूप प्रतिमा नहीं है विद्यमान जिसकूं ताका नाम अप्रतिम है ऐसा अप्रतिम है प्रभाव क्या सामर्थ्य जिसका ताका नाम अप्रतिमप्रभाव है ॥ ४३ ॥

जिसकारणतैं आप ऐसे हो तिस कारणतैं मैं अर्जुन आपणे अपराधोंकूं क्षमा-करावणेवासतै आपके आगे दंडवत् प्रणाम करिकै प्रार्थना करताहूं। इस अर्थकूं अब अर्जुन कहैहै–

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमी-ड्यम् ॥ पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियाया-र्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

(पदच्छेदः) तस्मात् । प्रणम्य । प्रणिधाय । कायम् । प्रसादये । त्वाम् । अहम् । ईशम् । ईड्यम् । पिता । इव । पुत्रस्य । सखा । इव । सख्युः । प्रियः । प्रियायाः । अर्हसि । देव । सोढुम् ॥ ४४ ॥

(पदार्थः) हे भगवन्! तिसकारणतैं तैं परमेश्वरकूं नमस्कार करिकै तथा आपणे देहकूं भूमिविषे दंडकी न्याईं धारणकरिकै मैं अर्जुन सर्वोंकरिकै स्तुति करणेयोग्य तैं ईश्वरकूं प्रसन्न होवो ऐसी प्रार्थना करूंहूं इसकारणतैं हे देव! पुत्रके अपराधकूं पिताकी न्याईं तथा सखाके अपराधकूं सखाकी न्याईं तथा प्रियाके अपराधकूं पतिकी न्याईं हमारे अपराधकूं आप क्षमाकरणेकूं योग्य हो ॥ ४४ ॥

भा०टी०–हे भगवन्! जिसकारणतैं तूं परमेश्वर इस सर्वलोकका पितारूप है, तथा सर्वका गुरुरूप है तिस कारणतैं मैं अर्जुन तैं परमेश्वरकूं नमस्कार करिकै तथा आपणी कायाकूं अत्यंत नीचै धारण करिकै अर्थात् दंडकी न्याईं भूमिविषे पतन होइकै तैं परमेश्वरके प्रसन्नताकी प्रार्थना करताहूं अर्थात् मैं अपराधी अर्जुन तिन आपणे अपराधोंकी क्षमा करावणे वासतै मैं अर्जुन ऊपरि आप प्रसन्न होवौ याप्रकारकी प्रार्थना आपके आगे करताहूं। कैसे हो आप–ईश हो अर्थात् इस सर्वजगत्‌के नियंता हो। पुनः कैसे हो आप–ईड्य हो अर्थात् ब्रह्मादिक देवतावों करिकैभी स्तुति करणेयोग्य हो। इसकारणतैं हे देव! अर्थात् हे स्वप्रकाशरूप! जैसे पुत्रके अपराधकूं पिता क्षमा करैहै, तथा जैसे सखाके अपराधकूं सखा क्षमा करैहै, तथा जैसे पतिव्रता प्रियाके अपराधकूं पति क्षमा करैहै, तैसे मैं अर्जुनके अपराधकूंभी आप परमेश्वर क्षमा करणेकूं योग्य हो। जिसकारणतैं मैं अर्जुन केवल तुम्हारेही शरण हूं। अन्य किसीके शरण हूं नहीं। तिसकारणतैं आप हमारे अपराधकूं क्षमा करणेयोग्य हो इति। इहां (प्रियायार्हसि) इस वचनविषे वत् इस शब्दका लोप तथा विसर्गके लोपहुएभी संधी यह दोनों छांदस हैं ॥ ४४ ॥

इसप्रकार अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति आपणे अपराधके क्षमाकी प्रार्थना करिकै पुनः श्रीभगवान्‌के प्रति तिस विश्वरूपके उपसंहारपूर्वक पूर्वले रूपके दर्शनकी प्रार्थना दो श्लोकोंकरिकै करैहै–

अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ॥
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

(पदच्छेदः) अदृष्टपूर्वम्। हृषितः। अस्मि। दृष्ट्वा। भयेन। च। प्रव्यथितम्। मनः। मे। तत्। एव। मे। दर्शय। देव। रूपम्। प्रसीद। देवेश। जगन्निवास ॥ ४५ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! पूर्व कबीभी नहीं देखेहुए इस विश्वरूपकूं देखिकै मैं अर्जुन हर्षवान् हुआहूं तथा भयकरिकै मेरा मन व्याकुल हुआहै यातैं मैं अर्जुनके तांई सो पहला रूप ही दिखावो देव ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! मेरे ऊपरि प्रसादकूं करौ ॥ ४५ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! मैं अर्जुननैं पूर्व कदाचित्भी नहीं देख्याहुआ ऐसा जो आपका यह विश्वरूप है तिस आपके विश्वरूपकूं देखिकै मैं अर्जुन हर्षकूं प्राप्त होताभयाहूं । तथा तिस विकराल रूपके दर्शनतैं उत्पन्न भया जो भय है तिस भयकरिकै हमारा मन व्याकुल होताभया है । यातैं हे भगवन् ! मैं अर्जुनके तांई सो प्राणोंतैंभी प्रिय आपणा पूर्वला रूपही दिखावौ । हे देव ! अर्थात् हे स्वप्रकाशरूप ! तथा हे देवेश ! अर्थात् हे सर्वदेवतावोंके नियंता ! तथा हे जगन्निवास ! अर्थात् हे सर्वजगत्का आधाररूप ! मैं अर्जुनऊपरि तिस पूर्वले रूपका दर्शनरूप प्रसादकूं करौ ॥ ४५ ॥

अब जिस पूर्वले रूपके दर्शनकी अर्जुननैं प्रार्थना करीहै तिस रूपकूं सो अर्जुन विशेषणोंकरिकै कथन करैहै—

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव॥
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्त्ते ॥४६॥

(पदच्छेदः) किरीटिनम् । गदिनम् । चक्रहस्तम् । इच्छामि । त्वाम् । द्रष्टुम् । अहम् । तथा । एव । तेन । एव । रूपेण । चतुर्भुजेन । सहस्रबाहो । भव । विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

(पदार्थः) हे भगवन् ! मैं अर्जुन किरीटवाले तथा गदावाले तथा चक्र है हस्तविषे जिनके ऐसे तुम्हारेकूं पूर्वकी न्याई ही देखणेकूं इच्छैताहूं यातैं हे सहस्रबाहुवाला हे विश्वमूर्त्ते ! अबी आप तिस पूर्वले चतुर्भुज रूपकरिकै ही प्रगट होवौ ॥ ४६ ॥

भा० टी०—हे भगवन् ! किरीटकूं धारणकरणेहारे तथा गदाकूं धारणकरणेहारे तथा चक्र है हस्तविषे जिसके ऐसे आप परमेश्वरकूं मैं अर्जुन इस विश्वरूपतैं पूर्व जैसे देखताभया हूं तिसी आपके सुंदरस्वरूपकूं अबी मैं अर्जुन देखणेकी इच्छा करताहूं । यातैं हे सहस्रबाहो ! अर्थात् हे अनेक सहस्र भुजावोंवाला !

तथा हे विश्वमूर्ते ! अर्थात् हे सर्व विश्वरूप मूर्तीकूं धारणकरणेहारा श्रीभगवन् ! अबी इसकालविषे इस आपके विश्वरूपका उपसंहार करिकै तिस पूर्वले चतुर्भुज स्वरूपकरिकै प्रगट होवौ। इतने कहणे करिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या, अर्जुननैं सर्वकालविषे श्रीभगवान्का चतुर्भुजादिक स्वरूपही देखियेहै ॥ ४६ ॥

इस प्रकारतैं अर्जुनकरिकै प्रार्थना कऱ्याहुआ श्रीभगवान् तिस अर्जुनकूं भयकरिकै पीडितहुआ देखिकै तिस विश्वरूपका उपसंहारकरिकै उचित वचनोंकरिकै तिस अर्जुनकूं आश्वासन करताहुआ कहै है–

श्रीभगवानुवाच।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

(पदच्छेदः) मया। प्रसन्नेन। तव। अर्जुन। इदम्। रूपम्। परम्। दर्शितम्। आत्मयोगात्। तेजोमयम्। विश्वम्। अनंतम्। आद्यम्। यत्। मे। त्वदन्येन। न। दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रसन्नतावाले मैं परमेश्वरनैं आपणे सामर्थ्यतैं तुम्हारे ताईं यह विश्वात्मक श्रेष्ठ रूप दिखायाहै कैसा है सो रूप तेजोमय है तथा सर्वविश्वरूप है तथा अनंत है तथा अनादि है जो रूप हमारा तुम्हारेतैं अन्यकिसीनैंभी नहीं पूर्व देख्या है ॥ ४७ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! तूं इस हमारे विश्वरूपकूं देखिकै भयकूं मत प्राप्त होउ कोई तुम्हरेकूं भयकी प्राप्ति करणेवासतै मैंनैं यह विश्वरूप दिखाया नहीं किंतु प्रसन्नतावाले मैं परमेश्वरनैं अर्थात् तैं अर्जुनविषयक अतिशय कृपावाले मैं परमेश्वरनैं तैं अर्जुनके ताईं यह आपणा विश्वरूपात्मक श्रेष्ठरूप आपणे सामर्थ्यतैं दिखायाहै सो केवल तुम्हारे ऊपरि कृपादृष्टि करिकैही दिखायाहै। तहां (परम्) इस विशेषणकरिकै ता विश्वरूपविषे कथन कऱ्या जो श्रेष्ठत्वरूप परत्व है तिसी परत्वकूंही अब स्पष्टकरिकै कथन करैं हैं। (तेजोमयमिति) हे अर्जुन ! कैसा है सो हमारा विश्वरूप–तेजोमय है अर्थात् कोटिसूर्यके प्रकाश समान है प्रकाश जिसका। पुनः कैसा है सो रूप–विश्व है अर्थात् सर्व विश्वरूप है। पुनः

कैसा है सो रूप–आदिअंततैं रहित है। ऐसा अपणा विश्वात्मकरूप मैं परमेश्वरनैं केवल तैं अत्यंत प्रियभक्त अर्जुनके ताईही दिखाया है। शंका–हे भगवन् ! यह विश्वात्मकरूप तैं परमेश्वरनैं प्रसन्न होइकै केवल मैं अर्जुनके ताईही दिखाया है यह आपका कहणा संभवता नहीं। काहेतैं धृतराष्ट्रके गृहविषे भीष्मादिकोंकूंभी यह विश्वरूप आपनै दिखाया था। तथा बाल्यअवस्थाविषे यशोदा माताकूंभी यह विश्वरूप आपनै दिखायाथा। तथा अक्रूरकूंभी यह विश्वरूप आपनै दिखायाथा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, हे अर्जुन ! तिन भीष्मादिकोंकूं जो हमनै विश्वरूप दिखायाथा सो इस विश्वरूपका एक अवांतररूपही था। यातैं सो रूप सर्वतैं उत्तम नहींथा। और यह जो विश्वात्मकरूप हमनैं तुम्हारेकूं दिखाया है सो सर्वतैं श्रेष्ठ है दूसरे किसीनैभी पूर्व यह रूप देख्या नहीं। इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं। (यन्मे इति) हे अर्जुन! जो यह हमारा विश्वात्मक रूप तुम्हारेतैं अन्य किसीनै भी पूर्व देख्या नहीं सो यह विश्वात्मक आपणा स्वरूप मैं परमेश्वरनैं कृपाकारिकै तैं अर्जुनके ताईं अबी दिखाया है ॥ ४७॥

हे अर्जुन! इस विश्वरूपका दर्शनरूप जो अत्यंत दुर्लभ हमारा प्रसाद है तिस हमारे प्रसादकूं प्राप्त होइकै तूं अर्जुन अब कृतार्थही हुआहै। इस अभिप्रायकारिकै श्रीभगवान् अब ता विश्वरूपकी दुर्लभताकूं कथन करैं हैं–

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः॥ एवं रूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥ ४८॥

(पदच्छेदः) न। वेदयज्ञाध्ययनैः। न। दानैः। न। च। क्रियाभिः। न। तपोभिः। उग्रैः। एवम्। रूपः। शक्यः। अहम्। नृलोके। द्रष्टुम्। त्वदन्येन। कुरुप्रवीर॥ ४८॥

(पदार्थः) हे कुरुवंशविषे अतिशूर वीर अर्जुन ! इस मनुष्यलोकविषे इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं भगवान् तुम्हारेतैं अन्यपुरुषनैं वेदोंके तथा यज्ञोंके अध्ययनकारिकै देखणेकूं नहीं शक्य हूं तथा दानोंकारिकै नहीं देखणेकूं शक्य हूं तथा कर्मोंकरिकै भी नहीं देखणेकूं शक्य हूं तथा उग्र तपोंकारिकै नहीं देखणेकूं शक्य हूं ॥ ४८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण इन च्यारिवेदोंका जो गुरुमुखतैं अक्षरोंका ग्रहणरूप अध्ययन है तथा पूर्वमीमांसा कल्पसूत्र इत्यादिकों करिकै वेदबोधित कर्मरूपयज्ञोंका जो अर्थविचाररूप अध्ययन है तिन वेदोंके अध्ययनकरिकै तथा यज्ञोंके अध्ययनकरिकै तथा तुलापुरुषदान, कन्यादान, गौ सुवर्ण अन्नदान इत्यादिक दानोंकरिकै तथा अग्निहोत्रादिक श्रौतस्मार्त्त कर्मोंकरिकै तथा कायइंद्रियोंके शोषक होणेतैं करणेविषे अत्यंत कठिन ऐसे जे कृच्छ्रचांद्रायणादिक तप हैं ऐसे तपोंकरिकै इस मनुष्यलोकविषे इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर तुम्हारेतैं अन्यपुरुषोंनै देखणेकूं अशक्य हूं अर्थात् मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं रहित पुरुष वेदोंके अध्ययनकरिकै तथा वेदप्रतिपादितकर्मोंके यथार्थ ज्ञानकरिकै तथा दानोंकरिकै तथा उग्रतपोंकरिकै मेरे इस विश्वरूपकूं देखिसकते नहीं। ऐसा अत्यंत दुर्लभ यह विश्वरूप हमनैं कृपाकरिकै तुम्हारेकूं दिखायाहै। तिस रूपके दर्शनतैं अबी तूं कृतार्थ हुआहै इति। तहां मूलश्लोकविषे (शक्य अहम्) इसवचनके स्थानविषे यद्यपि (शक्योऽहम्) इसप्रकारका वचनही करणेयोग्य था तथापि (शक्य अहम्) इस वचनविषे जो शक्य इस पदतैं उत्तर विसर्गका लोप है सो छांदस है। और, यद्यपि एक नकारके पठनतैंही अध्ययन दान क्रिया तप इन सर्वोंका निषेध होइसकै है तथापि अध्ययन दान क्रिया तप इन च्यारोंके साथि जो भिन्नभिन्न नकारका पठन कऱ्याहै सो तिस विश्वरूपके दर्शनविषे तिन अध्ययनादिकोंके निषेधकी दृढतावास्तै कथन कऱ्याहै। और (न च क्रियाभिः) इस वचनविषे स्थित जो चकार है सो चकार इहां नहीं कहेहुए दूसरे साधनोंकाभी समुच्चय करणेवास्तै है अर्थात् मैं परमेश्वरके अनुग्रहतैं विना दूसरे किसीभी साधनकरिकै यह हमारा विश्वरूप देख्या जाता नहीं ॥ ४८ ॥

हे अर्जुन ! तुम्हारे अनुग्रहवास्तै मैं परमेश्वरनैं प्रगट कऱ्या जो यह आपणा विश्वरूप है तिस हमारे विश्वरूपकरिकै जो कदाचित् तुम्हारेकूं उद्वेग प्राप्तहुआहै तौ मैं परमेश्वर इस आपणे विश्वरूपका अभी उपसंहार करताहूं तूं व्यथाकूं मत प्राप्तहोउ। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कथन करैं हैं–

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम्॥ व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

(पदच्छेदः) मा । ते । व्यथा । मा । च । विमूढभावः । दृष्ट्वा । रूपम् । घोरम् । ईदृक् । मम । इदम् । व्यपेतभीः । प्रीतमनाः । पुनः । त्वम् । तत् । एव । मे । रूपम् । इदम् । प्रपश्य ॥ ४९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके इसप्रकारके इस घोर रूपकूं देखिकै तैं अर्जुनकूं व्यथा मतहोवौ तथा विमूढभावभी मतहोवौ किंतु भयतैं रहित प्रसन्नमन हुआ तूं अर्जुन पुनः मैं परमेश्वरके तिस पूर्वले इस रूपकूं ही देखे ॥ ४९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! अनेक बाहु मुखादिकों करिकै युक्त होणेतैं अत्यंत भयानक जो यह हमारा विश्वरूप है तिस हमारे विश्वरूपकूं देखिकै स्थितहुआ जो तूं अर्जुन है तिस तुम्हारेकूं व्यथा मत प्राप्तहोवौ अर्थात् भयरूप निमित्ततैं उत्पन्न भई जा पीडा है सा पीडा मत प्राप्तहोवौ । तथा मेरे इस विश्वरूपके दर्शन हुएभी जो तुम्हारेकूं विमूढभाव प्राप्त हुआहै अर्थात् व्याकुलचित्तपणा तथा अपरितोष प्राप्त भयाहै सो विमूढभावभी तुम्हारेकूं मत प्राप्तहोवौ किंतु भयतैं रहित होइकै तथा प्रसन्न मन होइकै तूं अर्जुन पुनः तिसी हमारे चतुर्भुजरूपकूं देख । अर्थात् इस विश्वरूपतैं पूर्व तूं अर्जुन जिस हमारे चतुर्भुज वासुदेव रूपकूं सर्वदा देखताथा तिसी हमारे चतुर्भुजरूपकूं तू अबी भयतैं रहित होइकै तथा संतोषयुक्त होइकै देख । इहां भयतैं रहितपणा तथा संतोष यह दोनों श्रीभगवान्नैं (प्रपश्य) इस वचनविषे स्थित प्र इस शब्दकरिकै कथन करेहैं ॥ ४९ ॥

अब संजय धृतराष्ट्रके प्रति कथन करैहै—

संजय उवाच ।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ॥ आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

(पदच्छेदः) इति । अर्जुनम् । वासुदेवः । तथा । उक्त्वा । स्वकम् । रूपम् । दर्शयामास । भूयः । आश्वासयामास । च । भीतम् । एनम् । भूत्वा । पुनः । सौम्यवपुः । महात्मा ॥ ५० ॥

(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र ! सो कृष्णभगवान् अर्जुनके प्रति इसप्रकारका वचन कहिकै तिसीप्रकारका आपणा चतुर्भुजरूप पुनः दिखावताभया तथा सो परम-

कृपालु भगवान् पुनः तिस सौम्यशरीरवाला होईके भययुक्त ईस अर्जुनकूं आश्वासन करताभया ॥ ५० ॥

भा० टी०-हे धृतराष्ट्र ! सो वासुदेव कृष्णभगवान् ता अर्जुनके प्रति यह पूर्वउक्त वचन कहिके ता विश्वरूप धारणतैं पूर्व जिसप्रकारके रूपवाला था तिसीप्रकार आपणा रूप ता अर्जुनके प्रति पुनः दिखावता भया । अर्थात् मस्तक ऊपरि किरीटकूं धारण करणेहारा तथा कानोंविषे मकराकृति कुंडलोंकूं धारण करणेहारा तथा च्यारों भुजावोंविषे शंख, चक्र, गदा, पद्म इन च्यारोंकूं धारण करणेहारा तथा श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, पीतांबर इत्यादिकोंकरिकै शोभायमान इसप्रकारके आपणे पूर्वले रूपकूं तिस अर्जुनके प्रति पुनः दिखावता भया । तथा सो महात्मा कृष्णभगवान् अर्थात् परमकारुणिक तथा सर्वका ईश्वर तथा सर्वज्ञ इत्यादिक कल्याणोंका आकाररूप श्रीकृष्णभगवान् पुनः सौम्यवपु होइकै अर्थात् परम अनुग्रहरूप शरीरवाला होइकै पूर्व विश्वरूपके दर्शनतैं भयकूं प्राप्तहुए अर्जुनके प्रति धैर्ययुक्त वचनोंकरिकै आश्वासन करता भया ॥ ५० ॥

तहां श्रीकृष्णभगवान्के तिस पूर्वले चतुर्भुज स्वरूपके दर्शनतैं अनंतर सो अर्जुन भयतैं रहित होइकै श्रीकृष्णभगवान्के प्रति याप्रकारका वचन कहता भया—

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ॥
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

(पदच्छेदः) दृष्ट्वा । इदम् । मानुषम् । रूपम् । तव । सौम्यम् । जनार्दन । इदानीम् । अस्मि । संवृत्तः । सचेताः । प्रकृतिम् । गतः ॥ ५१ ॥

(पदार्थः) हे जनार्दन ! तुम्हारे ईस मानुष सौम्य रूपकूं देखिकै अबी मैं अर्जुन अव्याकुलचित्त हुवा हूं तथा स्वस्थताकूं प्राप्तहुआहूं ॥ ५१ ॥

भा०टी०-हे जनार्दन ! तुम्हारे इस सौम्य मानुषरूपकूं देखिकै मैं अर्जुन अबी सचेता हुआहूं अर्थात् पूर्व विश्वरूपके दर्शनजन्य भयकरिकै करेहुए व्यामोहके अभाव करिकै अबी मैं चित्तकी व्याकुलतातैं रहित हुआहूं । तथा मैं अर्जुन अबी प्रकृतिकूं प्राप्त हुआहूं अर्थात् तिस भयजन्य व्यथातैं रहित होणेतैं स्वस्थताकूं प्राप्त हुआहूं ॥ ५१ ॥

तहां श्रीभगवान्नैं अर्जुनऊपरि कृपा जो विश्वरूपका दर्शनरूप अनुग्रह है ता अनुग्रहकी दुर्लभताकूं श्रीभगवान् अब च्यारि श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं—

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

(पदच्छेदः) सुदुर्दर्शम् । इदम् । रूपम् । दृष्टवानसि । यत् । मम । देवाः । अपि । अस्य । रूपस्य । नित्यम् । दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके जिस विश्वरूपकूं तूं अबी देखताभयाहै यह हमारा विश्वरूप अत्यंत देखणेकूं अशक्य है जिसकारणतैं देवता भी नित्यही इस विश्वरूपके दर्शनकी इच्छा करैं हैं ॥ ५२ ॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरके जिस विश्वरूपकूं तूं अबी देखताभया है सो यह हमारा विश्वरूप अत्यंत देखणेकूं अशक्य है । जिस कारणतैं इंद्रादिक देवताभी सर्वदा इस हमारे विश्वरूपके दर्शनकी इच्छाही करते रहते हैं परंतु जैसे तूं अर्जुन इस हमारे विश्वरूपकूं देखता भया है तैसे ते इंद्रादिक देवता पूर्वभी इस हमारे विश्वरूपकूं नहीं देखते भये हैं । और आगेभी नहीं देखैंगे ॥ ५२ ॥

हे भगवन् ! ते इंद्रादिक देवता इस आपके विश्वरूपकूं किस कारणतैं पूर्व नहीं देखते भये हैं तथा आगे नहीं देखैंगे ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, मैं परमेश्वरकी अनन्यभक्तितैं रहित होणेतैं ते देवता इस हमारे विश्वरूपकूं पूर्व नहीं देखते भयेहैं तथा आगे नहीं देखैंगे । इसप्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ॥
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

(पदच्छेदः) न । अहम् । वेदैः । न । तपसा । न । दानेन । न । च । इज्यया । शक्यः । एवंविधः । द्रष्टुम् । दृष्टवानसि । माम् । यथा ॥ ५३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं जिसप्रकारतैं मैं विश्वरूपकूं देखताभयाहै इस-प्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर वेदोंके अध्ययनकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्यहूं तथा तपकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्यहूं तथा दानकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्यहूं तथा अग्निहोत्रादिक कर्मकरिकैभी देखणेकूं नहीं शक्य हूं ॥ ५३ ॥

भा० टी०—मैं विश्वरूप परमेश्वरकूं जिसप्रकारतैं तू अर्जुन अबी देखताभया है इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर ऋगादिक च्यारि वेदोंके अध्ययन करिकैभी देखणेकूं शक्य नहीं हूं। तथा कृच्छ्रचांद्रायणादिक तप करिकैभी मैं देखणेकूं शक्य नहीं हूं। तथा तुलापुरुष, कन्या, गौ, सुवर्ण, अन्न इत्यादिक पदार्थोंके दानकरिकैभी मैं देखणेकूं शक्य नहीं हूं। तथा अग्निहोत्रादिक श्रौतस्मार्त कर्मोंकरिकैभी मैं देखणेकूं शक्य नहीं हूं। तहां पूर्व (न वेदयज्ञाध्ययनैः) इस श्लोकविषे जो अर्थ कथन कऱ्या था सोईही अर्थ (नाहं वेदैर्न तपसा) इस श्लोकविषे जो अबी पुनः कथन कऱ्याहै सो तिस विश्वरूपके दर्शनकी अत्यंत दुर्लभताके बोधन करणेवासतै कथन कऱ्या है। यातैं इस श्लोकविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ ५३ ॥

हे भगवन्! इसप्रकारके विश्वरूपवाला तूं जबी वेदोंके अध्ययनकरिकै तथा तपकरिकै तथा दानकरिकै तथा अग्निहोत्रादिक कर्मोंकरिकै देखणेकूं अशक्य है तबी दूसरे किस उपायकरिकै तूं देखणेकूं शक्य है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता विश्वरूपके दर्शनका उपाय कथन करैं हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ॥
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

(पदच्छेदः) भक्त्या। तु। अनन्यया। शक्यः। अहम्। एवंविधः। अर्जुन। ज्ञातुम्। द्रष्टुम्। च। तत्त्वेन। प्रवेष्टुम्। च। परंतप ॥ ५४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! हे परंतप! इसप्रकारके विश्वरूपवाला मैं परमेश्वर अनन्य भक्तिकरिकै ही जानणेकूं शक्यहूं तथा वास्तवरूपकरिकै साक्षात्कार करणेकूं शक्य हूं तथा अभेदरूपकरिकै प्राप्त होणेकूं शक्य हूं ॥ ५४ ॥

भा० टी०—हे परंतप! अर्थात् हे अज्ञानरूप शत्रुकूं नाशकरणेहारा अर्जुन! इसप्रकारके दिव्य विश्वरूपकूं धारण करणेहारा मैं परमेश्वर एक अनन्यभक्ति करिकै ही जानणेकूं शक्य हूं। अर्थात सर्व विषयवासनाका परित्यागकरिकै एक मैं परमेश्वरविषयक जा निरतिशय प्रीतिरूप अनन्यभक्ति है ता अनन्यभक्ति करिकैही यह अधिकारी जन शास्त्ररूप प्रमाणतैं मैं परमेश्वरकूं जानिसकै हैं अन्यकिसी उपायकरिकै जानिसकते नहीं। हे अर्जुन! तिस अनन्यभक्ति करिकै शास्त्रप्रमाणतैं मैं पर-

मेश्वर केवल जानणेकूंही शक्य नहीं हूं । किंतु तिस अनन्यभक्तिकरिके मैं परमेश्वर वेदांतवाक्योंके श्रवण मनन निदिध्यासनकी परिपाकताकरिकै आपणे वास्तवस्वरूपतैं साक्षात्कार करणेकूंभी शक्य हूं अर्थात् ता अनन्यभक्ति करिकै ये अधिकारी पुरुष श्रवण मननादिक साधनोंकरिकै मैं परमेश्वरकूं मैं ब्रह्मरूप हूं, याप्रकारतैं साक्षात्कारभी करैहैं । और तिस साक्षात्कारकी प्राप्तितैं अनंतर तिस साक्षात्कारकरिकै अविद्याके निवृत्त हुए मैं परमेश्वर तिन तत्त्ववेत्ता भक्तजनोंकूं आपणे वास्तवस्वरूपतैं प्राप्त होणेकूंभी शक्य हूं अर्थात् तिन तत्त्ववेत्ता भक्तजनोंकूं मैं परमेश्वर आपणा आत्मारूपकरिकै प्राप्त होवूंहूं । इहां (हे परंतप) इस संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनकूं अज्ञानरूप शत्रुकी निवृत्तिकरिकै आपणे अद्वितीय निर्गुणस्वरूपविषे अभेदरूपकरिकै प्रवेशकी योग्यता सूचन करी । और (शक्यः अहम्) इस वचनके स्थानविषे यद्यपि (शक्योऽहं) इस प्रकारका वचन चाहियेथा तथापि शक्य इस पदतैं उत्तर जो विसर्गका लोप कऱ्याहै सो पूर्वकी न्याईं छांदस है ॥ ५४ ॥

अब श्रीभगवान्नैं समग्र गीताशास्त्रका सारभूत अर्थ मुमुक्षुजनोंके अनुष्ठानवास्तै इकट्ठाकरिकै कथन करिये है-

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ॥
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) मत्कर्मकृत् । मत्परमः । मद्भक्तः । संगवर्जितः । निर्वैरः । सर्वभूतेषु । यः । सः । माम् । एति । पांडव ॥ ५५ ॥

(पदार्थः) हे पांडव ! जो पुरुष मत्कर्मकृत् है तथा मत्परम है तथा मेराभक्त है तथा संगतैं रहितहै तथा सर्वभूतोंविषे निर्वैर है सो पुरुषही मैं परमेश्वरकूं अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है ॥ ५५ ॥

भा०टी०-हे पांडव ! अर्थात् हे पांडुराजाके पुत्र अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष मत्कर्मकृत् है अर्थात् जो अधिकारी पुरुष मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतैंही वेदविहित अग्निहोत्रादिक श्रौतस्मार्त्तकर्मोंकूं करैहै । शंका-हे भगवन् ! स्वर्गादिक

फलोंकी कामनावोंके विद्यमान हुए इस अधिकारी पुरुषविषे सो मत्कर्मकृत्पणा कैसे संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (मत्परमः इति) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष मत्परम है अर्थात् मैं परमेश्वरही हूं प्राप्तरूपकरिकै निश्चित जिसकूं दूसरे स्वर्गादिक फल जिसकूं प्राप्तव्यरूपकरिकै निश्चत हैं नहीं तिस पुरुषका नाम मत्परम है । जिसकारणतैं सो अधिकारी पुरुष मत्कर्मकृत् है तथा मत्परम है तिसकारणतैं ही सो अधिकारी पुरुष मद्भक्त है। अर्थात् मैं परमेश्वरके प्राप्तिकी आशाकरिकै जो अधिकारी पुरुष सर्वप्रकारोंकारिकै मैं परमेश्वरके भजन-परायण है । शंका–हे भगवन् ! पुत्रादिक पदार्थोंविषे स्नेहके विद्यमान हुए तिस अधिकारी पुरुषविषे सो तुम्हारा भक्तपणाभी कैसे संभवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–(संगवर्जितः) जो अधिकारी पुरुष संगतैं रहित है अर्थात् पुत्र, स्त्री, धन, गृह इसतैं आदिलैके जितनेक बाह्य अनात्मपदार्थ हैं तिन सर्वपदार्थोंकी इच्छातैं रहित है । शंका–हे भगवन् ! शत्रुवोंविषे द्वेषके विद्यमान हुए तिस अधिकारी पुरुषविषे सो संगतैं रहितपणाभी कैसे संभवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं–(निर्वैरः सर्वभूतेषु इति) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष सर्व भूतोंविषे वैरतैं रहित है अर्थात् जे प्राणी आपणा अपकार करैं हैं ऐसे अपकारी प्राणियोंविषेभी जो पुरुष द्वेषतैं रहित है । हे अर्जुन ! इसप्रकार जो अधिकारी पुरुष मत्कर्मकृत् है तथा मत्परम है तथा मद्भक्त है तथा संगतैं रहित है तथा सर्वभूतोंविषे निर्वैर है सो अधिकारी पुरुषही मैं परमेश्वरकूं अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवै है । हे अर्जुन ! यह जो सर्व शास्त्रका सारभूत अर्थ हमनैं तुम्हारे प्रति उपदेश कर्‍याहै सो यह अर्थही तुम्हारेकूं जानणे योग्य है । इस अर्थके जानणेतैं परे दूसरा कोई तुम्हारेकूं कर्त्तव्य नहीं है इति । और किसी टीकाविषे तौ (मत्परमः) इस पदका यह अर्थ कथन कर्‍या है। (मीयते पदार्थोऽनया इति मा) अर्थ यह जिसकरिकै पदार्थ निश्चय कर्‍या जावै है ताका नाम मा है अर्थात् नेत्रादिक इंद्रिय-जन्य अंतःकरणकी वृत्तिकरिकैही सर्व पदार्थ निश्चय करेजावैं हैं यातैं ता इंद्रिय-जन्य वृत्तिका नाम मा है । तहां मत्परा है क्या सर्वत्र मैं परमेश्वरके स्वरूप ग्रहणपरा है सा इंद्रियजन्यवृत्तिरूप मा जिस पुरुषकी ताका नाम मत्परम है इति। तहां (मत्कर्मकृत् मत्परमः) इन दोनों पदोंकरिकै तौ संपूर्ण कर्मयोग तथा संपूर्ण ध्यानयोग कथन कर्‍या । जो कर्मयोग तथा ध्यानयोग त्वंपदार्थका शोधक है ।

और (मद्भक्तः) इस पदकरिकै तौ समग्र उपासनाकांडके अर्थका संग्रह कऱ्या। और (संगवर्जितः) इस पदकरिकै तौ सर्वसंगका परित्याग करिकै एकांतदेशविषे स्थित होइकै यह अधिकारी पुरुष भगवत्ध्याननिष्ठ होवै यह अर्थ कथन कऱ्या। और (निर्वैरः सर्वभूतेषु) इस वचनकरिकै तौ यह अर्थ कथन कऱ्या—यह अधिकारी पुरुष इस सर्व विश्वकूं भगवत्रूप करिकै देखै जो कदाचित् यह अधिकारी पुरुष इस सर्वविश्वकूं भगवत्रूप करिकै नहीं देखैगा तौ भेदबुद्धिवाले इस अधिकारीपुरुषविषे सा निर्वैरताही संभवैगी नहीं। इसप्रकारतैं यह लोक सर्व गीताशास्त्रके सारभूत अर्थकूं कथन करैं हैं । और (हे पांडव) इस संबोधन करिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनका विशुद्धवंशविषे जन्म कथन कऱ्या ताकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या। तूं अर्जुन इस सर्व शास्त्रके सारभूत अर्थकूं जानणेविषे समर्थ है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशाऽध्यायप्रारंभः।

तहां पूर्व एकादश अध्यायके अंतविषे (मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥) इस श्लोकविषे श्रीभगवान्नैं च्यारिवार मत् यह शब्द कथन कऱ्याहै तिस मत्शब्दके अर्थविषे यह संशय होवैहै जो श्रीभगवान्नैं ता मत्शब्दकरिकै निराकार वस्तुका कथन कऱ्याहै अथवा साकार वस्तुका कथन कऱ्या है इति। तहां इसप्रकारके संशयकी उत्पत्तिविषे श्रीभगवान्के पूर्वउक्त वचनही कारण हैं। काहेतैं श्रीभगवान्नैं (मत्कर्मकृत्) इस श्लोकतैं पूर्व निराकार वस्तुकूं तथा साकार वस्तुकूं दोनोंकूं मत् इस शब्दकरिकै कथन कऱ्याहै। तहां (बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै तौ श्रीभगवान्नैं ता मत्शब्दकरिकै निराकार वस्तुकाही कथन कऱ्या है। और विश्वरूपके दर्शनतैं अनंतर (नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै तौ श्रीभगवान्नैं ता मत्शब्दकरिकै साकार वस्तुकाही कथन कऱ्या है। तहां श्रीभगवान्के तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंकी व्यवस्था

अधिकारी पुरुषके भेदकरिकैही करणी होवैगी। जो कदाचित् अधिकारी पुरुषके भेदकरिकै तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंकी व्यवस्था नहीं करिये तौ तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंका परस्पर विरोध प्राप्त होवैगा। इसप्रकार अधिकारी पुरुषके भेदकरिकै तिन दोनों प्रकारके उपदेशोंकी व्यवस्थाके प्राप्त हुए मैं मुमुक्षु अर्जुननैं क्या निराकार वस्तु चिन्तन करणेयोग्य है अथवा साकार वस्तु चिंतन करणेयोग्य है। इसप्रकार आपणे अधिकारके निश्चय करणेवासतै सगुणविद्या तथा निर्गुणविद्या इन दोनों विद्यावोंके विशेषता जानणेकी इच्छा करताहुआ अर्जुन श्रीभगवान्‌के प्रति प्रश्न करैहै—

अर्जुन उवाच।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते॥
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥ १॥

(पदच्छेदः) एवम्। सततयुक्ताः। ये। भक्ताः। त्वाम्। पर्युपासते। ये। च। अपि। अक्षरम्। अव्यक्तम्। तेषाम्। के। योगवित्तमाः॥ १॥

(पदार्थः) हे भगवन्! इसप्रकार निरंतर युक्तहुए तथा एकसाकारवस्तुके शरणहुए जे अधिकारी पुरुष तैं साकारपरमेश्वरकूं निरंतर चिंतन करैं हैं तथा जे विरक्तपुरुष अक्षर अव्यक्तरूप तैं निर्गुणब्रह्मकूंही निरंतर चिंतनकरैं हैं तिन दोनोंके मध्यविषे कौन पुरुष अतिशयकरिकै योगके जानणेहारे हैं॥ १॥

भा॰ टी॰—हे भगवन्! जे अधिकारी जन (मत्कर्मकृन्मत्परमः) इस पूर्वश्लोक उक्तप्रकारकरिकै सततयुक्त हैं अर्थात् जे पुरुष निरंतर भगवत् अर्पण कर्मादिकोंविषे सावधानताकरिकै प्रवृत्त हुएहैं, तथा जे अधिकारी पुरुष भक्त हैं अर्थात् जे पुरुष एक साकारवस्तुकेही शरणकूं प्राप्त हुएहैं। इसप्रकार सततयुक्त हुए तथा भक्तहुए जे अधिकारी पुरुष इसप्रकारके साकाररूपवाले तैं परमेश्वरकूं श्रद्धाभक्तिपूर्वक निरंतर चिंतन करैहैं। इतने कहणेकरिकै सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे भक्तजनोंका कथन कऱ्या। अब निर्गुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे भक्तोंका कथन करैहैं- (ये चाप्यक्षरमिति) हे भगवन्! जे अधिकारी पुरुष सर्वसंसारतैं विरक्तहुए तथा सर्वकर्मोंके त्यागवाले हुए अक्षररूप तथा अव्यक्तरूप तैं परमेश्वरकूं निरंतर

चिंतन करैंहैं । तहां (न क्षरति अश्नुते वा इत्यक्षरम् ।) अर्थ यह—जो वस्तु कदाचित्भी नाशकूं नहीं प्राप्त होवै ताका नाम अक्षर है । अथवा जो वस्तु आपणे सत्तास्फुरणरूप करिकै इस सर्वजगत्कूं व्याप्त करैहै ताका नाम अक्षर है ऐसा अक्षररूप निर्गुणब्रह्म है। इसी निर्गुणब्रह्मरूप अक्षरकूं बृहदारण्यक उपनिषद्विषे याज्ञवल्क्य [मुनिनैं गार्गीके प्रति स्थूलसूक्ष्मादिक सर्व उपाधियोंतैं रहित कथन कऱ्याहै]। तहां श्रुति—(एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदंत्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्) अर्थ यह—हे गार्गि ! इसी निर्गुणब्रह्मरूप अक्षरकूं ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण स्थूलभावतैं रहित कहैं हैं, तथा अणुभावतैं रहित कहैं हैं, तथा ह्रस्वभावतैं रहित कहैं हैं, तथा दीर्घभावतैं रहित कहैं हैं इति । जिसकारणतैं सो निर्गुणब्रह्मरूप अक्षर सर्व उपाधियोंतैं रहित है इस कारणतैंही सो निर्गुणब्रह्मरूप अक्षर अव्यक्त है अर्थात् नेत्रादिक सर्व कारणोंका अविषय है । ऐसे अक्षररूप तथा अव्यक्तरूप तैं निराकार निर्गुण परमेश्वरकूं जे अधिकारी पुरुष श्रद्धाभक्तिपूर्वक निरंतर चिंतन करैंहैं तिन दोनों प्रकारके अधिकारी जनोंके मध्यविषे कौन अधिकारी जन योगवित्तम हैं अर्थात् कौन अधिकारी जन अतिशयकरिकै योगके जानणेहारे हैं । अथवा कौन अधिकारीजन अतिशयकरिकै समाधिरूप योगकूं प्राप्तहुएहैं । तहां समाधिरूप योगकूं जे पुरुष जानैंहैं अथवा प्राप्त होवैंहैं तिन्होंका नाम योगवित् है तिन योगवित् पुरुषोंके मध्यविषे जे अत्यंत श्रेष्ठ होवैं तिन्होंका नाम योगवित्तम है । अर्थात् इसप्रकारके योगवित् तौ ते दोनोंप्रकारके अधिकारी जन हैं तिन दोनोंप्रकारके अधिकारी जनोंके मध्यविषे कौन अधिकारी जन अत्यंत श्रेष्ठ योगवित् हैं अर्थात् किन अधिकारी पुरुषोंका ज्ञान मैं अर्जुननैं अनुसरण करणेयोग्य है । तात्पर्य यह—सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंका ज्ञान हमारेकूं अनुसरण करणेयोग्य है अथवा निर्गुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंका ज्ञान हमारेकूं अनुसरण करणेयोग्य है ॥ १ ॥

तहां सर्वज्ञ श्रीकृष्णभगवान् तिस अर्जुनका सगुणविद्याविषेही अधिकारकूं देखताहुआ तिस अर्जुनके प्रति सा सगुणविद्याही विधान करैगा । तथा यथा अधिकारके अनुसार ता विद्याके न्यूनअधिकतायुक्त साधनोंकाभी विधान करैगा । इसकारणतैं प्रथम साकारब्रह्मविद्याविषे ता अर्जुनकी रुचि करावणेवासतै ता साकारब्रह्मविद्याकी स्तुति करताहुआ सा प्रथम साकारब्रह्मविद्या ही श्रेष्ठ है इसप्रकारके उत्तरकूं कथन करैंहैं—

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ॥
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) मयि । आवेश्य । मनः । ये । माम् । नित्ययुक्ताः । उपासते । श्रद्धया । परया । उपेताः । ते । मे । युक्ततमाः । मताः ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे अधिकारी पुरुष आपणे मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषे एकाग्रकरिकै नित्ययुक्तहुए तथा सात्विक श्रद्धाकारिकै युक्तहुए मैं साकारब्रह्मकूं चिंतनकरैं हैं ते अधिकारीजन मैं परमेश्वरकूं युक्ततम अभिमत हैं ॥ २ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! मैं भगवान् वासुदेव परमेश्वर सगुणब्रह्मविषे आपणे मनकूं आवेश करिकै अर्थात् अनन्यशरणता करिकै तथा निरतिशयप्रियताकारिकै आपणे मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषे प्रवेश करिकै, तात्पर्य यह–जैसे हिंगलके रंगके साथि मिलिकै लाख तन्मय होइजावैहै तैसे आपणे मनकूं मैं परमेश्वरमय करिकै जे अधिकारी पुरुष नित्ययुक्त हुए अर्थात् निरंतर मैं परमेश्वरके चिंतनविषयक उद्यमवाले हुए, तथा जे अधिकारी पुरुष परमश्रद्धाकारिकै युक्तहुए अर्थात् औरसंभव कन्याहुआ यह सगुणपरमेश्वर अवश्यकारिकै हमारा निस्तार करैगा या प्रकारकी आस्तिक्य बुद्धिरूप सात्विक श्रद्धाकारिकै युक्तहुए सर्व योगेश्वरोंकाभी ईश्वररूप तथा सर्वज्ञ तथा समग्रकल्याणगुणोंका स्थानरूप ऐसे साकारब्रह्मरूप मैं परमेश्वरकूं सर्वदा चिंतन करैं हैं, ते अधिकारी जनही मैं परमेश्वरकूं युक्तत-मरूप करिकै अभिमत हैं । अर्थात् ते अधिकारी पुरुष सर्वकालविषे मैं परमेश्वर-विषे आसक्तचित्तवाले होणेतैं सर्वविषयोंतैं विमुख होइकै मैं परमेश्वरका चिंतन करतेहुए संपूर्ण दिनरात्रियोंकूं व्यतीत करैंहैं । यातैं ते सगुणब्रह्मके चिंतन कर-णेहारे अधिकारी जनही मैं परमेश्वरकूं युक्ततमरूप करिकै अभिप्रेत हैं । अर्थात् मैं परमेश्वर तिन अधिकारीजनोंकूं सर्वयोगीजनोंतैं श्रेष्ठ मानताहूं ॥ २ ॥

हे भगवन् ! निर्गुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंकी अपेक्षाकरिकै तिन सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंविषे कौन अतिशयता है ? जिस अतिशयता करिकै ते सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषही आपकूं युक्ततमरूपकरिकै अभिमत हैं । ऐसी अर्जुनकी

जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस अतिशयताकूं कथन करते हुए प्रथम तिस अतिशयताके निरूपक निर्गुणब्रह्मके वेत्तावोंकी दो श्लोकोंकरिकै स्तुतिकूं कथन करैं हैं-

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवंति मामेव सर्वभूतहितेरताः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) ये । तु । अक्षरम् । अनिर्देश्यम् । अव्यक्तम् । पर्युपासते । सर्वत्रगम् । अचिंत्यम् । च । कूटस्थम् । अचलम् । ध्रुवम् । सन्नियम्य । इंद्रियग्रामम् । सर्वत्र । समबुद्धयः । ते । प्राप्नुवंति । माम् । एव । सर्वभूतहितेरताः ॥ ३ ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जे अधिकारीजन इंद्रियोंके समूहकूं निरुद्धकरिकै सर्वत्र समबुद्धिवालेहुए तथा सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हुए अनिर्देश्य अव्यक्त सर्वव्यापक अचित्य तथा कूटस्थ अचल ध्रुव ऐसे निर्गुणब्रह्मरूप अक्षरकूं निरंतर चिंतन करैं हैं ते अधिकारीपुरुषभी मैं निर्गुणब्रह्मकूं ही प्राप्तहोवैं हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जे अधिकारी जन अक्षररूप मैं निर्गुणब्रह्मकूं निरंतर चिंतन करैंहैं ते अधिकारी पुरुषभी मैं अक्षररूप निर्गुणब्रह्मकूंही प्राप्त होवैं हैं । जो अक्षररूप निर्गुणब्रह्म बृहदारण्यक उपनिषद्विषे याज्ञवल्क्यमुनिनैं गार्गीके प्रति (एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदंत्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम् ।) इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन कऱ्या है । इहां (ये तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्व कथन करे हुए सगुणब्रह्मके उपासकोंतैं इन निर्गुणब्रह्मके उपासकोंविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है। अब तिस अक्षरविषे निर्गुणब्रह्मरूपताके सिद्ध करणेवासतै ता अक्षरके सप्त विशेषणोंकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं । हे अर्जुन ! सो निर्विशेष ब्रह्मरूप अक्षर कैसा है-अनिर्देश्य है अर्थात् सो अक्षरब्रह्म किसी शब्दकरिकै कथन करणेकूं अशक्य है । शंका-हे भगवन् ! सो अक्षरब्रह्म शब्दकरिकै क्यों नहीं कथन कऱ्या जावै है ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् ता अनिर्देश्यपणेविषे हेतु कहैं हैं (अव्यक्तमिति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो अक्षर अव्यक्त है अर्थात् शब्दकी प्रवृत्तिके निमि-

त्तभूत जे जाति, गुण, क्रिया, संबंध यह च्यारि धर्म हैं तिन च्यारोंतैं सो अक्षर रहितहै तिस कारणतैं सो अक्षरब्रह्म किसीभी शब्दकरिकै कथन कऱ्या जाता नहीं। तात्पर्य यह—लोकविषे जिसजिस अर्थविषे जो जो शब्द प्रवृत्त होवैहै सो सो शब्द तिस तिस अर्थविषे जातिकूं अथवा गुणकूं अथवा क्रियाकूं अथवा संबंधकूं द्वारभूत करिकैही प्रवृत्त होवैहै। जैसे ब्राह्मण इत्यादिक शब्द ब्राह्मणत्वादिक जातिकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। और शुक्ल नील इत्यादिक शब्द शुक्लनीलादिक गुणोंकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। और पाचक पाठक इत्यादिक शब्द तौ पाकादिरूप क्रियाकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। और पिता पुत्र इत्यादिक शब्द तौ जन्यजनकभाव आदिक संबंधकूं लैकेही स्वस्व अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। इस प्रकारतैं सर्वशब्द जातिगुणादिक निमित्तकूं लैकेही आपणे आपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। और निर्विशेष अक्षरब्रह्मविषे ते जातिगुणादिक विशेषधर्म हैं नहीं यातैं ता अक्षरब्रह्मविषे किसीभी शब्दकी प्रवृत्ति होवै नहीं इति। शंका—हे भगवन् ! सो अक्षरब्रह्म तिन जातिगुणादिक धर्मोंतैं रहित किस हेतुतैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन जातिआदिकोंतैं रहितपणेविषे हेतु कहैंहैं (सर्वत्रगमिति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो अक्षरब्रह्म सर्वत्रग है अर्थात् सर्वत्र व्यापक है तथा सर्वका कारण है तिसकारणतैं सो अक्षरब्रह्म तिन जातिगुणादिकोंतैं रहित है। जो पदार्थ परिच्छिन्न होवैहै तथा कार्य होवै है सो पदार्थही तिन जातिगुणादिक धर्मवाला होवैहै। यद्यपि नैयायिक आकाश, काल, दिशा इन तीनोंविषे अकार्यपणा तथा व्यापकपणा अंगीकार करिकैभी तिन तीनोंविषे जातिगुणादिक अंगीकार करैं हैं यातैं परिच्छिन्नकार्यविषेही ते जातिगुणादिक रहैं हैं यह नियम संभवता नहीं। तथापि वेदांतसिद्धांतविषे तिन आकाशादिकोंविषेभी कार्यपणा तथा परिच्छिन्नपणाही अंगीकार है। तहां (आत्मन आकाशः संभूतः।) अर्थ यह—आत्मातैं आकाश उत्पन्न होताभया इत्यादिक श्रुतियोंनैं तिन आकाशादिकोंकी आत्मातैं उत्पत्ति कथन करी है। (और यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।) इत्यादिक श्रुतियोंनैं व्यापक आत्मातैं भिन्न आकाशादिक सर्वप्रपंचकूं परिच्छिन्न कह्या है। यातैं आकाशादिकोंविषे ता नियमका भंग होवै नहीं और जिसकारणतैं सो अक्षरब्रह्म सर्वत्र व्यापक है तिस कारणतैं सो अक्षरब्रह्म अचिंत्य है अर्थात सो अक्षरब्रह्म जैसे शब्दके प्रवृत्तिका

विषय नहीं है तैसे मनके प्रवृत्तिकाभी विषय नहीं है। शब्दके प्रवृत्तिकी न्याईं मनकी प्रवृत्तिभी परिच्छिन्नवस्तुकूंही विषय करै है। ता अक्षरब्रह्मविषे परिच्छिन्नपणा है नहीं यातें ता अक्षरब्रह्मविषे मनके प्रवृत्तिकी भी विषयता संभवै नहीं। तहां श्रुति-(यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह इति।) अर्थ यह-मन सहित वाणी जिस अक्षरब्रह्मकूं न प्राप्तहोइकै जिस अक्षरब्रह्मतैं निवर्त्त होइजावैं हैं इति। शंका-हे भगवन् ! सो अक्षरब्रह्म जो कदाचित् वाणीका तथा मनका नहीं विषय होवै तौ श्रुतिवचन तथा व्याससूत्र ता ब्रह्मविषे वाणीकी विषयता तथा मनकी विषयता किसवासतै कथन करते हैं। तहां श्रुति-(तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीति। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः इति। मनसैवानुद्रष्टव्यमिति।) अर्थ यह-हे शाकल्य ! केवल उपनिषद्प्रमाणकरिकै जानणे योग्य जो परब्रह्म है तिस परब्रह्मका स्वरूप मैं याज्ञवल्क्य तुम्हारेसैं पूछताहूं। और सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पुरुषोंनैं विषयवासनातैं रहित एकाग्र सूक्ष्मबुद्धिकरिकै ही यह आत्मादेव साक्षात्कार करीताहै। और यह आत्मादेव केवल शुद्धमनकरिकैही देख्या जावैहै इति। तहां व्याससूत्र-(शास्त्रयोनित्वात्) अर्थ यह-उपनिषद्रूप शास्त्र है योनि क्या प्रमाण जिसविषे ऐसा परब्रह्म है। इत्यादिक श्रुतिसूत्रवचन तिस परब्रह्मविषेभी उपनिषद्रूप वाणीकी विषयता तथा शुद्धमनकी विषयता कथन करैंहैं। ब्रह्मकूं अविषय मानणेविषे ते सर्व असंगत होवैंगे। समाधान-हे अर्जुन ! महावाक्यरूप शब्दप्रमाणतैं उत्पन्नभई जा बुद्धिकी अंत्यवृत्ति है ता बुद्धिकी वृत्तिविषे अविद्याकल्पित संबंधकरिकै परमानंदबोधरूप शुद्धवस्तुके प्रतिबिंबित हुएही कल्पितरूप अविद्याकी तथा ता अविद्याके कार्यकी निवृत्ति होवैहै। याकारणतैंही उपचारमात्रतैं तिस परब्रह्मविषे वाणीकी विषयता तथा बुद्धिकी विषयता कथन करी है अर्थात् महावाक्यजन्य शुद्धबुद्धिकी वृत्ति चिदाभासकरिकै युक्तहुई ब्रह्माश्रित तथा ब्रह्मविषयक अविद्याकी निवृत्तिमात्र करै है। जिसकूं शास्त्रविषे वृत्तिव्याप्ति कहैं हैं तिसकूं अंगीकार करिकैही श्रुतिसूत्रवचनोंनैं ता ब्रह्मविषे वाणीकी विषयता तथा मनकी विषयता कथन करी है। जैसे देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे फलव्याप्तिरूप मुख्यविषयता है तैसे ब्रह्मविषे कोई मुख्यविषयता कथन करी नहीं इस सर्व अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् तिस अक्षरविषे कल्पित अविद्याके संबंधका उपपादन करणेवासतै कहैं हैं-(कूटस्थम् इति) तहां जो वस्तु वास्तवतैं

मिथ्याभूत हुआभी सत्यरूपकरिकै प्रतीत होवैहै ता वस्तुकूं लोकविषे कूट इस नामकरिकै कथन करैहैं। जैसे इसलोकविषे जो साक्षीपुरुष वास्तवतैं मिथ्यावादी हुआभी सत्यवादी पुरुषकी न्याईं प्रतीत होवैहै ता साक्षीकूं कूटसाक्षी कहैं हैं तैसे मायाअविद्यारूप यह अज्ञानभी आपणे कार्यप्रपंचसहित वास्तवतैं मिथ्याभूत हुआभी विचारहीन पुरुषोंकूं सत्यरूपकरिकै प्रतीत होवैहै। यातैं यह कार्यप्रपंचसहित अज्ञानभी कूट इसनामकरिकै कह्याजावैहै। ता कार्यप्रपंचसहित अज्ञाननाम कूटविषे जो वस्तु आध्यासिक संबंधकरिकै अधिष्ठानरूपतैं स्थित होवैहै ता वस्तुका नाम कूटस्थ है अर्थात् कार्यप्रपंचसहित अज्ञानका अधिष्ठानरूप जो परब्रह्म है ताका नाम कूटस्थ है। इतने कहणेकरिकै पूर्वउक्त सर्व अनुपपत्तियोंका परिहार कऱ्या। इस कारणतैंही सर्व विकारोंकूं अविद्याकरिकै कल्पित होणेतैं ता अविद्याका अधिष्ठानरूप साक्षीचैतन्य निर्विकार है, इस अर्थकूं अब श्रीभगवान कथन करैहैं (अचलमिति) तहां विकारका नाम चलन है ता चलनरूप विकारतैं जो रहित होवै ताका नाम अचल है। अचल होणेतैंही सो अक्षरब्रह्म ध्रुव है अर्थात परिणामीभावतैं रहित नित्य है। इसप्रकारके अक्षर शुद्ध ब्रह्मरूप मैं परमेश्वरकूं जे अधिकारी जन चिंतन करैहैं अर्थात् ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवण करिकै प्रमाणगत असंभावनाकी निवृत्ति करिकै तथा मननकरिकै प्रमेयगत असंभावनाकी निवृत्तिकरिकै तिसतैं अनंतर विपरीतभावनाकी निवृत्ति करणेवासतै जे अधिकारी पुरुष ध्यानकूं करैहैं अर्थात् अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंका तिरस्कार करिकै तैलधाराकी न्याईं विच्छेदतैं रहित सजातीयवृत्तियोंका प्रवाहरूप निदिध्यासनभूत ध्यानकरिकै ते अधिकारी पुरुष मैं निर्गुणब्रह्मकूं विषय करै हैं। शंका—हे भगवन् ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंका आपणे आपणे शब्दादिक विषयोंके साथि संबंधके विद्यमान हुए सो विजातीयवृत्तियोंका तिरस्कार कैसे होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं (सन्नियम्येंद्रियग्राममिति) हे अर्जुन ! जे अधिकारी जन आपणे श्रोत्रादिक इंद्रियोंके समूहकूं आपणे आपणे शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्त करिकै मैं निर्गुणब्रह्मका ध्यान करै हैं। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं शमदमादिक षट्संपत्ति कथन करी। शंका—हे भगवन् ! विषयभोगकी वासनाके विद्यमान हुए तिन शब्दादिक विषयोंतैं श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी निवृत्ति कैसे संभवैगी ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (सर्वत्र समबुद्धयः

इति) हे अर्जुन ! सर्वविषयोंविषे सम है क्या तुल्य है अर्थात् हर्षविषाद दोनोंतैं तथा राग द्वेष दोनोंतैं रहित है बुद्धि जिन्होंकी तिन्होंका नाम सर्वत्रसमबुद्धि है। तात्पर्य यह—सम्यक्ज्ञानकरिकै जिन पुरुषोंका हर्षविषाद आदिकोंका कारणरूप अज्ञान निवृत्त होइगयाहै तथा विषयोंविषे दोषदर्शनके अभ्यासकरिकै जिन पुरुषोंकी सर्व विषयइच्छा निवृत्त होइगई है, ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंका नाम सर्वत्रसमबुद्धि है। ऐसे सर्वत्रसमबुद्धिवाले हुए जे अधिकारी पुरुष मैं निर्गुणब्रह्मका चिंतन करैंहैं। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं वशीकारनामा वैराग्य कथन कऱ्या। इसीकारणतैंही सर्वत्र आत्मदृष्टिकरिकै हिंसाके कारणरूप द्वेषतैं रहित होणेतैं जे अधिकारी पुरुष सर्वभूतोंके हितविषे प्रीतिवाले हैं। अर्थात् (अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा) इसमंत्रकरिकै सर्वभूतप्राणियोंके ताईं दईहुईहै अभयरूप दक्षिणा जिन्होंनैं ऐसे जे परमहंस संन्यासी हैं। तहां संन्यासियोंनैं सर्वभूतप्राणियोंके ताईं अभयदानदेणा यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति—(अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा संन्यासमाचरेत्।) अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै सर्व स्थावरजंगमरूप प्राणियोंके ताईं अभयदान देकरिकै संन्यास आश्रमकूं ग्रहण करै। इसप्रकारके सर्वसाधनोंकरिकै संपन्न हुए ते सर्वतैं विरक्त अधिकारी जन आप ब्रह्मरूप हुएभी सर्वसाधनोंका फलभूत तथा संशयतैं रहित ऐसे आत्मसाक्षात्कार करिकै मैं अक्षर ब्रह्मरूपकूंही प्राप्त होवैंहैं अर्थात् ते तत्त्ववेत्ता पुरुष तिसतत्त्वसाक्षात्कारतैं पूर्वभी मैं निर्गुणब्रह्मरूप हुएही तिस तत्त्वसाक्षात्कार करिकै अविद्याके निवृत्तहुए मैं निर्गुणब्रह्मरूप हुएही स्थित होवैंहैं। तहां श्रुति—(ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति।) अर्थ यह—यह अधिकारी जन ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मरूपकूं प्राप्त होवैहै। और मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारतैं आपणा आत्मारूपकरिकै ब्रह्मकूं जानणेहारा पुरुष ब्रह्मरूपही होवैहै इति। तहां ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मरूपही है यह वार्त्ता (ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आपही इस गीताशास्त्रविषे कथन करी है ॥ ३ ॥ ४ ॥

अब इस निर्गुणब्रह्मके चिंतनकरणेहारे अधिकारी जनोंतैं पूर्व कथनकरे हुए सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे अधिकारी जनोंकी अतिशयताकूं दिखावते हुए श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहैंहैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ॥
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

(पदच्छेदः) क्लेशः । अधिकतरः । तेषाम् । अव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता । हि । गतिः । दुःखम् । देहवद्भिः । अवाप्यते ॥ ५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! निर्गुणब्रह्मविषे आसक्त है चित्त जिन्होंका तिनपुरुषोंकूं अतिअधिक क्लेश होवै जिसकारणतैं देहाभिमानी पुरुषोंनैं सो निर्गुण ब्रह्म बहुतदुःखकरिकै पांवताहै ॥ ५ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे जे अधिकारी पुरुष पूर्व कथन करेथे तिन अधिकारी जनोंकूंभी सर्व विषयोंतैं आपणे मनकूं निवृत्त करिकै सगुणब्रह्मविषे ता मनके जोडणेविषे तथा निरंतर परमेश्वरकी प्रसन्नता अर्थ निष्काम कर्मपरायण होणेविषे तथा परमसात्विक श्रद्धाकरिकै युक्त होणेविषे अधिक क्लेश तौ प्राप्त होवैहैं, परंतु तिन सगुणब्रह्मके चिंतन करणेहारे पुरुषोंकूं अधिकतर क्लेश प्राप्त होवै नहीं अर्थात् अत्यंत अधिक क्लेश प्राप्त होवै नहीं । और निर्गुणब्रह्मके चिंतनपरायण है चित्त जिन्होंका ऐसे जे पूर्वउक्त श्रवणादिक साधनोंवाले अधिकारी जन हैं तिन निर्गुणब्रह्मके चिंतनपरायण अधिकारी जनोंकूं तौ अधिकतर क्लेश प्राप्त होवैहै । अर्थात् अतिशयकरिकै अधिक आयासरूप क्लेश प्राप्त होवैहै । अब इस पूर्वउक्त अर्थविषे श्रीभगवान् हेतु कहैंहैं (अव्यक्ता हि गतिर्दुःखमिति) जिसकारणतैं देहविषे अहंमम अभिमानवाले पुरुषोंनैं सा अव्यक्तरूप गति बहुत दुःखकरिकै पाईती है । तहां मुमुक्षुजन तत्त्वज्ञानकरिकै प्राप्त होवै जिसकूं ऐसा जो गंतव्यफलरूप निर्गुणब्रह्म है ताका नाम गति है । तहां श्रुति–(सा काष्ठा सा परा गतिः ।) अर्थ यह–सो निर्गुणब्रह्मही सर्वका अवधिरूप है तथा परा गतिरूप है इति । सो निर्गुणब्रह्म नेत्रादिक इंद्रियोंका विषय है नहीं यातैं ता निर्गुणब्रह्मरूप गतिकूं अव्यक्त कह्याहै अर्थात् देहाभिमानी पुरुषोंनैं सा अक्षरब्रह्मरूप गति बहुत दुःखकरिकैही पाईती है । तहां प्रथम तौ विवेक, वैराग्य, शमदमादि षट्संपत्ति, मुमुक्षुता इन चतुष्टयसाधनोंकरि संपन्न होणा । तिसतैं अनंतर विधिपूर्वक सर्व कर्मोंका संन्यास करिकै श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जाणा । तिसतैं अनंतर तिस ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदान्तवा-

न्योंका श्रवण करणा । तिसतें अनंतर तिसतिस वाक्यके विचारकरिकै तिसतिस भ्रमकी निवृत्ति करणी । इत्यादिक साधनोंके करणेविषे तिन देहाभिमानी पुरुषोंकूं महान् प्रयासकी प्राप्ति प्रत्यक्षही सिद्ध है। इसी अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान्नैं (क्लेशोधिकतरस्तेषाम्) यह वचन कथन कर्याहै । यद्यपि सगुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंकूं तथा निर्गुणब्रह्मके जानणेहारे पुरुषोंकूं एकही मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होवैहै, यातैं निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंतैं सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषविषे श्रेष्ठता कहणी संभवती नहीं, तथापि एकही फलकूं जे पुरुष दुष्कर उपायकरिकै प्राप्त होवैं हैं तिन पुरुषोंकी अपेक्षाकारिकै तिस फलकूं जे पुरुष सुगमउपायकरिकै प्राप्त होवैं हैं ते पुरुष श्रेष्ठ कहे जावैंहैं यह भगवान्‌का अभिप्राय है । यद्यपि पूर्व नवम अध्यायके द्वितीयश्लोकविषे (सुसुखं कर्तुमव्ययम्)इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं अधिकारी पुरुषोंकूं सुखेनही ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति कथन करीथी । और इहां (अव्यक्ता हि गतिर्दुःखम्) इस वचनकरिकै बहुत दुःखकरिकै ता निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति कथन करीहै । यातैं तिस पूर्व उत्तर वचनका परस्पर विरोध प्रतीत होवै है तथापि श्रीभगवान्‌का यह अभिप्राय है—विवेकादिक सर्व साधनोंकरिकै संपन्न जे निष्काम अधिकारी जन हैं तिन अधिकारी जनोंकूं तौ सुखेनही निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै । और जिन पुरुषोंका देहादिकोंविषे अहंमम अभिमान है ऐसे सकामपुरुषोंकूं बहुत दुःखकरिकैही ता निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति होवैहै। इस अभिप्रायकरिकैही श्रीभगवान्नैं इहां (देहवद्भिः) इस वचनकरिकै देहाभिमानी पुरुषही कथन करे हैं । ऐसे देहाभिमानी पुरुषोंकूं सगुणब्रह्मका चिन्तनही सुगम है । यातैं पूर्वउत्तरवचनोंका विरोध होवै नहीं ॥५॥

हे भगवन्!सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं तथा निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं जो कदाचित् एकही फलकी प्राप्ति होती होवै तौ क्लेशकी अल्पताकरिकै सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे तौ उत्कृष्टता होवै और क्लेशकी अधिकताकरिक निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे निकृष्टता होवै परंतु तिन दोनोंकूं एक फलकी प्राप्ति होती नहीं किंतु तिन दोनोंकूं भिन्नभिन्न फलकी ही प्राप्ति होवैहै । तहां निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं तौ अविद्याकी तथा ताके कार्यप्रपंचकी निवृत्तिपूर्वक निर्विशेष परमानंद ब्रह्मरूपताकी प्राप्तिरूप फल प्राप्त होवैहै । और सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं तौ अधिष्ठानरूप निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार है नहीं यातैं तिन्होंके अविद्याकी निवृत्ति होवै नहीं किंतु ते सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुष हिरण्यगभरूप कार्यब्रह्मके लोकविषे जाइक तहां ऐश्वर्यविशेषरूप फलकूं प्राप्त होवैं हैं यातैं तिन

निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं मोक्षरूप अधिकफलकी प्राप्तिवासतै जो आयासकी अधिकता है सो आयासकी अधिकता तिन निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंविषे न्यूनताकी प्राप्ति करै नहीं। अल्पफलवासतै आयासकी अधिकताही न्यूनताकी प्राप्ति करै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं। समाधान–हे अर्जुन ! सगुणब्रह्मकी उपासनाकरिकै निवृत्त होइगए हैं सर्व प्रतिबंध जिन्होंके ऐसे जे सगुणब्रह्मके उपासक हैं तिन उपासक पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे केवल ऐश्वर्यविशेषकी प्राप्तिरूप फलही प्राप्त होवै नहीं किंतु तिन उपासक पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे गुरुके उपदेशतैं विनाही तथा श्रवण मनन निदध्यासनादिकोंकी आवृत्तिरूप क्लेशतैं विनाही ईश्वरकी प्रसन्नता करिकै सहकृत तथा आपेही स्फुरण हुए ऐसे वेदांतवाक्यकरिकै तत्त्वज्ञानकी भी उत्पत्ति होवैहै। तिस तत्त्वज्ञानकरिकै कार्य सहित अविद्याके निवृत्तहुए तिस ब्रह्मलोकविषेही ऐश्वर्यभोगके अंतविषे तिन उपासक पुरुषोंकूं निर्गुणब्रह्मविद्याका फलरूप परमकैवल्यमुक्ति प्राप्त होवैहै। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति–(स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरीशयं पुरुषमीक्षते ।) अर्थ यह–प्राप्त हुआहै हिरण्यगर्भका ऐश्वर्य जिसकूं ऐसा सो उपासक पुरुष तिस ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यभोगके अंतविषे इन सर्व जीवोंका समष्टिरूप तथा श्रेष्ठ ऐसे हिरण्यगर्भतैं भी पर कहिये विलक्षण तथा श्रेष्ठ तथा हृदयरूप गुहाविषे स्थित तथा सर्वत्र परिपूर्ण ऐसा जो प्रत्यक् अभिन्न अद्वितीय परमात्मादेव है तिस परमात्मादेवकूं साक्षात्कार करैहै अर्थात् ता ब्रह्मलोकविषे गुरुके उपदेशतैं विना आपेही स्फुरणहुआ जो वेदांतवाक्यरूप प्रमाण है ता प्रमाणकरिकै सो उपासक पुरुष ता परब्रह्मकूं साक्षात्कार करै है। ता साक्षात्कार करिकैही सो उपासक पुरुष ता ब्रह्मलोकविषे कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होवैहै इति। इसप्रकार पूर्वउक्त क्लेशतैं विनाही सगुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं ईश्वरके प्रसादतैं निर्गुणब्रह्मविद्याका मोक्षरूप फल प्राप्त होवैहै। इस सर्व अर्थकूं श्रीभगवान् दो श्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं–

ये तु सर्वाणि कमाणि मयि संन्यस्य मत्पराः ॥
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) ये । तु । सर्वाणि । कर्माणि । मयि । संन्यस्य । मत्पराः । अनन्येन । एव । योगेन । माम् । ध्यायंतः । उपासते । तेषाम् । अहम् । समुद्धर्त्ता । मृत्युसंसारसागरात् । भवामि । नचिरात् । पार्थ । मयि । आवेशितचेतसाम् ॥ ६ ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे पार्थ ! पुनः जे पुरुष सर्व कर्मोंकूं मैं सगुणब्रह्मविषे अर्पणकरिकै मेरेपरायण हुए तथा अनन्य समाधिरूपयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं ही चिंतनकरतेहुए मेरीउपासना करैहैं तिन मैं परमेश्वरविषे आवेशितचित्तवाले पुरुषोंका मैं परमेश्वर मृत्युयुक्त संसारसमुद्रतैं शीघ्रंही उद्धारकरणेहारा होवूंहूं ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा० टी०-इहां (येतु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तुशब्द पूर्वउक्त अर्जुनकी शंकाके निवृत्ति करणेवासतैहै । हे अर्जुन ! जे अधिकारी जन मैं सगुण परमेश्वरविषे नित्य नैमित्तिक स्वाभाविक इत्यादिक सर्वकर्मोंकूं अर्पण करिकै मत्पर हुए हैं अर्थात् मैं भगवान् वासुदेवही हूं पर क्या प्रकृष्टप्रीतिका विषय जिन्होंकूं तिन्होंका नाम मत्पर है । अथवा मैं परमेश्वरही हूं पर क्या सर्व कर्मोंकरिकै प्राप्य जिन्होंकूं तिन्होंका नाम मत्पर है । अथवा मैं परमेश्वरही हूं पर क्या ध्यानका विषय जिनोंकूं तिनोंका नाम मत्पर है । अथवा मैं विश्वरूप परमात्माही हूं पर क्या आपणेतैं अन्य ज्ञातव्य द्रष्टव्य पदार्थ जिनोंकूं तिनोंका नाम मत्पर है । अर्थात् आपणेतैं अन्यवस्तुविषे सर्वत्र मैं परमेश्वरकूं देखणेहारे पुरुषोंका नाम मत्पर है । ऐसे मत्परहुए जे अधिकारी पुरुष अनन्ययोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करैं हैं, तहां मैं भगवान् वासुदेवकूं त्यागकै नहीं विद्यमान है अन्य आलंबन जिसविषे ताका नाम अनन्य है । ऐसा अनन्यरूप जो समाधिरूप योग है जिस अनन्यसमाधिरूप योगकूं शास्त्रविषे एकांतभक्तियोग इसनामकरिकै कथन कऱ्याहै । ऐसे अनन्ययोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं चिंतन करतेहुए अर्थात् सर्वसौंदर्यके सारका निधानरूप तथा आनंदघनरूप विग्रहवाला तथा दोभुजावों करिकै युक्त अथवा च्यारिभुजावों करिकै युक्त तथा सर्वजनोंके मनकूं मोहनकरणेहारी मुरलीकूं अतिमनोहर सप्तस्वरोंकरिकै बजावणेहारा तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म इन च्यारोंकूं हस्तोंविषे धारण करणेहारा ऐसा जो मैं भगवान् वासुदेव हूं तिस मैं भगवान् वासुदेवकूं चिंतन करतेहुए अथवा नरसिंह,

राघव, वामन इत्यादिरूप मैं परमेश्वरकूं चिंतन करतेहुए अथवा पूर्व दिखायेहुए विश्वरूप मैं परमेश्वरकूं चिंतन करतेहुए जे अधिकारी जन मैं परमेश्वरकी उपासना करैं अर्थात् ऐसे मैं परमेश्वरविषयक व्यवधानतैं रहित सजातीयचित्तवृत्तियोंके प्रवाहकूं जे अधिकारी पुरुष करैं हैं। अथवा (उपासते) इस पदका यह दूसरा अर्थ करणा—जे अधिकारी जन मैं परमेश्वरके समीपवर्तिपणेकरिकै स्थित होवैं हैं ऐसे जे मैं परमेश्वरविषे आवेशितचित्तवाले पुरुष हैं अर्थात् पूर्वउक्त मैं सगुणब्रह्मविषे आवेशित कऱ्या है क्या एकाग्रताकरिकै प्रवेशित कऱ्याहै चित्त जिनोंनैं तिनोंका नाम मय्यावेशितचेतस् है ऐसे सगणब्रह्मके चिंतनपरायण पुरुषोंका मैं भगवान् वासुदेव मृत्युसंसारसागरतैं समुद्धर्ता होवूंहूं। तहां मृत्युकरिकै युक्त जो मिथ्या अज्ञान तथा ता अज्ञानका कार्यभूत यह संसार है सो मृत्युयुक्त संसारही प्रसिद्ध सागरकी न्याईं दुस्तर होणेतैं सागररूप है ऐसे मृत्युसंसारसागरतैं मैं परमेश्वर तिन उपासक पुरुषोंका समुद्धर्त्ता होवूंहूं। अर्थात् तिन उपासक पुरुषोंकूं मैं परमेश्वर ज्ञानरूप आश्रयकी प्राप्ति करिकै विनाही आयासतैं तथा थोडेही कालविषे सर्वप्रपंचके बाधका अवधिभूत शुद्धब्रह्मरूप ऊर्ध्वस्थानविषे धारण करणेहारा होवूंहूं। इहां (हे पार्थ) यह जो अर्जुनका संबोधन भगवान्नैं कह्याहै सो तूं अर्जुन हमारे पिताके भगिनीका पुत्र है तथा हमारा अनन्यभक्त है यातैं इस मृत्युयुक्त संसारसागरतैं तैं अर्जुनकाभी मैं परमेश्वर अवश्यकरिकै उद्धार करूंगा तूं भय मतकर। याप्रकारके आश्वासन करणेवासतै कथन कऱ्या है ॥ ६ ॥७॥

तहां इतने ग्रंथ करिकै सगुणब्रह्मके उपासनाकी स्तुति कथन करी। अब तिस सगुणब्रह्मकी उपासनाका विधान करैंहैं—

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ॥
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) मयि। एव। मनः। आधत्स्व। मयि। बुद्धिम्। निवेशय। निवसिष्यसि। मयि। एव। अतः। ऊर्ध्वम्। न। संशयः ॥८॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तूं आपणे मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषेही स्थितकर तथा आपणे बुद्धिकूंभी मैं सगुणब्रह्मविषेही स्थितकर ताकरिकै इस देहपाततैं अनन्तर तूं मैं शुद्धब्रह्मविषे ही अभेदरूपतैं निवास करैगा याकेविषे कोई संशय तुमनैं नहीं करणा ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तूं आपणे संकल्पविकल्परूप मनकूं मैं सगुणब्रह्मविषेही स्थित कर अर्थात् ता मनके सर्ववृत्तियोंकूं मैं सगुणपरमेश्वरविषयक कर । मैं परमेश्वरतैं भिन्न दूसरे शब्दादिक विषयोंकूं ता मनके वृत्तियोंका विषय नहीं कर। तथा आपणी निश्चयरूप बुद्धिकूंभी मैं सगुणब्रह्मविषे ही स्थित कर अर्थात् ता बुद्धिकी सर्व वृत्तियां मैं सगुणब्रह्मविषयक ही कर । तात्पर्य यह—दूसरे सर्वविषयोंका परित्याग करिकै तूं सर्वकालविषे मैं सगुणब्रह्मकूंही चिंतन कर । शंका—हे भगवन् ! इसप्रकारतैं आप सगुणब्रह्मके चिंतन करणेतैं हमारेकूं कौन फल प्राप्त होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता चिंतन करणेका फल कथन करैं हैं। (निवसिष्यसि इति) हे अर्जुन ! इस प्रकारतैं जबी तूं निरंतर मैं सगुण ब्रह्मका चिंतन करैगा तबी मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारके आत्मज्ञानकूं प्राप्त होइकै तूं इस देहके पाततैं अनंतर मैं निर्गुण शुद्धब्रह्मविषेही अभेदरूपकारिकै निवास करैगा। इसप्रकारके सगुणब्रह्मकी उपासनाके मोक्षरूप फलविषे तुमनैं किंचित्मात्रभी संशय नहीं करणा अर्थात् ता सगुणब्रह्मके उपासककूं तिस मोक्षरूप फलकी प्राप्तिविषे तुमनैं किंचित्मात्रभी प्रतिबंधककी शंका नहीं करणी । इहां यद्यपि (एव अत ऊर्ध्वम्) इस वचनविषे (एवात ऊर्ध्वम्) इसप्रकारकी संधि करणी चाहितीथी तथापि श्रीभगवान्नैं जो इहां संधि नहीं करी सो श्लोकके पूर्णवासतै नहीं करी ॥ ८ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे सगुणब्रह्मके ध्यानका प्रकार कथन कऱ्या । अब तिस सगुणब्रह्मके ध्यान करणेविषेभी अशक्त जे अधिकारी जन हैं तिन अधिकारीजनोंनैं ता अशक्तिकी तारतम्यताकारिकै प्रथम तौ प्रतिमादिक बाह्य वस्तुवोंविषे भगवान्के ध्यानका अभ्यास करणा अर्थात् तिन प्रतिमादिकोंविषे भगवद्बुद्धि करणी और तिन प्रतिमादिकोंके ध्यान करणेविषेभी जे पुरुष अशक्त हैं तिन अधिकारी जनोंनैं तौ श्रवणकीर्त्तनादिरूप भागवतधर्मोंका अनुष्ठान करणा और तिन भागवतधर्मोंके अनुष्ठान करणेविषेभी जे पुरुष अशक्त हैं तिन अधिकारी जनोंनैं तौ सर्व कर्मोंके फलका परित्याग करणा अर्थात् फलकी इच्छातैं रहित होइकै कर्मोंकूं करणा । इसप्रकारके तीन साधनोंकूं तीन श्लोकोंकारिकै श्रीभगवान् कथन करैंहैं—

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्॥
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) अथ । चित्तम् । समाधातुम् । न । शक्नोषि । मयि । स्थिरम् । अभ्यासयोगेन । ततः । माम् । इच्छ । आप्तुम् । धनंजय ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे धनंजय ! जबी तूं मैं सगुणब्रह्मविषे आपणे चित्तकूं स्थिर स्थापनकरणेकूं नहीं समर्थ होवै तबी अभ्यासयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं प्राप्तहोणे अर्थ इच्छा कर ॥ ९ ॥

भा॰ टी॰—इहां श्लोकके आदिविषे स्थित जो अथ यह शब्द हैं सो अथ शब्द पूर्वउक्त पक्षकी अपेक्षाकरिकै दूसरे पक्षके आरंभका बोधक है। हे धनंजय! जबी तूं मैं सगुणब्रह्मविषे जैसे चित्त स्थिर होवै तैसे आपणे चित्तकूं स्थापनकरणेविषे अशक्त होवै तबी तूं अभ्यासयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होणेवासतै इच्छा कर अर्थात् प्रयत्न कर। तहां सुवर्णादिक धातुमय अथवा पाषाणमय जे विष्णुशिवादिकोंकी प्रतिमा हैं तिन बाह्य प्रतिमादिक आलंबनविषे सर्वओरतैं निवृत्त करेहुए चित्तका जो पुनःपुनः स्थापन है ताका नाम अभ्यास है।तिस अभ्यासपूर्वक जो समाधिरूप योग है ताका नाम अभ्यासयोग है। ऐसे अभ्यासयोगकरिकै मैं परमेश्वरकूं प्राप्त होणेवासतै तूं प्रयत्न कर। इहां श्रीभगवान्नैं (हे धनंजय) इस संबोधनके कहणेकरिकै यह अर्थ सूचन कऱ्या। युधिष्ठिर राजाके राजसूय यज्ञवासतै बहुत शत्रुवोंकूं जीतकरिकै तूं धनकूं ले आवता भयाहै, यातैं तुम्हारा धनंजय यह नाम होताभया है। ऐसा धनंजयनामवाला तूं अर्जुन एक मनरूप शत्रुकूं जीतिकै तत्त्वज्ञानरूप धनकूं हरण करैगा यह वार्त्ता तुम्हारेविषे कोई आश्चर्यरूप नहीं है ॥ ९ ॥

अभ्यासेप्यसमर्थोसि मत्कर्मपरमो भव ॥
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) अभ्यासे । अपि । असमर्थः । असि । मत्कर्मपरमः । भव । मदर्थम् । अपि । कर्माणि । कुर्वन् । सिद्धिम् । अवाप्स्यसि ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पूर्वउक्त अभ्यासविषे भी जबी तूं असमर्थ होवै

तूं भागवतकर्मपरायण होउ मैंपरमेश्वरअर्थ कर्मोंकूं भी करताहुआ तूं ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैगा ॥ १० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या जो अभ्यास है ता अभ्यासके करणेविषेभी जबी तूं असमर्थ होवै तबी तूं मत्कर्मपरम होउ । तहां मैं परमेश्वरकी प्रसन्नताअर्थ जे कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम मत्कर्म है ते भगवतकी प्रसन्नता वासतै भजनरूप कर्म शास्त्रविषे नव प्रकारके कहेहैं । तहां श्लोक–(श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥) अर्थ यह–सर्वत्र व्यापक विष्णुभगवान्के रामकृष्णादिक नामोंकूं श्रवण करणा १ । तथा ता विष्णुके नामोंकूं आपणे मुखकरिकै कथन करणा २ । तथा आपणे मनकरिकै ता विष्णुका सर्वदा स्मरण करणा ३ । तथा ता विष्णुके पादोंका सेवन करणा ४ । तथा चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप इत्यादिक पदार्थोंकरिकै ता विष्णुका अर्चन करणा ५ । तथा शरीर, मन, बाणीकरिकै ता विष्णुके ताईं नमस्काररूप वंदन करणा ६ । तथा ता विष्णुका दासभाव करणा ७ । तथा ता विष्णुका सखाभाव करणा ८ । तथा ता विष्णुके ताईं आपणे शरीररूप आत्माका अर्पण करणा ९ । इहां यद्यपि सर्वत्र व्यापक विष्णुके साक्षात् पादोंका सेवन तथा अर्चन संभवता नहीं तथापि (द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च । चलं संन्यासिनो रूपमचलं प्रतिमादिकम् ॥) इस शास्त्रके वचनविषे विष्णुके दो रूप कथन करे हैं । तहां संन्यासी तौ तिस विष्णुका चलरूप है । और सुवर्णादिक धातुमय तथा पाषाणमय प्रतिमादिक ता विष्णुका अचलरूप है । ता संन्यासीके अथवा विष्णुकी प्रतिमाके पादोंका सेवन तथा अर्चन संभवै है इति । इसी श्रवणादिक नवप्रकारके भजनकूं शास्त्रविषे भागवत धर्म कहै हैं । ऐसे भागवतधर्मनामा मत्कर्मोंके करणेविषे तूं तत्पर होउ । इसप्रकार मैं परमेश्वरकी प्रसन्नतावासतै तिन श्रवणकीर्त्तनादिक भागवतकर्मोंकूं भी करताहुआ तूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तथा आत्मज्ञानकी प्राप्तिद्वारा निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप सिद्धिकूं प्राप्त होवैगा ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अथ । एतत् । अपि । अशक्तः । असि । कर्त्तुम् । मद्योगम् । आश्रितः । सर्वकर्मफलत्यागम् । ततः । कुरु । यतात्मवान् ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जबी तूं इस पूर्वउक्त भागवतकर्मके भी करणेकूं अशक्त होवै तबी मैं परमेश्वरके योगकूं आश्रयणकरताहुआ तथा यतात्मवान् हुआ तूं सर्वकर्मोंके फलके त्यागकूं कर ॥ ११ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! बाह्यविषयोंविषे प्रीतिमान् ऐसा जो चित्त है ऐसे बहिर्मुखचित्तवाला होणेतैं जबी तूं पूर्वश्लोकउक्त श्रवणकीर्त्तनादिक भागवतधर्मोंकूंभी संपादन करणेविषे असमर्थ होवै तबी तूं मद्योगकूं आश्रित हुआ अर्थात् एक मैं परमेश्वरके शरणताकूं आश्रयण करताहुआ अथवा मैं परमेश्वरविषे जो सर्वकर्मोंका अर्पण है ताका नाम मद्योग है ऐसे मद्योगकूं आश्रयण करता हुआ तथा यतात्मवान् हुआ इहां शब्दादिक सर्वविषयोंतैं निवृत्त करे हैं श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय जिसनैं ताका नाम यत है । और विवेकीका नाम आत्मवान् है । यत होवै सोईही आत्मवान् होवै ताका नाम यतात्मवान् है अर्थात् श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंके निरोधवाले विवेकी पुरुषका नाम यतात्मवान् है। ऐसा यतात्मवान् हुआ तूं अर्जुन उक्तपूर्व श्रौतस्मार्त्तरूप सर्वकर्मोंके फलके त्यागकूं कर अर्थात् तिन कर्मोंके फलकी इच्छाका तूं परित्याग कर ॥ ११ ॥

तहां पूर्व सगुणब्रह्मकी उपासना, अभ्यासयोग, भागवतधर्म, कर्मके फलका त्याग यह च्यारि साधन अधिकारीके भेदतैं विधान करे तिन च्यारिसाधनोंके मध्यविषे अंतमें विधान कऱ्या जो कर्मोंके फलका त्यागरूप साधन है तिस त्यागरूप साधनविषेही पूर्वउक्त साधनोंके विधानका परिअवसान है । याकारणतैं तिन कर्मोंके फलका त्यागरूप साधनविषे अधिकारी जनोंकी प्रवृत्ति करणेवासतै श्रीभगवान् इस सर्वकर्मोंके फलका त्यागरूप साधनकी स्तुति कथन करैं हैं—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) श्रेयः । हि । ज्ञानम् । अभ्यासात् । ज्ञानात् । ध्यानम् । विशिष्यते । ध्यानात् । कर्मफलत्यागः । त्यागात् । शांतिः । अनंतरम् ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अभ्यासतैं ज्ञान ही श्रेष्ठ है ता ज्ञानतैं ध्यान श्रेष्ठ है ता ध्यानतैं कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है जिसत्यागतैं अनंतर मोक्षरूप शांति होवै है ॥ १२ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! ज्ञानकी प्राप्तिवासतै कऱ्या जो श्रवणका अभ्यास है तिस अभ्यासतैं ज्ञानही श्रेष्ठ है अर्थात् श्रवणकरिकै तथा मननकरिकै उत्पन्न भया जो आत्मविषयक निश्चयरूप ज्ञान है जिस ज्ञानकूं श्रवणज्ञान तथा मननज्ञान कहैंहैं । तथा जो ज्ञान प्रमाणगत असंभावनाका तथा प्रमेयगत असंभावनाका निवर्त्तक है ऐसा ज्ञान तिस अभ्यासतैं श्रेष्ठ है । और तिस श्रवणमननजन्य ज्ञानतैं निदिध्यासनरूप ध्यान अत्यंत श्रेष्ठ है । काहेतैं सो निदिध्यासनरूप ध्यान व्यवधानतैं रहित हुआही आत्मसाक्षात्कारका हेतु है । और सो श्रवणज्ञान तथा मननज्ञान ता निदिध्यासनद्वारा आत्मसाक्षात्कारका हेतु है । व्यवधानतैं रहित हुआ सो ज्ञान आत्मसाक्षात्कारका हेतु है नहीं । यातैं तिस ज्ञानतैं निदिध्यासनरूप ध्यानकी श्रेष्ठता युक्त है । इस प्रकारतैं सो निदिध्यासनरूप ध्यान यद्यपि सर्वसाधनोंतैं श्रेष्ठ है तथापि अज्ञानीपुरुषनैं कऱ्या जो सर्वकर्मोंके फलका त्याग है सो कर्मोंके फलका त्याग तिस अज्ञानी पुरुषकूं ता ध्यान-तैंभी श्रेष्ठ है । इस अभिप्रायकरिकै श्रीभगवान् तिस कर्मफलके त्यागकी स्तुति करैंहैं (ध्यानात्कर्मफलत्याग इति) हे अर्जुन ! अज्ञानी पुरुषनैं कऱ्या जो कर्मोंके फलका त्याग है सो कर्मोंके फलका त्याग तिस अज्ञानी पुरुषकूं तिस निदिध्या-सनरूप ध्यानतैंभी श्रेष्ठ है । काहेतैं निगृहीतचित्तवाले पुरुषनैं कऱ्या जो सर्वकर्मोंके फलका त्याग है तिस त्यागतैं इस अधिकारी पुरुषकूं अज्ञानसहित सर्वसंसारका उपशमरूप शांति व्यवधानतैं विनाही प्राप्त होवैहै । सा शांति कालांतरकी अपेक्षा करै नहीं । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति–(यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः । अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्मसश्नुते ॥) अर्थ यह–इस जीवके हृदयविषे स्थित जे काम हैं ते सर्वकाम जिसकालविषे निवृत्त होवैं हैं तिसी कालविषेही यह जीव अमृत होवै है तथा इसी देहविषे ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवैहै इति । इत्यादिक श्रुतिवचनोंतैं सर्वकर्मोंके त्यागविषे मोक्षका साध-नपणा जान्याजावैहै । और इस गीताशास्त्रविषेभी स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणोंविषे (प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं

आपही सर्वकर्मोंके त्यागविषे मोक्षका साधनपणा कथन कऱ्या है। यद्यपि श्रुतिविषे तथा स्थितप्रज्ञके लक्षणोंविषे सर्वकर्मोंके त्यागकूं ही मोक्षका साधनपणा कथन कऱ्या है। कर्मोंके फलके त्यागकूं मोक्षका साधनपणा कह्या नहीं तथापि ते कर्मके फलभी कामरूपही हैं। यातैं तिन कर्मोंके फलोंका जो त्याग है सो त्यागभी कामका त्यागही है। ता कामत्यागस्वरूप सामान्यधर्मकूं लैके श्रीभगवान्नैं ता कर्मफलके त्यागकी कामत्यागकै फलकरिकै स्तुति करी है। जैसे पूर्व अगस्त्य ब्राह्मण समुद्रकूं पान करताभयाहै तथा परशुराम ब्राह्मण इस पृथिवीकूं क्षत्रियराजावोंतैं रहित करता भयाहै सो ब्राह्मणपणा इदानींकालके ब्राह्मणोंविषेभी है। यातैं ता ब्राह्मणत्व सामान्यधर्मकूं लैके इदानींकालके ब्राह्मणभी अपरिमित पराक्रमवत्ताकरिकै स्तुति करे जावैं हैं। तैसे सो कर्मके फलका त्यागभी कामत्यागके फलकरिकै स्तुति कऱ्या जावै है इति। और किसी टीकाविषे तौ (श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात्) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्याहै—निदिध्यासनरूप अभ्यासतैं श्रवणमननजन्य परोक्ष ज्ञान श्रेष्ठ है। और तिस परोक्षज्ञानतैं विष्णुके नामोंका श्रवणकीर्त्तनरूप ध्यान श्रेष्ठ है। और तिस ध्यानतैं कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है। कैसा है सो कर्मोंके फलका त्याग—जिस त्यागतैं उत्तरव्यवधानतैं विनाही चित्तशुद्धि आदिकोंकी उत्पत्तिद्वारा मोक्षरूप शांति प्राप्त होवै है। इहां यद्यपि निदिध्यासनरूप अभ्यासकी अपेक्षाकरिकै सो परोक्षज्ञान बाह्यसाधन है। और ता परोक्षज्ञानकी अपेक्षाकरिकै सो श्रवणकीर्त्तनादिरूप ध्यान बाह्यसाधन है। और ता ध्यानकी अपेक्षाकरिकै सो कर्मोंके फलका त्याग बाह्यसाधन है। यातैं अंतरसाधनकी अपेक्षाकरिकै बाह्यसाधनविषे श्रेष्ठता कहणी असंगत है तथापि अंतरसाधनकी अपेक्षाकरिकै बाह्यसाधन करणेकूं सुगम होवैहै। और सोपानक्रमकरिकै बाह्यसाधनकी प्राप्तिपूर्वक ही अंतरसाधनकी प्राप्ति होवै है। यातैं श्रीभगवान्नैं तिन बाह्यसाधनोंविषे अधिकारी जनोंकी प्रवृत्ति करावणेवास्तै पूर्वपूर्व साधनकी अपेक्षाकरिकै तिसतिस बाह्यसाधनविषे श्रेष्ठता कथन करीहै॥ १२॥

तहां पूर्व मंद अधिकारीके प्रति अतिदुष्कर होणेतैं निर्गुण अक्षरब्रह्मके उपासनाकी निंदा करिकै अतिसुगम सगुणब्रह्मकी उपासना विधान करी। ता सगुणब्रह्मकी उपासनाके करणेविषेभी जे पुरुष असमर्थ हैं तिन पुरुषोंके अशक्तिकी तारतम्यताके अनुसार दूसरेभी अभ्यासादिक तीन साधन श्रीभगवान्नैं विधान करे।

ता सगुणब्रह्मकी उपासनाके विधान करणेविषे तथा अभ्यासादिक तीन साधनोंके कहणेविषे श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है। यह अधिकारी जन किसी भी प्रकारकरिकै सर्वप्रतिबंधकोंतैं रहित होइकै तथा उत्तम अधिकारी होइकै सर्वसाधनोंका फलरूप निर्गुणब्रह्मविद्याविषे प्रवेश करै इति । काहेतैं साधनोंका जो विधान होवै है सो फलकी प्राप्तिवासतै ही होवैहै। फलतैं विना साधनोंका विधान होवै नहीं । यातैं इहां श्रीभगवान्नैं जो सगुणब्रह्मकी उपासना तथा अभ्यासादिक तीन साधन विधान करे हैं ते सर्व साधन निर्गुणब्रह्मविद्यारूप फलकी प्राप्तिवासतैही विधान करे हैं । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक-(निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्त्तुमनीश्वराः । ये मंदास्तेऽनुकंप्यन्ते सविशेषनिरूपणैः ॥ १ ॥ वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात् । तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनम् ॥ २ ॥) अर्थ यह-जे मंद अधिकारी जन निर्विशेषपरब्रह्मके साक्षात्कार करणेकूं समर्थ नहीं होवैंहैं ते मंद अधिकारी जन सगुणब्रह्मके निरूपणकरिकै अनुग्रहके विषय करीते हैं अर्थात् श्रुतिभगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं तिन मंदअधिकारी पुरुषोंके ऊपरि अनुग्रह करिकै सगुणब्रह्मका निरूपण करीताहै ॥ १ ॥ तिस सगुणब्रह्मके ध्यानतैं जबी तिन मंदअधिकारी पुरुषोंका मन वश होवैहै तबी तिन अधिकारीजनोंकूं सर्वउपाधियोंकी कल्पनातैं रहित तिस निर्गुणब्रह्मका साक्षात्कार होवैहै इति ॥२॥ यह वार्त्ता पतंजलिभगवान्नैंभी योगसूत्रोंविषे कथन करीहै । तहां सूत्र-(समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् । ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यंतरायाभावश्च।) अर्थ यह-इस अधिकारी जनकूं ईश्वरके चिंतनरूप ईश्वरप्रणिधानतैं समाधिकी प्राप्ति होवैहै । तिस ईश्वरके प्रणिधानतैंही इस अधिकारी पुरुषकूं प्रत्यक्चेतनका साक्षात्कार होवैहै । तथा विघ्नरूप अंतरायोंका अभाव होवैहै इति । यातैं पूर्व (क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै जो निर्गुणब्रह्मके उपासनाकी निंदा करीथी सो निंदा सगुणब्रह्मकी उपासनाके स्तुतिवासतै करीथी । कोई निर्गुणब्रह्मकी उपासनाके निषेधकरणे वासतै सा निंदा नहीं करीथी । जैसे उदितहोमके विधानविषे जो अनुदितहोमकी निंदा करी है सा निंदा तिस उदितहोमकी स्तुतिवासतैही करी है । कोई अनुदितहोमके निषेध करणेवासतै सा निंदा नहीं करीहै । तहां सूर्यके उदय हुए जो होम कन्या जावैहै ताकूं उदितहोम कहैंहैं । और सूर्यके उदयहुएतैं प्रथम जो होम कन्या जावैहै ताकूं अनु-

दिवहोम कहैहैं । तैसे सगुणउपासनाके विधानविषे जो निर्गुणउपासनाकी निंदा करीहै सा निंदाभी तिस सगुणउपासनाकी स्तुतिवासतै है कोई निर्गुणउपासनाके निषेधवासतै सा निंदा नहींहै। काहेतैं शास्त्रकारोंनैं यह न्याय कह्याहै—(नहि निंद निंद्यं निंदितुं प्रवर्त्ततेऽपि तु विधेयं स्तोतुम् ।) अर्थ यह—शास्त्रविषे जो निंदावचन होवैं हैं ते निंदावचन तिस निंद्यवस्तुके निंदन करणेवासतै प्रवृत्त नहीं होवैं हैं किंतु प्रसंगविषे प्राप्त विधेय अर्थके स्तुति करणेवासतै ते निंदावचन प्रवृत्त होवैं हैं इति । यातैं निर्गुण अक्षरब्रह्मके उपासक ही वास्तववतैं योगवित्तम हैं । ऐसे निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषही श्रीभगवान्नैं (प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः । उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥) इत्यादिक वचनोंकरिकै पुनःपुनः श्रेष्ठतारूपकरिकै कथन करैंहैं । हे अर्जुन ! तुमनैंभी अधिकारकूं संपादन करिकै तिन निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका ही ज्ञान तथा सर्वधर्म अनुसरण करणेयोग्य है । इसप्रकारतैं अर्जुनके प्रति बोध करणेकी इच्छा करताहुआ तथा ता अर्जुनके परम हितकी इच्छा करताहुआ श्रीकृष्णभगवान् सप्तश्लोकोंकरिकै तिन अभेददर्शनवाले तथा कृतकृत्यभावकूं प्राप्तहुए निर्गुणब्रह्मके उपासकोंकी स्तुति करैं हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) अद्वेष्टा । सर्वभूतानाम् । मैत्रः । करुणः । एव । च । निर्ममः । निरहंकारः । समदुःखसुखः । क्षमी ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्वभूतोंका अद्वेष्टा है तथा मैत्रीवाला ही है तथा करुणावाला है तथा निर्मम है तथा निरहंकार है तथा समहैं दुःखसुख जिसकूं तथा क्षमावाला है ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सो निर्गुणके ब्रह्मवेत्ता पुरुष स्थावरजंगमरूप सर्व भूतोंकूं आपणा आत्मारूपकरिकै देखै है । यातैं जो पदार्थ आपणे दुःखकाभी हेतु है तिस पदार्थविषेभी तिस तत्त्ववेता पुरुषकी प्रतिकूलबुद्धि होवै नहीं और जिस वस्तुविषे यह वस्तु हमारे दुःखका साधन है याप्रकारकी प्रतिकूलबुद्धि होवैहै तिस वस्तुविषेही द्वेष होवैहै ता प्रतिकूलबुद्धितैं विना द्वेष होवै नहीं । ता प्रतिकूलबुद्धिके अभाव हुए सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन सर्वभूतोंका द्वेष करता होवै नहीं किंतु सो तत्त्ववेत्ता

पुरुष तिन सर्वभूतोंविषे मैत्रीवालाही होवैहै अर्थात् तिन सर्वभूतोंविषे स्नेहवाला ही होवैहै । अब ता मैत्रीभावविषे हेतु कहैंहैं । (करुणः इति) हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष करुणावाला है इसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन सर्वभूतोंविषे मैत्रीवाला है तहां दुःखीप्राणियोंविषे जो दया करणी है ताका नाम करुणा है ऐसी करुणावाले पुरुषका नाम करुण है अर्थात् सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वभूतोंके ताईं अभयदान देणेहारा परमहंस संन्यासी है । तथा सो तत्त्ववेत्ता पुरुष निर्मम है अर्थात् आपणे देहविषेभी यह देह हमाराहै याप्रकारकी ममताबुद्धितैं रहित है । तथा सो पुरुष निरहंकार है । अर्थात् जैसे अज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ आचारकरिकै तथा वेदविद्यादिकोंकरिकै अहंकारकूं प्राप्त होवैहै तैसे सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन श्रेष्ठ आचार विद्यादिकोंकरिकै अहंकारकूं प्राप्त होतानहीं । तथा द्वेष राग इन दोनोंतैं रहित होणेतैं सम हैं दुःख सुख दोनों जिसकूं इसीकारणतैंही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष क्षमावाला है अर्थात् ताडनादिकोंकरिकैभी विक्रियाकूं प्राप्त होता नहीं ॥ १३ ॥

अब पूर्वश्लोकविषे कथन करेहुए निर्गुणब्रह्मवेत्ता पुरुषके अन्यभी विशेषणोंकूं कथन करैं हैं-

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

(पदच्छेदः) संतुष्टः । संततम् । योगी । यतात्मा । दृढनिश्चयः । मयि । अर्पितमनोबुद्धिः । यः । मद्भक्तः । सः । मे । प्रियः ॥ १४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्वदा संतुष्ट है तथा समाहितचित्तवाला है तथा वशकन्याहै संघात जिसनैं तथा दृढहै निश्चय जिसका तथा मैं परमेश्वरविषे अर्पण करेहैं मन बुद्धि जिसनैं ऐसा जो मेरा भक्त है सो भक्त मैं परमेश्वरकूं प्रिय है॥ १४॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जो पुरुष सर्वकालविषे संतुष्ट है अर्थात् शरीरकी स्थितिके कारणरूप जे अन्नवस्त्रादिक पदार्थ हैं तिन अन्नादिक पदार्थोंकी प्राप्तिविषे अथवा अप्राप्तिविषे जो पुरुष संतोषवाला है । इहां (सततम्) इस पदका सर्वविशेषणोंके साथि संबंध करणा । तथा जो पुरुष सर्वदा योगी है अर्थात् सर्वकालविषे जो पुरुष समाहितचित्तवाला है । तथा जो पुरुष यतात्मा है अर्थात् आपणे वश कन्याहै शरीरइंद्रियादिरूप संघात जिसनैं । तथा जो पुरुष दृढनिश्चय है ।

तहां दृढ है क्या कुतार्किकपुरुषोंनैं अभिभवकरणेकूं अशक्य होणेतैं स्थिर है निश्चय क्या अकर्त्ता अभोक्ता सच्चिदानंद अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं याप्रकारका ज्ञान जिसका ताका नाम दृढनिश्चय है अर्थात् स्थितप्रज्ञपुरुषका नाम दृढनिश्चय है। तथा मैं निर्गुण शुद्ध ब्रह्मविषे समर्पण कऱ्या है संकल्पविकल्पात्मक मन तथा निश्चयात्मक बुद्धि जिसनैं, इसप्रकारका जो हमारा भक्त है अर्थात् सर्वउपाधितैं रहित शुद्ध अक्षरब्रह्मकूं आपणा आत्मारूपकरिकै जानणेहारा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रिय है। याप्रकारका अर्थ अगले श्लोकोंविषेभी जानिलेणा ॥ १४ ॥

अब पुनः भी तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके विशेषणोंकूं निरूपण करैंहैं—

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

(पदच्छेदः) यस्मात् । न । उद्विजते । लोकः । लोकात् । न । उद्विजते । च । यः । हर्षामर्षभयोद्वेगैः । मुक्तः । यः । सः । च । मे । प्रियः ॥ १५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जिसपुरुषतैं यहलोक नहीं संतापकूं प्राप्त होवै है तथा जो पुरुष तिसलोकतैं नहीं संतापकूं प्राप्तहोवै है तथा जो पुरुष हर्षअमर्ष-भयउद्वेग इन च्यारोंनैं परित्याग कऱ्याहै सो तत्त्ववेत्तापुरुष मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है ॥ १५ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! सर्वप्राणियोंकूं अभयकी प्राप्ति करणेहारे जिस परम-हंस संन्यासीतैं कोईभी प्राणी संतापकूं प्राप्त होवै नहीं अर्थात् जो तत्त्ववेत्ता पुरुष किसीभी प्राणीकूं शरीर मन वाणीकरिकै पीडाकी प्राप्ति करता नहीं तथा विनाही अपराधतैं संतापकी प्राप्ति करणेहारे जे दुष्ट प्राणी हैं ऐसे दुष्टप्राणीरूप लोकतैं जो पुरुष संतापकूं प्राप्त होता नहीं जिसकारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वत्र अद्वैत आत्म-दर्शी है तथा परमकारुणिक होणेतैं क्षमास्वभाववाला है। तथा जो पुरुष हर्ष अमर्ष भय उद्वेग इन च्यारोंनैं परित्याग कऱ्याहै। तहां इष्टवस्तुके लाभ हुए जो रोमां-च अश्रुपातादिकोंका हेतुरूप तथा आनंदका अभिव्यंजक चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम हर्ष है। और दूसरेकी उत्कृष्टताका असहनरूप जा चित्तकी वृत्तिवि-

शेष है ताका नाम अमर्ष है। और व्याघ्र चौर शत्रु इत्यादिक अनिष्ट वस्तुवोंके दर्शनजन्य जा त्रासरूप चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम भय है। और जनोंतैं रहित एकांतस्थानविषे सर्व परिग्रहतैं शून्य एकाकी स्थित हुआ मैं कैसे जीवींगा इसप्रकारकी व्याकुलतारूप जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम उद्वेग है। ऐसे हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेग इन च्यारोंनैं जो पुरुष परित्याग कन्या है अर्थात् सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष अद्वैतदर्शी होणेतैं तिन हर्षादिकोंके योग्य है नहीं। यातैं तिन हर्षादिकोंनैं आपेही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष परित्याग करदिया है कोई सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिन हर्षादिकोंके त्यागवासतै आप व्यापारवाला हुआ नहीं। यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्लोक—(यथा पर्वतमादीप्तं नाश्रयंति मृगद्विजाः। तद्वद्ब्रह्मविदो दोषा नाश्रयंते कदाचन ॥ १ ॥ मंत्रौषधबलैर्यद्वज्जीर्यंते भक्षितं विषम्। तद्वत्सर्वाणि कर्माणि जीर्यंते ज्ञानिनः क्षणात् ॥ २ ॥) अर्थ यह— जैसे अग्निकरिकै दग्धहुए पर्वतकूं मृगादिक पशु तथा पक्षी आश्रयण करते नहीं तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं रागद्वेषादिक दोष आश्रयण करते नहीं ॥ १ ॥ और जैसे भक्षण कन्या हुआ विष मंत्र औषधिके बलकारिकै जीर्णभावकूं प्राप्त होइजावैहै तैसे ज्ञानवान् पुरुषके पुण्यपापरूप सर्वकर्म एकक्षणमात्रविषे नाशकूं प्राप्त होवैहैं ॥ २ ॥ इस प्रकारके गुणोंवाला जो मैं परमेश्वरका भक्त है सो ब्रह्मवेत्ता भक्त मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रिय है ॥ १५ ॥

किंच—

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अनपेक्षः। शुचिः। दक्षः। उदासीनः। गतव्यथः। सर्वारंभपरित्यागी। यः। मद्भक्तः। सः। मे। प्रियः ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष निरपेक्ष है तथा शुचि है तथा दक्ष है तथ उदासीन है तथा गतव्यथ है तथा सर्व आरंभपरित्याग करे हैं जिसनैं ऐसा जो मेरा भक्त है सो भक्त मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय है ॥ १६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! जो पुरुष अनपेक्ष है अर्थात् विनाही प्रयत्नतैं यदृच्छामात्रकरिकै प्राप्तहुएभी जे भोगके साधन हैं तिन सर्व भोगके साधनोंविषे जो पुरुष

निस्पृह है, तथा जो पुरुष शुचि है अर्थात् बाह्यअंतर दोप्रकारके शौचकरिकै युक्त है तहां जलमृत्तिकादिकोंकरिकै शरीरका प्रक्षालन करणा याका नाम बाह्यशौच है। और मैत्री करुणादिकोंकरिकै अंतःकरणकूं रागद्वेषादिकोंतैं रहित करणा याका नाम अंतरशौच है। तथा जो पुरुष दक्ष है अर्थात् अवश्यकरिकै जानणेयोग्य तथा अवश्यकरिकै करणेयोग्य ऐसे अर्थोंके प्राप्तहुए जो पुरुष तिसतिस अर्थके जानणेकूं तथा करणेकूं समर्थ है। तथा जो पुरुष उदासीन है अर्थात् जो पुरुष किसीभी मित्रादिकोंके पक्षकूं ग्रहण करता नहीं। तथा जो पुरुष गतव्यथ है अर्थात् किसी दुष्टपुरुषोंनैं ताडन कियेहुएभी नहीं उत्पन्नहुई है पीडारूप व्यथा जिसकूं। तथा जो पुरुष सर्वारंभपरित्यागी है तहां इस लोकके फलकी प्राप्ति करणेहारे तथा परलोकके फलकी प्राप्ति करणेहारे जितनेक लौकिक वैदिक कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम सर्वारंभ है ऐसे सर्वारंभोंकूं परित्याग कन्या है जिसनैं ऐसा जो परमहंस संन्यासी है ताका नाम सर्वारंभपरित्यागी है। इस प्रकारका जो मैं परमेश्वरका भक्त है सो ब्रह्मवेत्ता भक्त मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रिय है ॥ १६ ॥

किंच–

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७॥

(पदच्छेदः) यः। न। हृष्यति। न। द्वेष्टि। न। शोचति। न। कांक्षति। शुभाशुभपरित्यागी। भक्तिमान्। यः। सः। मे। प्रियः ॥१७॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो पुरुष नहीं हर्षकरै है नहीं द्वेषकरैहै तथा नहीं शोककरै है तथा नहीं इच्छाकरै है तथा शुभ अशुभकर्मोंका परित्याग कन्याहै जिसनैं ऐसा जो भक्तिमान् पुरुष है सो पुरुष परमेश्वरकूं प्रिय है ॥ १७ ॥

भा० टी०–तहां पूर्व त्रयोदशश्लोकविषे (समदुःखसुखः) यह विशेषण कथन कन्याथा तिस विशेषणकाही अब विस्तारतैं वर्णन करैं हैं। हे अर्जुन ! जो पुरुष प्रियवस्तुके प्राप्तहुए हर्षकूं प्राप्त होता नहीं तथा अप्रियवस्तुके प्राप्तहुए जो पुरुष द्वेषकूं प्राप्त होता नहीं तथा प्राप्त प्रियवस्तुके वियोग हुए जो पुरुष शोककूं करता नहीं तथा जो पुरुष इष्टवस्तुके संयोगकी तथा अनिष्टवस्तुके वियोगकी इच्छा करता

नहीं । अब (सर्वारंभपरित्यागी) इस पूर्वउक्त विशेषणका वर्णन करैहैं (शुभाशुभपरित्यागी इति) हे अर्जुन ! सुखकी प्राप्ति करणेहारे जे शुभ कर्म हैं तथा दुःखकी प्राप्ति करणेहारे जे अशुभ कर्म हैं तिन दोनों प्रकारके कर्मोंका परित्याग कऱ्याहै जिसनैं ऐसा मैं परमेश्वरकी भक्तिवाला जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष है सो ब्रह्मवेत्ता भक्त मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रिय है ॥ १७ ॥

किंच–

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) समः । शत्रौ । च । मित्रे । च । तथा । मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु । समः । संगविवार्जितः ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जो पुरुष शत्रुविषे तथा मित्रविषे समान है तथा मान अपमान दोनोंविषे समान है तथा शीतउष्णसुखदुःख इन सर्वोंविषे समान है तथा संगतैं रहित है ॥ १८ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! इसलोकविषे जो प्राणी किसीका अपकार करै है ताकूं शत्रु कहैं हैं । और जो प्राणी किसीका उपकार करै है ताकूं मित्र कहैहैं । ऐसे अपकार करणेहारे शत्रुविषे तथा उपकार करणेहारे मित्रविषे जो पुरुष सम है अर्थात् आपणे पापपुण्यरूप प्रारब्ध कर्मके वशतैंही इस देहका कोई प्राणी अपकारकर्त्ता शत्रु होवै है तथा कोई प्राणी उपकारकर्त्ता मित्र होवैहै याप्रकारका मनविषे विचार करिकै जो पुरुष तिस शत्रुविषे तथा मित्रविषे समदृष्टिही होवैहै । तथा जो पुरुष सुहृद्पुरुषोंनैं करेहुए पूजनरूप मानविषे तथा दुष्टपुरुषोंनैं करेहुए तिरस्काररूप अपमानविषे सम है अर्थात् ता मान अपमानकृत हर्षविषादरूप विकारकूं प्राप्त होता नहीं । तथा प्रारब्धकर्मके वशतैं प्राप्तहुए जे शीतउष्ण सुख दुःख इत्यादिक द्वंद्वधर्म हैं तिन शीतउष्णादिक द्वंद्वधर्मोंविषेंभी जो पुरुष समान है । तथा जो पुरुष संगतैं रहित है । अर्थात् इसलोकविषे चेतनरूप करिकै प्रसिद्ध तथा अचेतनरूप करिकै प्रसिद्ध जितनेक पदार्थ हैं तिन सर्व पदार्थोंके यह पदार्थ अत्यंत रमणीक हैं याप्रकारके शोभन अध्यासतैं रहित है ॥ १८ ॥

किंच-

तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ॥
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) तुल्यनिंदास्तुतिः । मौनी । संतुष्टः । येन । केनचित् । अनिकेतः । स्थिरमतिः । भक्तिमान् । मे । प्रियः । नरः ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! तुल्य है निंदास्तुति जिसकूं तथा जो पुरुष मौनवाला है तथा जिस किस अन्नवस्त्रादिकों करिके संतुष्ट है तथा गृहतैं रहित है तथा स्थिर है मति जिसकी ऐसा भक्तिमान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं प्रिय है ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! किसीके दोषोंका कथन करणा याका नाम निंदा है और किसीके गुणोंका कथन करणा याका नाम स्तुति है । ऐसी निंदा तथा स्तुति दोनों तुल्य हैं जिसकूं अर्थात् जैसे अज्ञानी पुरुष आपणी स्तुतिकूं श्रवणकरिकै सुखी होवैहै तथा आपणी निंदाकूं श्रवणकरिकै दुःखी होवैहै तैसे जो पुरुष आपणी स्तुति निंदाकरिकै सुखदुःखकूं प्राप्त होता नहीं । तथा जो पुरुष मौनी है अर्थात् जिस पुरुषनैं आपणे वाकूइंद्रियका निरोध कऱ्या है । शंका—हे भगवन् ! आपणे शरीरयात्राके निर्वाहवासतै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूंभी वाक् इंद्रियका व्यापार अवश्यकरिकै अपेक्षित होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (संतुष्टो येन केनचित् इति) हे अर्जुन ! आपणे प्रयत्नतैं विनाही बलवान् प्रारब्धकर्मनैं प्राप्त करे जे शरीरकी स्थितिके हेतुरूप अन्नवस्त्रादिक पदार्थ हैं तिन जिसी किसी प्रकारके अन्नवस्त्रादिक पदार्थोंकरिकै ही जो पुरुष संतुष्ट है अर्थात् तिसतैं अधिक पदार्थोंकी इच्छातैं रहित है । तथा जो पुरुष अनिकेत है अर्थात् नियम पूर्वक एकस्थानविषे निवासतैं रहित है । तथा जो पुरुष स्थिरमति है । तहां स्थिर है क्या परमार्थ सत्यवस्तुविषयक है मति क्या बुद्धिकी वृत्ति जिसकी ताका नाम स्थिरमति है । इस प्रकारका जो भक्तिमान् पुरुष है सो भक्तिमान् पुरुष मैं परमेश्वरकूं आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत प्रियहै । तहां शास्त्रविषे निर्गुणब्रह्मके भक्तिका यह लक्षण कथन कऱ्याहै । तहां श्लोक—(एकांतभक्तिर्गोविंदे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् । अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे । लक्षणं भक्तियोगस्य

निर्गुणस्य उदाहृतम् ॥) अर्थ यह—सर्वप्रपंचविषे अस्ति भाति प्रियरूपकरिकै जो परमात्मादेवका दर्शन है यहही ता परमात्मादेवविषे एकांत भक्ति है अर्थात् अनन्य-भक्ति है। और विपरीतभावनाकी निवृत्ति आदिक प्रयोजनतैं रहित तथा विजातीयवृत्तिके व्यवधानतैं रहित ऐसी जा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकी प्रत्यक् अभिन्न परमात्मादेवविषे अखंडाकार वृत्तिरूप भक्ति है, यहही विद्वान् पुरुषोंनैं निर्गुणब्रह्म विषयक भक्तिका स्वरूप कथन करया है इति। इस प्रकारकी भक्तिवाला ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही इहां श्रीभगवान्नैं भक्तिमान् इस शब्दकरिकै तथा भक्त इस शब्दकरिकै कथन करयाहै। और इहां श्रीभगवान्नैं जो पुनःपुनः भक्तिका कथन करयाहै सो परमेश्वरकी अनन्यभक्तिही मोक्षकी प्राप्तिविषे पुष्कल कारण है इस अर्थके दृढ करावणेवासतै कथन करयाहै। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति—(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महा-त्मनः ॥) अर्थ यह—जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे अनन्यभक्ति है तथा जैसे परमात्मादेवविषे अनन्यभक्ति है तैसेही ब्रह्मवेत्तागुरुविषे अनन्य भक्ति है तिस महात्मा पुरुषकूं ही यह वेदकरिकै प्रतिपादित अर्थ प्रकाश-मान होवैं हैं ॥ १९ ॥

तहां (अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्) इत्यादिक श्लोकोंकरिकै निर्गुण अक्षरब्रह्मके चिंतन करणेहारे जीवन्मुक्त परमहंस संन्यासियोंके लक्षणरूप तथा स्वभावतैंही सिद्ध अद्वेष्टृत्वादिक धर्म कथन करे। यह वार्त्ता वार्तिकग्रंथविषे सुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करी है। तहां श्लोक—(उत्पन्नात्मावबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः। अयत्नतो भवंत्येव न तु साधनरूपिणः ॥) अर्थ यह—जिस पुरुषकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका आत्मसाक्षात्कार उत्पन्न हुआ है तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषके ते भगवत् उक्त अद्वेष्टृत्वादिक गुण विनाही प्रयत्नतैं स्वभावतैंही सिद्ध होवैं हैं। जैसे मुमुक्षुजनविषे ते अद्वेष्टृत्वादिक गुण प्रयत्नकरिकै साध्य होवैं हैं तथा साधनरूप होवैंहैं तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषविषे ते अद्वेष्टृत्वादिक गुण प्रयत्नकरिकै साध्य होवैं नहीं तथा साधनरूपभी होवैं नहीं इति। यहही अद्वेष्टृत्वादिक धर्म पूर्व कथन करेहुए स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणरूपकरिकै कथन करेहैं। तेही यह अद्वेष्टृत्वादिक प्रयत्नकरिकै संपादन करेहुए मुमुक्षुजनके मोक्षका साधनरूपक होवैं हैं। इस अर्थकूं प्रतिपादन करतेहुए श्रीभगवान् इस द्वादश अध्यायकी समाप्ति करैं हैं—

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ॥
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेतीव मे प्रियाः॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) ये । तु । धर्मामृतम् । इदम् । यथा । उक्तम् । पर्युपासते । श्रद्दधानाः । मत्परमाः । भक्ताः । ते । अतीव । मे । प्रियाः ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः जे मुमुक्षुजन श्रद्धावान् हुए तथा मैं परमेश्वरपरायण हुए इस पूर्व उक्त धर्मरूप अमृतकूं संपादन करैं हैं ते मुमुक्षु भक्तजनभी मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय हैं ॥ २० ॥

भा० टी०–हे अर्जुन! पूर्व कथनकरेहुए जीवन्मुक्त पुरुषोंतैं विलक्षण जे मोक्षकी इच्छावान् संन्यासी श्रद्धावान् हुए अर्थात् यह अद्वेष्टृत्वादिक धर्मही मुक्तिके साधन हैं याप्रकारकी विश्वासरूप श्रद्धाकरिकै युक्तहुए। तथा जे मुमुक्षुजन मत्परम हुए अर्थात् मैं अक्षर निर्गुणब्रह्मही हूं परम क्या प्राप्त होणेयोग्य निरतिशय गति जिन्होंकूं ऐसे मत्परमहुए इस पूर्वउक्त धर्मरूप अमृतकूं संपादन करैं हैं अर्था मोक्षरूप अमृतके साधन होणेतैं अमृतरूप अथवा अमृतकी न्याईं आस्वादन करणे योग्य होणेतैं अमृतरूप ऐसे जे (अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्) इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन करेहुए अद्वेष्टृत्वादिक धर्म हैं तिन धर्मरूप अमृतकूं जे मुमुक्षुजन प्रयत्नतैं संपादन करैं हैं ते भक्तजन अर्थात् मैं निरुपाधिक ब्रह्मकूं भजन करणेहारे पुरुष मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय हैं। यह श्रीभगवान्का वचन (प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः।) इस पूर्वउक्त वचनकरिकै सूचन करेहुए अर्थका उपसंहाररूप है। यातैं इस श्लोकका यह अर्थ सिद्ध भया। जिसकारणतैं इस अद्वेष्टृत्वादिक धर्मरूप अमृतकूं श्रद्धाकरिकै संपादन करताहुआ यह अधिकारी पुरुष परमेश्वरका अत्यंत प्रिय होवैहै तिसकारणतैं ज्ञानवान् पुरुषके स्वभावसिद्ध होणेतैं लक्षणरूपहुएभी यह अद्वेष्टृत्वादिक धर्म तत्त्वके जानणेकी इच्छावान् तथा विष्णुके परमपदके प्राप्तिकी इच्छावान् ऐसे मुमुक्षुजननैं आत्मज्ञानका उपायरूप करिकै अत्यंत प्रयत्नतैं संपादन करणे इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। पूर्वउक्त

सोपाधिक सगुणब्रह्मके ध्यानकी परिपक्वतातैं अनंतर निरुपाधिक निर्गुण ब्रह्मका चिंतन करणेहारा तथा अद्वेष्टृत्वादिक धर्मोंकरिकै युक्त तथा निरंतर श्रवण मनन निदिध्यासनकूं करताहुआ ऐसा जो उत्तम अधिकारी पुरुष है तिस उत्तम अधिकारी पुरुषकूं वेदांतवाक्योंके अर्थका तत्त्वसाक्षात्कार अवश्यकरिकै होवैहै । तिस तत्त्वसाक्षात्कारतैं ता अधिकारी पुरुषकूं अवश्यकरिकै मुक्तिकी प्राप्ति होवै है । यातैं मुक्तिका हेतुरूप जो वेदांतमहावाक्योंका अर्थ है तिस अर्थके अन्वययोग्य जो तत्पदार्थरूप परमेश्वर है सो तत्पदार्थरूप परमेश्वर इन अधिकारी जनोंनैं अवश्यकरिकै चिंतन करणा। यह अर्थ उपासनाकाण्डरूप इस मध्यके षट्ककरिकै सिद्ध भया ॥ २० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वाम्युद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्धनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशाऽध्यायप्रारंभः ।

तहां पूर्व प्रथम अध्यायतैं लेकै षष्ठ अध्यायपर्यंत प्रथमषट्कविषे त्वंपदार्थका निरूपण कऱ्या । और सप्तम अध्यायतैं लैके द्वादश अध्यायपर्यंत द्वितीयषट्कविषे तत्पदार्थका निरूपणा कऱ्या । अब तिन शोधित तत् त्वंपदार्थका अभेदरूप महावाक्यके अर्थकूं कथन करणेहारा तथा तत्त्वज्ञान है प्रधान जिसविषे ऐसा जो त्रयोदश अध्यायतैं आदिलैके अष्टादश अध्यायपर्यंत तृतीयषट्क हैं तिस तृतीयषट्कका आरंभ कहैं हैं । तहां पूर्व द्वादश अध्यायविषे (तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं आपणेविषे अधिकारी जनोंका मृत्युसंसारसागरतैं उद्धारकर्त्तापणा कथन कऱ्याथा । सो आत्मविषयक अज्ञानरूप मृत्युतैं इन अधिकारीजनोंका उद्धरण आत्माके ज्ञानतैं विना संभवता नहीं किंतु (तरति शोकमात्मवित् । तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते ।) इत्यादिक श्रुति स्मृतिवचन आत्माके ज्ञानतैं ही अविद्यारूप अज्ञानकी निवृत्ति कथन करैंहैं । यातैं जिस प्रकारके आत्मज्ञानकरिकै तिस मृत्युसंसारकी निवृत्ति होवैहै । तथा जिस तत्त्वज्ञानकरिकै युक्त अद्वेष्टृत्वादिक गुणोंवाले संन्यासी पूर्व द्वादश अध्यायविषे वर्णन करेथे, सो आत्मतत्त्वज्ञान अबी अवश्यकरिकै कहणे योग्य है । और सो तत्त्वज्ञान अद्वितीय परमात्माके

साथि जीवात्माके अभेदकूं ही विषय करैंहैं । काहेतैं जन्ममरणतैं आदि लैके जितनेक अनर्थ हैं तिन सर्व अनर्थोंका जीवब्रह्मका भेदभ्रमही कारण है । तहां श्रुति-(मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।) अर्थ यह-जो पुरुष इस अद्वितीय ब्रह्मविषे द्वैतभावकूं देखैहै सो पुरुष वारंवार जन्ममरणकूं प्राप्त होवै है इति । ऐसे भेदभ्रमकी निवृत्ति जीवब्रह्मके अभेदज्ञानतैं विना होवै नहीं किंतु जीवब्रह्मके अभेदज्ञानतैं ही ता भेदभ्रमकी निवृत्ति होवैहै । याकेविषे यह शंका होवै है । मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं मैं कर्ता हूं मैं भोक्ता हूं इस प्रकारका अनुभव सर्वप्राणियोंविषे होवै है । यातैं यह जीवात्मा तौ सुखदुःखा-दिरूप संसारवाले हैं तथा शरीर शरीरविषे भिन्नभिन्न हैं । जो कदाचित् सर्व शरीरोंविषे एकही आत्मा होवै तौ एक शरीरविषे सुख दुःखके अनुभव हुए सर्व शरीरविषे ता सुखदुःखका अनुभव होणा चाहिये सो होवा नहीं । यातैं शरीर-शरीरोंविषे आत्मा भिन्नभिन्न है और परमात्मा देव तौ ता सुखदुःखादिरूप संसारतैं रहित है तथा एक है । ऐसे अनेक संसारी जीवोंका एक असंसारी परमात्माके साथि अभेद संभवता नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्त हुए सो सुखदुःखादि-रूप संसार तथा भिन्नपणा अविद्याकल्पित अनात्मवस्तुके ही धर्म हैं । जीवात्माका संसारीपणा तथा भिन्नपणा धर्म है नहीं याः प्रकारका विवेचन अवश्य करया चाहिये । तिस विवेचनके अर्थ देह इंद्रिय अंतःकरण प्राण इत्यादिरूप क्षेत्रोंतैं भिन्न करिकै क्षेत्रज्ञनामा जीवात्मा पुरुष तिन सर्व क्षेत्रोंविषे एकही है तथा निर्विकार है इस अर्थके प्रतिपादन करणेवासतै इस त्रयोदश अध्यायविषे क्षेत्रक्षेत्रज्ञका विवेचन करैंहैं । तहां पूर्व सप्तम अध्यायविषे श्रीभगवान्नैं जा भूमिआदिक अष्टप्रकारकी अपरानामा प्रकृति क्षेत्रज्ञरूपकरिकै सूचन करीथी तथा जीवरूप परा प्रकृति क्षेत्रज्ञरूप करिकै सूचन करीथी तिसी क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूप दोनों प्रकृतियोंके स्वरूपकूं भिन्नभिन्नकरिकै निरूपण करतेहुए श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहैंहैं-

श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः ॥ १ ॥

(पदच्छेदः) इदम् । शरीरम् । कौंतेय । क्षेत्रम् । इति । अभिधीयते । एतत् । यः । वेत्ति । तम् । प्राहुः । क्षेत्रज्ञम् । इति । तद्विदः ॥ १ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह शरीर क्षेत्र इस नामकरिकै कह्याजावै है और इस क्षेत्रकूं जो जानैं है तिसकूं क्षेत्रके जानणेहारे पुरुष क्षेत्रज्ञ इस नामकरिकै कथनकरैं हैं ॥ १ ॥

भा० टी०—हे कौंतेय ! अर्थात् हे कुंतीमाताके पुत्र अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंसहित तथा चतुष्टय अंतःकरणसहित तथा पंचप्राणोंसहित जो यह सुखदुःखके भोगका आयतनरूप शरीर है सो शरीर क्षेत्र इस नामकरिकै कह्या जावैहै। अब क्षेत्रशब्दका अर्थ निरूपण करैंहैं । तहां अविद्याकरिकै जो आत्मक्षय करैहै तथा विद्याकरिकै आत्माकूं रक्षण करैहै ताका नाम क्षेत्र है । अथवा रागद्वेषादिक दोषोंकरिकै युक्त पुरुष क्षयकूं प्राप्त होवै जिस करिकै ताका नाम क्षेत्र है । अथवा शमदमादिक साधनयुक्त पुरुषकूं जन्ममरणादिक अर्थरूप क्षयतैं जो रक्षण करैहै ताका नाम क्षेत्र है । अथवा सर्वकालविषे दीपशिखाकी न्याईं जो आप क्षयकूं प्राप्त होता जावैहै ताका नाम क्षेत्र है । अथवा सुखदुःखादिरूप फलकी उत्पत्तिविषे जो लोकप्रसिद्ध भूमिरूप क्षेत्रकी न्याईं आचरण करैहै ताका नाम क्षेत्र है इति । ऐसे इस शरीररूप क्षेत्रकूं जो जानैहै अर्थात् इस शरीररूप क्षेत्रविषे जो अहंमम अभिमान करैहै तिसकूं क्षेत्रज्ञ इस नामकरिकै कथन करैंहैं । तात्पर्य यह—जैसे कृषीकरणेद्वारा कृषीवल पुरुष भूमिरूप क्षेत्रके फलका भोक्ता होवैहै तैसे यह जीवात्माभी इस संघातरूप क्षेत्रके सुखदुःखरूप फलका भोक्ता होवै है । यातैं इस जीवात्माकूं क्षेत्रज्ञ इस नामकरिकै कथन करैंहैं । शंका—हे भगवन् ! इस जीवात्माकूं क्षेत्रज्ञ इसनामकरिकै कौन कथन करैंहैं ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (तद्विदः इति) हे अर्जुन ! यह क्षेत्र असत् जड दुःखरूप है । और यह क्षेत्रज्ञ आत्मा सत् चित् आनंदरूप है इस प्रकारतैं इस क्षेत्र क्षेत्रज्ञ दोनोंके भेदकूं जानणेहारे जे विवेकी पुरुष हैं ते विवेकी पुरुष ही इस जीवात्माकूं क्षेत्रज्ञ इस नामकरिकै कथन करैंहैं इति । इहां किसीके मूलपुस्तकविषे (श्रीभगवानुवाच ॥ इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते) इस श्लोकतैं पूर्व अर्जुनका प्रश्नरूप यह श्लोक है—(अर्जुन उवाच ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च । एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥) अर्थ यह—हे केशव ! प्रकृति क्या है तथा पुरुष क्या है तथा क्षेत्र क्या है तथा क्षेत्रज्ञ क्या है तथा ज्ञान क्या है तथा ज्ञेय क्या है, इस सर्व अर्थके जानणेकी मैं इच्छा करता हूं ।

आप कृपा करिकै सो सर्व अर्थ हमारेप्रति कथन करो इति । परंतु यह श्लोक श्रीभाष्यकारोंतैं आदिलैके किसीभी टीकाकारनैं ग्रहण कऱ्या नहीं यातैं यह जान्या जावै है यह अर्जुनके प्रश्नका श्लोक पश्चात् किसी विद्वान्नैं पाया है इसी कारणतैं इस त्रयोदश अध्यायके प्रारंभविषे यह श्लोक हमने लिख्या नहीं ॥ १ ॥

इस प्रकार देह इंद्रिय अंतःकरणादिरूप क्षेत्रतैं विलक्षण स्वप्रकाश क्षेत्रज्ञकूं कथनकरिकै अब तिस क्षेत्रज्ञनामा जीवात्माका जो असंसारी परमात्माके साथि एकतारूप पारमार्थिक स्वरूप है तिस स्वरूपकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

(पदच्छेदः) क्षेत्रज्ञम् । च । अपि । माम् । विद्धि । सर्वक्षेत्रेषु । भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः । ज्ञानम् । यत् । तत् । ज्ञानम् । मतम् । मम ॥ २ ॥

(पदार्थः) हे भारत ! पुनः सर्वक्षेत्रोंविषे स्थित क्षेत्रज्ञकूं तूं मैं अद्वितीयब्रह्मरूप ही जान ऐसे क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंका जो ज्ञान है सो ज्ञानही मैं परमेश्वरकूं अभिमत है ॥ २ ॥

भा० टी०—हे भारत ! अर्थात् हे भरतराजाके वंशविषे उत्पन्नहुआ अर्जुन ! अथवा आत्माकार वृत्तिका नाम भा है ता आत्माकार अखंडवृत्तिविषे जो सर्वदा रमण करैहै अथवा ता अखंडवृत्तिविषे जो सर्वदा प्रीतिवाला है ताका नाम भारत है अर्थात् हे आत्मज्ञानविषे प्रीतिवाला अर्जुन ! पूर्वउक्त देहइंद्रियादिसंघातरूप सर्व क्षेत्रोंविषे अधिष्ठानरूप करिकै स्थित जो एक क्षेत्रज्ञ है जो क्षेत्रज्ञ स्वप्रकाशचैतन्यरूप है तथा नित्य है तथा विभु है तथा अविद्याकरिकै आरोपित हैं कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक धर्म जिसविषे ऐसे तिस क्षेत्रज्ञकूं तूं अर्जुन तिस अविद्याकल्पित रूपका परित्याग करिकै मैं परमेश्वररूप जान अर्थात् अंतःकरणादिक सर्व उपाधियोंतैं रहित तिस प्रत्यक् आत्मरूप क्षेत्रज्ञकूं तूं असंसारी अद्वितीय ब्रह्मानंदरूप जान । तहां श्रुति—(अयमात्मा ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म ।) अर्थ यह— यह जीवात्मा ब्रह्मरूप है तथा मैं ब्रह्मरूप हूं । तथा सो सत्-

ब्रह्म तूं है । तथा यह आनंदरूप प्रज्ञाननामा जीवात्मा ब्रह्मरूप है इति । हे अर्जुन ! इस पूर्वउक्त क्षेत्रका तथा क्षेत्रज्ञका जो ज्ञान है अर्थात् मायाकरिकै कल्पित होणेतैं यह क्षेत्र तौ रज्जुसर्पकी न्याईं मिथ्यारूप है । और तिस क्षेत्ररूप भ्रमका अधिष्ठान होणेतैं यह क्षेत्रज्ञनामा आत्मा परमार्थ सत्य है । याप्रकारतैं जो तिस क्षेत्रका तथा क्षेत्रज्ञका ज्ञान है सोईही ज्ञान मोक्षका साधन होणेतैं मैं परमेश्वरकूं ज्ञानतैं भिन्न दूसरे जितनेक लौकिक वैदिक ज्ञान हैं ते सर्व ज्ञान ता अविद्याके विरोधी हैं नहीं । यातैं ते सर्वज्ञान अज्ञानरूपकरिकै संमत हैं अर्थात् तिसी ज्ञानकूं मैं परमेश्वर अविद्याका विरोधी प्रकाशरूप मानता हूं । इस प्रकारके ज्ञानरूप ही हैं इति । इहां किसी टीकाविषे तौ (क्षेत्रज्ञं चापि) इस वचनविषे जो चकार है ता चकारकरिकै पूर्वउक्त क्षेत्रकाभी ग्रहण कऱ्या है । अर्थात् क्षेत्रज्ञरूप तथा क्षेत्ररूप मैं परमेश्वरकूं ही तूं जान । तहां क्षेत्रज्ञनामा जीवात्माकी ब्रह्मरूपताविषे तौ पूर्वही श्रुतिरूप प्रमाण कथन कऱ्या है । और क्षेत्रकी ब्रह्मरूपताविषे तौ (ब्रह्मैवेदं सर्वं, सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।) इत्यादिक अनेक श्रुतिवचन प्रमाणरूप हैं ॥ २ ॥

तहां पूर्व दो श्लोकोंकरिकै संक्षेपतैं कथन करेहुए अर्थकूं अब विस्तारतैं कहणेवासतै श्रीभगवान् आरंभ करैं हैं–

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ॥
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

(पदच्छेदः) तत् । क्षेत्रम् । यत् । च । यादृक् । च । यद्विकारि । यतः । च । यत् । सः । च । यः । यत्प्रभावः । च । तत् । समासेन । मे । शृणु ॥ ३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो शरीररूप क्षेत्र जिसस्वभाववाला है तथा जिसइच्छादिकधर्मवाला है तथा जिस इंद्रियादिकविकारोंवाला है तथा जिस क्षेत्ररूप कारणतैं जो कार्य उत्पन्न होवै है तथा सो क्षेत्रज्ञ जिसस्वभाववाला है तथा जिसप्रभाववाला है सो क्षेत्रज्ञका स्वरूप मेरे वचनतैं तूं संक्षेपकरिकै श्रवण कर ॥ ३ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! (इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।) इस पूर्व उक्त वचनकरिकै कथन कऱ्या जो देह, इंद्रिय, अंतःकरण इत्यादिक जडवर्गरूप क्षेत्र है सो क्षेत्र आपणे स्वरूपकरिकै जिस जड दृश्य परिच्छिन्न आदिक

स्वभाववाला है तथा सो क्षेत्र जिन इच्छाद्वेषादिक धर्मोंवाला है । तथा सो क्षेत्र जिन इंद्रियादिक विकारोंकरिकै युक्त है । तथा जिस क्षेत्ररूप कारणतैं जो कार्य उत्पन्न होवै है । अथवा (यतश्च यत्) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा । सो क्षेत्र जिस प्रकृतिपुरुषके संयोगतैं उत्पन्न होवै है । तथा जिस स्थावर जंगमादिक भेदकरिकै भिन्नभिन्न है इति । इतने करिकै क्षेत्रके स्वरूपका विचार कऱ्या । अब क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपका विचार करैं हैं (स च इति) हे अर्जुन ! (एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।) इस वचनकरिकै पूर्व कथन कऱ्या जो क्षेत्रज्ञ है सो क्षेत्रज्ञभी आपणे स्वरूपतैं जिस स्वप्रकाश चैतन्य आनंदस्वभाववाला है, तथा उपाधिकृत जिन शक्तिरूप प्रभावोंवाला है इति । तिन सर्व विशेषणों करिकै विशिष्ट क्षेत्रके यथार्थ स्वरूपकूं तथा क्षेत्रज्ञके यथार्थ स्वरूपकूं तूं अर्जुन मैं परमेश्वरके वचनतैं संक्षेपकरिकै श्रवण कर अर्थात् तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपकूं श्रवणकरिकै तूं निश्चय कर ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! पूर्व श्लोकविषे आपनैं यह वचन कह्याथा । तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपकूं तूं मेरे वचनतैं संक्षेपकरिकै श्रवण कर इति । सो यह आपका कहणा तबी संभवै जबी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप पूर्व किसीनैं विस्तारतैं कथन कऱ्या होवै । काहेतैं जो अर्थ पूर्व किसीनैं विस्तारतैं कथन करीताहै सो अर्थही पश्चात् संक्षेपकरिकै कथन कऱ्या जावैहै । पूर्व विस्तारतैं नहीं कथन करेहुए अर्थका संक्षेपकरिकै कथन संभवता नहीं । सो इस क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप पूर्व किन्होंनैं विस्तारकरिकै कथन कऱ्या है । जिस विस्तारकरिकै कथन करे हुए अर्थका आप अबी संक्षेपकरिकै कथन करते हो? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् श्रोतापुरुषोंके बुद्धिविषे तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपविषय प्रीतिके उत्पन्न करणेवासतै तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपकी स्तुति करते हुए कहैं हैं—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

(पदच्छेदः) ऋषिभिः । बहुधा । गीतम् । छंदोभिः । विविधैः । पृथक् । ब्रह्मसूत्रपदैः । च । एव । हेतुमद्भिः । विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप वसिष्ठादिक ऋषियोनैं बहुतप्रकारतैं निरूपण कऱ्याहै तथा बहुतप्रकारके ऋगादिक वेदोंनैंभी भिन्नभिन्नकरिकै

कथन कऱ्याहै तैंथा युक्तियोंवाले तथानिश्चित अर्थवाले ऐसे ब्रह्मसूत्रपदोंनैं भी सो स्वरूप बहुतप्रकारतैं कथन कऱ्या है ॥ ४ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! यह क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप वसिष्ठादिक ऋषियोंनैंभी योगशास्त्रविषे धारणाध्यानका विषयरूपकरिकै बहुतप्रकारतैं निरूपण कऱ्या है। इतने कहणे करिकै श्रीभगवान्नैं ता स्वरूपविषे योगशास्त्रकरिकै प्रतिपाद्यपणा कथन कऱ्या। तथा विविध छंदोंनैंभी सो स्वरूप पृथक् पृथक्करिकै निरूपण कऱ्या है अर्थात् नित्यनैमित्तिक काम्यकर्मादिकोंकूं विषय करणेहारे जे ऋगादिक वेदोंके मंत्र हैं तथा ब्राह्मण हैं तिन्होंनैंभी भिन्न भिन्न करिकै सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप निरूपण कऱ्या है इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं ता स्वरूपविषे कर्मकांडकरिकै प्रतिपाद्यपणा कथन कऱ्या। तथा ब्रह्मसूत्रपदोंनैंभी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप बहुतप्रकारतैं निरूपण कऱ्या है। तहां ब्रह्म इस पदका सूत्र इस पदके साथि तथा पद इस पदके साथि अन्वय करणेतैं ब्रह्मसूत्र ब्रह्मपद यह दोप्रकारके वचन सिद्ध होवैं हैं। तहां जिन वाक्योंनैं किंचित्मात्र व्यवधानकरिकै ब्रह्मका प्रतिपादन करीता है तिन वाक्योंका नाम ब्रह्मसूत्र है जैसे—(यतो वा इमानि भूतानि जायंते । येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति तद्ब्रह्म ।) अर्थ यह—जिसतैं यह सर्व भूत उत्पन्न होवैं हैं। तथा उत्पन्न हुए ते सर्व भूत जिस करिकै जीवते हैं। तथा विनाशकूं प्राप्तहुए ते सर्वभूत जिसविषे लय भावकूं प्राप्त होवैं हैं सोईही ब्रह्म है इति। इत्यादिक ब्रह्मके तटस्थ लक्षणकूं प्रतिपादन करणेहारे जे उपनिषद्वाक्य हैं तिन वाक्योंका नाम ब्रह्मसूत्र है और जिनवाक्योंनैं साक्षात्ही ता ब्रह्मका प्रतिपादन करीता है तिन वाक्योंका नाम ब्रह्मपद है। जैसे ब्रह्मके स्वरूपलक्षणकूं प्रतिपादन करणेहारे (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ।) इत्यादिक उपनिषद्वाक्य हैं ऐसे ब्रह्मसूत्ररूप वाक्योंनैं तथा ब्रह्मपदरूप वाक्योंनैंभी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप बहुत प्रकारतैं निरूपण कऱ्या है। कैसे हैं ते ब्रह्मसूत्रपदरूपवाक्य—हेतुमत् हैं अर्थात् इष्ट अर्थके साधक अनेक युक्तियोंके प्रतिपादक हैं। ते युक्तियां यह हैं—छांदोग्य उपनिषद्विषे उद्दालक ऋषिनैं श्वेतकेतुपुत्रके प्रति यह वचन कह्या है—(सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।) अर्थ यह—हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो ! यह दृश्यमान जगत् आपणी उत्पत्तितैं पूर्व सत्रूप होता भया। सो सत् एक अद्वितीयरूप होता भया इति। इसप्रकारका उपक्रमकरिकै पश्चात् यह वचन कह्या है—(तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वि-

तीयं तस्मादसतः सदजायत ।) अर्थ यह—केईक वादी तौ ऐसे कहैं हैं। यह दृश्यमान जगत् आपणी उत्पत्तितैं पूर्व असत् होता भया सो असत् एक अद्वितीयरूप होताभया । तिस असत्कारणतैं यह सत्कार्य उत्पन्न होता भया इति । इस वचनकरिकै नास्तिकोंके मतका कथनकरिकै तिसतैं अनंतर सो उद्दालक ऋषि या प्रकारका वचन कहता भया । (कुतस्तु खलु सौम्यैवं स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेत ।)अर्थ यह—हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ! यह नास्तिकोंका कहणा कैसे संभवैगा ? किंतु नहीं संभवैगा । जिसकारणतैं असत् कारणतैं सत्कार्यकी उत्पत्ति कदाचित्भी होती नहीं जो कदाचित् असत्तैंभी सत्की उत्पत्ति होतीहोवै तौ असत् वंध्यापुत्रतैं भी सत्पुत्रकी उत्पत्ति होणी चाहिये । और होती नहीं। इत्यादिक अनेक प्रकारकी युक्तियोंकूं प्रतिपादन करणेहारे ते ब्रह्मसूत्रपदरूप वचन हैं। पुनः कैसे हैं ते ब्रह्मसूत्रपदरूप वचन—विनिश्चित हैं अर्थात् उपक्रम उपसंहार वाक्योंकी एकवाक्यताकरिकै संशयतैं रहित अर्थके प्रतिपादक हैं। इस प्रकारके ब्रह्मसूत्रपदरूप वाक्योंनैंभी सो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप बहुत प्रकारतैं निरूपण कऱ्याहै। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपविषे ज्ञानकांडकरिकै प्रतिपाद्यपणा निरूपण कऱ्या । इस प्रकार पूर्व वसिष्ठादिक ऋषियोंनैं तथा ऋगादिक वेदोंके मंत्रोंनैं तथा ब्रह्मसूत्रपदोंनैं अत्यंत विस्तारतैं कथन कऱ्या जो क्षेत्रक्षेत्रज्ञका यथार्थ स्वरूप है तिसी स्वरूपकूं मैं कृष्ण भगवान् तैं अर्जुनके ताईं संक्षेप करिकै कथन करताहूं । तिसकूं तूं श्रवण कर इति । अथवा (ब्रह्मसूत्रपदैः) इस वचनविषे ब्रह्मसूत्र होवैं तेही पद होवैं या प्रकारका कर्मधारय समास अंगीकार करणा । तहां (आत्मेत्येवोपासीत) अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष सर्वत्र व्यापक आत्मा मैं हूं या प्रकारका चिंतन करै। इत्यादिक वाक्य तौ विद्यासूत्र कहे जावैं हैं। और (न स वेद यथा पशुः) अर्थ यह—आपणे आत्मातैं देवताकूं भिन्न मानिकै जो पुरुष ता देवताकी उपासना करैहै सो भेददर्शी पुरुष पशुकी न्याईं किंचित्मात्रभी जानता नहीं । इत्यादिक वचन तौ अविद्यासूत्र कहे जावैं हैं इति । और किसी टीकाविषे तौ (ब्रह्मसूत्रपदैः) इस वचनकरिकै (जन्माद्यस्य यतः) इत्यादिक वेदांतसूत्रोंका ग्रहण कऱ्या है ॥ ४ ॥

इस प्रकार क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूप जानणेविषे अर्जुनकी रुचि उत्पन्नकरिकै अब श्रीभगवान् तिस अर्जुनके ताईं दो श्लोकोंकरिकै प्रथम क्षेत्रका स्वरूप कथन करैं हैं—

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

(पदच्छेदः) महाभूतानि । अहंकारः । बुद्धिः । अव्यक्तम् । एव । च । इंद्रियाणि । दश । एकम् । च । पंच । च । इंद्रियगोचराः । इच्छा । द्वेषः । सुखम् । दुःखम् । संघातः । चेतना । धृतिः । एतत् । क्षेत्रम् । समासेन । सविकारम् । उदाहृतम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पंचमहाभूत अहंकार बुद्धि तथा अव्यक्त तथा दश श्रोत्रादिकइंद्रिय तथा एक मन तथा श्रोत्रादिकइंद्रियोंके विषय शब्दादिकपंच तथा इच्छा द्वेष सुख दुःख संघात चेतना धृति यह सर्व विकारसहित संक्षेपकरिकै क्षेत्ररूप कहे हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! पृथिवी जल तेज वायु आकाश यह जे पंचमहाभूत हैं, तथा तिन पंचमहाभूतोंका कारण जो अभिमानलक्षण अहंकार है, तथा तिस अहंकारका कारणरूप जो अध्यवसायलक्षण महत्तत्त्वनामा बुद्धि है, तथा तिस महत्तत्त्वनामा बुद्धिका कारणरूप तथा सत्त्वरजतमगुणात्मक ऐसा जो प्रधानरूप अव्यक्त है । जो अव्यक्त सर्वका कारणरूप ही है किसीकाभी कार्यरूप है नहीं । यह महाभूतोंतैं आदिलैके अव्यक्तपर्यंत अष्टप्रकारकी प्रकृति कहीजावैहै यह अर्थ सांख्यमतके अनुसार कथन कऱ्या । अब वेदांतमतके अनुसार अर्थ करैहैं–तहां अव्यक्तशब्दकरिकै तौ अनिर्वचनीय अव्याकृतका ग्रहण करणा जिस अव्याकृतकूं (मम माया दुरत्यया) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं मायानामा परमेश्वरकी शक्तिरूप कथन कऱ्याहै । और बुद्धिशब्दकरिकै तौ सृष्टिके आदिकालविषे स्रष्टव्य प्रपंचविषयक मायाका वृत्तिरूप ईक्षणका ग्रहण करणा । और अहंकारशब्दकरिकै तौ तिस ईक्षणतैं अनंतर भावी ता मायाका वृत्तिरूप बहुत होणेके संकल्पका ग्रहण करणा । तिस संकल्पतैं अनंतर आकाशादिक क्रमकरिकै पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति ग्रहणकरणी इति । और सांख्यशास्त्रकरिकै सिद्ध जे अव्यक्त महातत्त्व अहंकार यह तीन तत्त्व हैं ते तीनों वेदांतसिद्धांतविषे अंगीकार करे नहीं । उलटा (ईक्षतेर्नाश-

ब्दम्) इत्यादिक सूत्रोंके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंनैं ते सांख्यशास्त्रकल्पितप्रधानादिक पदार्थ बहुत विस्तारतैं खंडन करेहैं । तहां (मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।) इस श्रुतिकरिकै प्रतिपादन करी जा मायानामा परमेश्वरकी शक्ति है सा मायाशक्तिही इहां श्रीभगवान्नैं अव्यक्तशब्दकारिकै कथन करीहै । और (तदैक्षत) इस श्रुतिनैं कथन कऱ्या जो स्रष्टव्य जगत्विषयक मायाका वृत्तिरूप ईक्षण है सो ईक्षणही इहां श्रीभगवान्नैं बुद्धिशब्दकारिकै कथन कऱ्याहै । और (बहुस्यां प्रजायेय) इस श्रुतिनैं कथन कऱ्या जो ता मायाका वृत्तिरूप बहुत होणेका संकल्प है सो परमेश्वरका संकल्प ही इहां श्रीभगवान्नैं अहंकारशब्दकारिकै कथन कऱ्याहै । तिसतैं अनंतर (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी ।) इस श्रुतिनैं यथाक्रमतैं आकाशदिक पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति कथन करीहै । इत्यादिक श्रुतिप्रमाणकरिकै सिद्ध यह वेदांतपक्षही श्रेष्ठ है इति । और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण यह जे पंच ज्ञानइंद्रिय हैं । तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ यह जे पंच कर्मइंद्रिय हैं यह दोनों मिलिके दश इंद्रिय होवैं हैं । तथा संकल्पविकल्परूप जो एक मन है । तथा तिन श्रोत्रादिक दश इंद्रियोंके जे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह पंच विषय हैं । तहां श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रियोंके तौ यह शब्दादिक पंच ज्ञाप्यत्वरूप कारिकै विषय हैं और वागादिक पंच कर्मइंद्रियोंके तौ ते शब्दादिक पंच कार्यत्वरूपकारिकै विषय हैं । तहां पूर्व कथन करी हुई अष्ट प्रकारकी प्रकृति पंच ज्ञानइंद्रिय, पंच कर्मइंद्रिय, पंच विषय, एक मन इन सर्वोंकूं सांख्यशास्त्रवाले चौवीस तत्त्व कहैं हैं इति । और सुखविषे तथा सुखके साधनोंविषे यह सुख हमारेकूं प्राप्त होवै तथा यह सुखके साधन हमारेकूं प्राप्त होवैं या प्रकारकी स्पृहारूप जा चित्तकी वृत्तिविशेष है जिसकूं शास्त्रविषे कामभी कहैंहैं तथा रागभी कहैं हैं ताका नाम इच्छा है और दुःखविषे तथा दुःखके साधनोंविषे यह दुःख हमारेकूं मत प्राप्त होवै तथा दुःखके साधन हमारेकूं मत प्राप्त होवैं या प्रकारकी जा पूर्वउक्त स्पृहाका विरोधी चित्तकी वृत्तिविशेष है जिसकूं शास्त्रविषे क्रोधभी कहैं हैं तथा ईर्ष्याभी कहैंहैं ताका नाम द्वेष है । और निरुपाधिक इच्छाका विषयभूत तथा धर्म है असाधारण कारण जिसका तथा परमात्मसुखका अभिव्यंजक ऐसी जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम सुख है ।

और निरुपाधिक द्वेषका विषयभूत तथा अधर्म है असाधारण कारण जिसका ऐसी जा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम दुःख है। और पंचमहाभूतोंका परिणामरूप ऐसा जो इंद्रियों सहित शरीर है ताका नाम संघात है। और स्वरूपज्ञानका अभिव्यंजक तथा प्रमाण है असाधारण कारण जिसका ऐसी जा प्रमाज्ञाननामा चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम चेतना है। और व्याकुलताकूं प्राप्त हुए देहइंद्रियोंके स्थित करणेका हेतुरूप जो प्रयत्न है ताका नाम धृति है। इहां इच्छादिकोंका ग्रहण अंतःकरणके सर्व धर्मोंका उपलक्षण है ते अंतःकरणके धर्म श्रुतिविषे यह कहे हैं। तहां श्रुति–(कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव।) अर्थ यह–इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, वृत्तिज्ञान, भय यह सर्व मनरूपही हैं इति। यह श्रुतिवचन मृद्घटः इस वचनकी न्याईं मनरूप उपादानकारणके साथि कामादिक कार्योंका अभेद कथनकरिकै तिन कामादिक कार्योंविषे मनका धर्मपणा कथन करैहै। इस प्रकार पंचमहाभूतोंतैं आदिकलैके धृतिपर्यंत पूर्व कथन करे हुए जितनेक जडपदार्थ हैं ते सर्व जडपदार्थ क्षेत्रज्ञनामा साक्षीकरिकै भास्यमान होणेतैं तिस क्षेत्रज्ञ साक्षीतैं भिन्न हैं। ऐसे यह सर्व जड पदार्थ हमनैं संक्षेपकरिकै क्षेत्र इस नामकरिकै कथन करे हैं। तथा ते क्षेत्ररूप सर्व पदार्थ भास्य अचेतनरूपही हैं। शंका–हे भगवन्! शरीर इंद्रियोंका संघात ही चेतनरूप होणेतैं क्षेत्रज्ञ है इस प्रकार लोकायतिक मानैंहैं। और चेतनरूप क्षणिक विज्ञान ही आत्मा है, इस प्रकार सुगत मानैं हैं। और इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान यह सर्व आत्माके लिंग हैं इस प्रकार नैयायिक मानैं हैं। यातैं पंचमहाभूतोंतैं आदिलैके धृतिपर्यंत यह सर्व क्षेत्ररूप हैं यह आपका कहणा कैसे संभवैगा? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता क्षेत्रके लक्षणकूं कहैंहैं (सविकारमिति) तहां जन्मतैं आदिलैके विनाशपर्यंत जो परिणाम ताका नाम विकार है तिस विकारसहित जो होवै ताका नाम सविकार है अर्थात् उत्पत्तिनाशादिक विकारोंवालेका नाम सविकार है। तहां पंचमहाभूतोंतैं आदिलैके धृतिपर्यंत जे पदार्थ पूर्व कथन करे हैं ते सर्वपदार्थ सविकाररूप हैं। यातैं ते सर्वपदार्थ तिस विकारके साक्षी होइसकैं नहीं, काहेतैं आपणा उत्पत्ति विनाश आपणे करिकै देख्या जाता नहीं। और ता उत्पत्ति नाशतैं भिन्न दूसरेभी जितनेक आपणे धर्म हैं तिन धर्मोंकाभी

आपणे दर्शनतैं विना दर्शन संभवता नहीं। जिस कारणतैं धर्मीके दर्शनतैं अनंतरही ताके धर्मोंका दर्शन होवै है। तहां जो कदाचित् आपणेकरिकै ही आपणा दर्शन मानियें तौ ता दर्शनरूप क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा आपणेविषे प्राप्त होवैगा। सो एकही वस्तुविषे एकही कालविषे एकही क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा अत्यंत विरुद्ध है यातैं सविकार वस्तु ता उत्पत्तिनाशादिक विकारका साक्षी होइसकै नहीं किंतु निर्विकार वस्तुही तिन सर्व विकारोंका साक्षी सिद्ध होवै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। विकारीपणाही तिस क्षेत्रका चिह्न है अर्थात् जिस जिस पदार्थविषे सो विकारीपणा है सो सो पदार्थ क्षेत्ररूपही जानणा। कोई नाम लैके परिगणन ता क्षेत्रका चिह्न है नहीं ॥ ५ ॥ ६ ॥

इस प्रकार क्षेत्रके स्वरूपका प्रतिपादन करिकै तिस क्षेत्रज्ञकूं क्षेत्रतैं भिन्न करिकै विस्तारतैं प्रतिपादन करणेवासतै तिस क्षेत्रज्ञके ज्ञानकी योग्यता अर्थ श्रीभगवान् प्रथम अमानित्वादिक वीस साधनोंकूं पंचश्लोकोंकरिकै कथन करैं हैं–

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

(पदच्छेदः) अमानित्वम्। अदम्भित्वम्। अहिंसा। क्षांतिः- आर्जवम्। आचार्योपासनम्। शौचम्। स्थैर्यम्। आत्मविनि। ग्रहः ॥ ७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अमानिपणा अदंभिपणा अहिंसा क्षांति आर्जव आचार्यकी उपासना शौच स्थैर्य आत्माका निग्रह यह सर्व ज्ञानके साधन होणेतैं ज्ञानरूप हैं ॥ ७ ॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! तहां जे गुण आपणेविषे विद्यमान हैं तथा जे गुण आपणेविषे नहीं विद्यमान हैं ऐसे विद्यमान गुणोंकरिकै तथा अविद्यमान गुणोंकरिकै जा आपणी स्तुति है ताका नाम मानीपणा है ता मानीपणेतैं जो रहित होणा है ताका नाम अमानित्व है १। और लाभ पूजा ख्यातिके वासतै जो लोकोंके आगे आपणे धर्मोंका प्रगट करणा है ताका नाम दंभीपणा है ता दंभीपणेतैं जो रहित होणा है ताका नाम अदंभित्व है २। और शरीर मन वाणीकरिकै जो प्राणियोंका पीडन है ताका नाम हिंसा है ता हिंसातैं जो रहित होणा है

ताका नाम अहिंसा है ३ । और चित्तके क्रोधादिक विकारोंका कारणरूप जो दुष्ट पुरुषोंकृत अपराध है ता अपराधके प्राप्त हुएभी जो निर्विकार चित्तपणेकरिकै तिस अपराधका सहन करणा है ताका नाम क्षांति है ४ । और जैसा आपणे हृदयविषे होवै तैसाही बाह्य व्यवहार करणा याप्रकारका जो अकुटिलपणा है ताका नाम आर्जव है अर्थात् अन्यप्राणियोंकी वंचना करणेतैं रहित होणेका नाम आर्जव है ५ । और ब्रह्मविद्याका उपदेश करणेहारा जो आचार्य है तिस आचार्यका जो श्रद्धाभक्तिपूर्वक पूजन नमस्कारादिकोंकरिकै सेवन है ताका नाम आचार्योपासन है ६ । और शुद्धिका नाम शौच है । सो शौच दो प्रकारका होवै है— एक तौ बाह्य शौच होवैहै और दूसरा अंतरशौच होवैहै । तहां जलमृत्तिकाकरिकै शरीरके मलोंका जो प्रक्षालन है ताका नाम बाह्यशौच है । और विषयोंविषे दोषदर्शनरूप विरोधी वासनावोंकरिकै मनके रागद्वेषादिक मलोंकी जो निवृत्ति करणी है ताका नाम अंतरशौच है ७ । और मोक्षके साधनोंविषे प्रवृत्त हुए पुरुषोंकूं अनेकप्रकारके विघ्नोंके प्राप्त हुएभी तिस उद्यमका न परित्याग करिकै जो पुनःपुनः प्रयत्नकी अधिकता है ताका नाम स्थैर्य है ८ । और देह इंद्रियोंका संघातरूप आत्माका मोक्षतैं प्रतिकूलविषे स्वभावतैं प्राप्त प्रवृत्तिकूं निरुद्ध करिकै जो मोक्षके साधनोंविषेही व्यवस्थापन है ताका नाम आत्मविनिग्रह है ९ । यह अमानित्वादिक सर्व ज्ञानके साधन होणेतैं ज्ञानरूप कहेहैं । इस प्रकारतैं इस श्लोकका तथा वक्ष्यमाण श्लोकोंका एकादश श्लोकके (एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम्) इस वचनके साथि अन्वय करणा ॥ ७ ॥

किंच—

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

(पदच्छेदः) इंद्रियार्थेषु । वैराग्यम् । अनहंकारः । एव । च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे जो वैराग्य है तथा अहंकारतैं जो रहितपणा है तथा जन्म, मृत्यु, व्याधि, दुःख, दोष इन सर्वोंका जो पुनः पुनः दर्शन है ॥ ८ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन! श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्दादिक विषयोंविषे अथवा इस लोकके तथा परलोकके विषयभोगोंविषे रागकी विरोधी जा स्पृहारूप चित्तकी वृत्तिविशेष है ताका नाम वैराग्य है १० । और लोकविषे आपणी स्तुतिके अभाव हुएभी मनविषे प्रगट हुआ जो मैं सर्वतें उत्कृष्ट हूं याप्रकारका गर्व है ताका नाम अहंकार है ता अहंकारका जो अभाव है ताका नाम अनहंकार है ११ ।और माताके उदरविषे नवमासपर्यंत निवासकरिकै योनिद्वारा जो बाह्य निकसणा है ताका नाम जन्म हैऔर प्राणोंके उत्क्रमणकालविषे सर्व मर्मस्थानोंका जो छेदन है ताका नाम मृत्यु है । और जिस अवस्थाविषे बुद्धिकी मंदता तथा सर्व अंगोंकी शिथिलता तथा स्वजनादिकृत परिभव इत्यादिक दोष प्राप्त होवैं हैं ता अवस्थाका नाम जरा है। और ज्वर अतीसार आदिक रोगोंका नाम व्याधि है। और अध्यात्म अधिभूत अधिदैव यह तीनों उपद्रव हैं निमित्त जिसविषे ऐसा जो इष्टवस्तुके वियोगजन्य तथा अनिष्टवस्तुके संयोगजन्य चित्तका परिताप-रूप परिणामविशेष है ताका नाम दुःख है । और वात, पित्त, श्लेष्म, मल, मूत्र इत्यादिकोंकरिकै परिपूर्ण होणेतें जो इस शरीरविषे निंदितपणा है ताका नाम दोष हैऐसे जन्मका तथा मृत्युका तथा ज्वरका तथा व्याधियोंका तथा दुःखोंका तथा दोषका जो अनुदर्शन है अर्थात् पुनःपुनः विचार करिकै देखणा है । अथवा जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःख इन पांचोंविषे दोषका पुनः पुनः दर्शन है । अथवा जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि इन च्यारोंविषे दुःखरूप दोषका जो पुनः पुनः दर्शन है । अथवा जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि इन च्यारोंविषे दुःखका तथा दोषका जो पुनः पुनः दर्शन है। तहां जन्मविषे तौ माताके उदरविषे नवमास पर्यंत अत्यंत संकचित होइकै स्थित होणा । तथा माताके मलविषे स्थित कृमियोंकरिकै दंशन होणा । तथा माताके जठराग्निकरिकै दाह होणा । तथा जरायु चर्मकरिकै वेष्टित होणा । तथा जन्मकालविषे प्रसववायुकरिकै आक-र्षण होणा । तथा अत्यंत अल्पयोनियंत्रतें निकसणा । तथा मलमूत्रविषे स्थित होणा इसतें आदिलैके अनेकप्रकारके दुःख तथा दोष ता जन्मविषे हैं । और मृत्युविषे तौ सर्व नाडियोंका आकर्षण होणा । तथा मर्मस्थानोंका छेदन होणा । तथा प्राणोंका आकुंचन होणा । तथा ऊर्ध्वश्वास होणे । तथा अत्यंत व्यथाकरिकै मलमूत्रादिकोंका बाह्य निकसणा इसतें आदिलैके अनेकप्रकारके दुःख तथा दोष

ता मृत्युविषे हैं। और जराअवस्थाविषे तौ सर्व अंगोंकी शिथिलता होणी। तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी मंदता होणी तथा शरीरविषे कंपादिक होणे। तथा कास श्वास होणा। तथा उठते हुए नीचै पड़िजाणा। तथा आपणे स्वजनोंकारिकै निरादरकूं प्राप्त होणा। तथा शरीरके द्वारोंतैं मल मूत्र लाल आदिकोंका प्राप्तहोणा। इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारके दुःख तथा दोष ता जराअवस्थाविषे हैं। और ज्वरादिक व्याधियोंविषे तौ शरीरविषे दुर्बलता होणी। तथा शीतज्वरादिकोंके वेग करिकै परितापादिक होणे। तथा अत्यंत कटुकषाय औषधोंका पान करणा। तथा देहविषे दुर्गंध होणा। तथा स्वेदादिकोंका निकसणा। इसतैं आदिलैके अनेक प्रकारके दुःख तथा दोष तिन व्याधियोंविषे हैं। ते जन्ममरणादिकोंके दुःख तथा दोष आत्मपुराणके प्रथम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करिआयेहैं। यातैं इहां संक्षेपतैं कथन करेहैं। याप्रकारके दुःखदोषोंका दर्शन विषयोंतैं वैराग्यका हेतु होणेतैं आत्मज्ञानविषे उपकार करैहै। यातैं इन अधिकारीजनोंनैं सो दुःखदोषोंका दर्शन अवश्यकरिकै संपादन करणा १२ ॥ ८ ॥

किंच—

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

(पदच्छेदः) असक्तिः। अनभिष्वंगः। पुत्रदारगृहादिषु। नित्यम्। च। समचित्तत्वम्। इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! पुत्रस्त्रीगृहादिक पदार्थोंविषे सक्तितैं रहितहोणा तथा अभिष्वंगतैं रहित होणा तथा इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे सर्वदा समचित्त रहणा ॥ ९ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन! यह पदार्थ हमारे हैं इतने अभिमानमात्रकरिकै जो तिन पदार्थोंविषे प्रीति है ताका नाम सक्ति है तिस सक्तितैं रहितका नाम असक्ति है १३। और यह पदार्थ मैं ही हूं याप्रकारकी अभेदभावना करिकै जो तिन पदार्थोंविषे प्रीतिकी अतिशयता है अर्थात् तिन पदार्थोंके सुखीदुःखी हुए मैं ही सुखी दुःखी होवूंहूं या प्रकारका जो अत्यंत अभिनिवेश है ताका नाम अभिष्वंग है। ता अभिष्वंगतैं रहित होणेतैं रहित होणेका नाम अनभिष्वंग है १४। शंका— हे भगवन्! सक्ति, अभिष्वंग यह दोनों किन पदार्थोंविषे परित्याग करणेयोग्य हैं?

ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (पुत्रदारगृहादिषु इति) हे अर्जुन ! पुत्रोंविषे तथा स्त्रियोंविषे तथा गृहोंविषे सा सक्ति तथा अभिष्वंग परित्याग करणे योग्य हैं । इहां (पुत्रदारगृहादिषु) इस वचनविषे स्थित जो आदिशब्द है ता आदिशब्दकरिकै इनोंतैं भिन्न दूसरेभी जितनेक स्नेहके विषय धन भृत्य आदिक पदार्थ हैं तिन सर्वोंका ग्रहण करणा । अर्थात् स्नेहके विषय सर्व पदार्थोंविषे सक्तितैं रहित होणा तथा अभिष्वंगतैं रहित होणा । और इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे सर्वदा समचित्त होणा अर्थात् प्रिय पदार्थोंकी प्राप्तिविषे तौ हर्षकूं नहीं करणा और अप्रिय पदार्थोंकी प्राप्तिविषे विषादकूं नहीं करणा इसीका नाम समचित्तपणा है १५ ॥ ९ ॥

किंच-

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

(पदच्छेदः) मयि । च । अनन्ययोगेन । भक्तिः । अव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वम् । अरतिः । जनसंसदि ॥ १० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अनन्ययोगकरिकै अव्यभिचारिणी ऐसी जा मैं परमेश्वरविषे भक्ति है तथा एकांतदेशका सेवन है तथा विषयीजनोंकी सभाविषे जा अप्रीति है ॥ १० ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! मैं भगवान् वासुदेव परमेश्वरविषे जा भक्ति है अर्थात् यह परमेश्वर सर्वतैं उत्कृष्ट है याप्रकारके सर्वतैं उत्कृष्टताज्ञानपूर्वक जा मेरेविषे निरतिशय प्रीतिहै । कैसी होवै सा भक्ति-अनन्ययोगकरिकै अव्यभिचारिणी होवै । तहां इस भगवान् वासुदेवतैं परे दूसरा कोई है नहीं यातैं सो भगवान् वासुदेवही हमारी गति है याप्रकारका जो निश्चय है ताका नाम अनन्ययोग है । ऐसे अनन्ययोगकरिकै जा भक्ति अव्यभिचारिणी है अर्थात् किसीभी प्रतिकूल हेतुनैं निवृत्त करणेकूं अशक्य है ऐसी भक्तिभी ज्ञानकाही हेतु है । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । (प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ।) अर्थ यह-इस अधिकारी पुरुषकी जबपर्यंत मैं भगवान् वासुदेवविषे निरतिशय प्रीति नहीं है तबपर्यंत यह अधिकारी पुरुष देहके संबंधतैं रहित होवै नहीं

इति १६ । और विविक्तदेशका सेवित्व जो है तहां जो देश स्वभावतैं ही शुद्ध होवै अथवा संस्कारोंकरिकै शुद्ध कन्या होवै तथा अशुचि सर्पव्याघ्रादिकोंतैं रहित-होवै तथा चित्तकी प्रसन्नता करणेहारा होवै ता देशका नाम विविक्तदेश है। ऐसा नदीतीर पर्वतकी गुहा आदिक जो देश हैं ऐसे विविक्तदेशके सेवन करणेका जो स्वभाव है ताका नाम विविक्तदेशसेवित्व है १७ । और आत्मज्ञानतैं विमुख तथा विषयभोगलंपटताका उपदेश करणेहारे ऐसे जे विषयी बहिर्मुख जन हैं तिन विषयी जनोंकी जा सभा है जा सभा तत्त्वज्ञा-नका अत्यंत प्रतिकूल है ता विषयीपुरुषोंकी सभाविषे जो अरति है अर्थात् ता सभाविषे जो नहीं रमण करणा है १८ । और तत्त्वज्ञानके अनुकूल ऐसी जा महात्मा जनोंकी सभा है तिस सभाविषे तौ इस अधिकारी जननैं अवश्यकरिकै प्रीति करणी । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषेभी कथन करीहै । तहां श्लोक- (संगः सर्वात्मना हेयः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते । स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां संगो हि भेषजम् ॥) अर्थ यह-इस अधिकारी जननैं सर्वप्रकारकरिकै संगका परित्याग करणा । और जो कदाचित् सर्वप्रकारतैं ता संगका परित्याग नहीं कियाजावै तौभी इस अधिकारी जननैं विषयी बहिर्मुख पुरुषोंका संग कदाचित्भी नहीं करणा किंतु महात्मा जनोंके साथि सो संग करणा । जिस कारणतैं सो महात्माजनोंका संग इस संसाररूप रोगके निवृत्त करणेका भेषज है ॥ १० ॥

किंच-

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् । तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतत् । ज्ञानम् । इति । प्रोक्तम् । अज्ञानम् । यत् । अतः । अन्यथा ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अध्यात्मज्ञानविषे जा निष्ठा है तथा तत्त्वज्ञानके प्रयोजनका जो दर्शन है यह अमानित्वादिक सर्व ज्ञान इसनामकरिकै कथन करे हैं इन्होंतैं विपरीत जे मानित्वादिक हैं ते सर्व अज्ञानरूपही हैं ॥ ११ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! आत्माकूं आश्रयणकरिकै प्रवृत्तहुआ जो आत्मअनात्म-विवेकज्ञान है ताका नाम अध्यात्मज्ञान है तिस अध्यात्मज्ञानविषे ही जा अत्यं-

तनिष्ठा है ताका नाम अध्यात्मज्ञाननित्यत्व है । जिस कारणतैं तिस विवेकविषे निष्ठावान् पुरुष ही महावाक्यार्थ ज्ञानविषे समर्थ होवैहै । इस कारणतैं इस अधिकारी पुरुषनैं तिस अध्यात्मज्ञानविषे निष्ठा अवश्यकरिकै करणी १९ । और तत्त्वज्ञानके अर्थका जो दर्शन है । तहां (अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि) इत्यादिक वेदांतवाक्य हैं कारण जिसके तथा अमानित्वादिक सर्व साधनोंके परिपाकका फलरूप ऐसा जो मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका साक्षात्कार है ताका नाम तत्त्वज्ञान है ऐसे तत्त्वज्ञानका जो अर्थ है अर्थात् अविद्यादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिरूप तथा परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्षरूप प्रयोजन है तिस तत्त्वज्ञानके मोक्षरूप अर्थका जो दर्शन है अर्थात् पुनःपुनः विचारकरिकै देखणा है ताका नाम तत्त्वज्ञानार्थदर्शन है २० । ऐसा तत्त्वज्ञानार्थदर्शनभी इस अधिकारी पुरुषकूं अवश्यकरिकै कर्त्तव्य है । काहेतैं तिस तत्त्वज्ञानके फलके दर्शन हुएतैं अनंतर ही तिसके साधनोंविषे प्रवृत्ति होवै है फलके ज्ञानतैं विना तिसके साधनोंविषे प्रवृत्ति होवै नहीं । इस प्रकार अमानित्वतैं आदिलैके तत्त्वज्ञानार्थदर्शन पर्यंत कथन करे जे वीस २० साधन हैं, ते वीस साधन आत्मज्ञानकी प्राप्तिके हेतुरूप होणेतैं ज्ञान इस नामकरिकै कथन करे हैं । इन अमानित्वादिक साधनोंतैं विपरीत जे मानित्व, दंभित्व, हिंसा, अक्षांति, अनार्जव इत्यादिक हैं ते मानित्वादिक आत्मज्ञानके विरोधी होणेतैं अज्ञान इस नामकरिकै कथन करेहैं । यातैं इन अधिकारी पुरुषोंनैं तिन अज्ञाननामा मानित्व दंभित्वादिकोंका परित्याग करिकै ते ज्ञाननामा अमानित्व अदंभित्वादिक वीस साधन अवश्यकरिकै संपादन करणे ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! अमानित्वतैं आदिलैके तत्त्वज्ञानार्थदर्शन पर्यंत पूर्व कथन करे जे ज्ञाननामा वीस साधन हैं तिन साधनोंकरिकै कौन वस्तु जानणे योग्य है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् षट् श्लोकोंकरिकै तिस ज्ञेयवस्तुका निरूपण करैं हैं-

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

(पदच्छेदः) ज्ञेयम् । यत् । तत् । प्रवक्ष्यामि । यत् । ज्ञात्वा । अमृतम् । अश्नुते । अनादिमत् । परम् । ब्रह्म । न । सत् । तत् । न । असत् । उच्यते ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मुमुक्षुजननैं जो वस्तु जानणे योग्यहै सो ज्ञेयवस्तु मैं तुम्हारे ताईं कथन करताहूं जिसं ज्ञेयवस्तुकूं जानिकै यह मुमुक्षु अमृतभावकूं प्राप्त होवैहै सो ज्ञेयवस्तु अनादिमत् परं ब्रह्म है सो ब्रह्म नहीं तौ सत् कह्या जावैहै तथा नहीं असत् कह्या जावैहै ॥ १२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! इस मुमुक्षु जननैं पूर्वउक्त अमानित्वादिक साधनों-करिकै जो वस्तु जानणे योग्य है सो ज्ञेयवस्तु मैं भगवान् तैं अर्जुनके ताईं स्पष्ट-करिकै कथन करताहूं । अब श्रीभगवान् ता श्रोता अर्जुनकूं तिस ज्ञेयवस्तुके अभिमुख करणेवास्तै उत्तमफलकरिकै ता ज्ञेयवस्तुकी स्तुति करैं हैं (यज्ज्ञात्वामृ-तमश्नुते इति ।) हे अर्जुन ! जिस वक्ष्यमाण ज्ञेयवस्तुकूं जानिकरिकै यह अधिकारी पुरुष अमृतभावकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् इस अनर्थरूप संसारतैं मुक्त होवै है । शंका—हे भगवन् ! जिस ज्ञेयवस्तुकूं जानिकै यह अधिकारी पुरुष मुक्त होवै है सो ज्ञेय-वस्तु कैसा है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता ज्ञेयवस्तुका स्वरूप कथन करैं हैं (परं ब्रह्म इति) हे अर्जुन ! परं कहिये अतिशयतातैं रहित, तथा ब्रह्म कहिये देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित ऐसा जो परमात्मा देव है सो परमात्मा देव ही ज्ञेयरूप है अर्थात् इस मुमुक्षुजननैं पूर्वउक्त साधनोंकरिकै जानणेयोग्य है । कैसा है सो परब्रह्म—अनादिमत् है । तहां कारणका नाम आदि है । अथवा उत्प-त्तिका नाम आदि है सो आदि जिस वस्तुका होवै ता वस्तुका नाम आदिमत् है । ऐसे आदिमत् देहादिक पदार्थ हैं तिन आदिमत्पदार्थोंतैं जो विलक्षण होवै अर्थात् कारणतैं तथा उत्पत्तितैं रहित होवै ताका नाम अनादिमत् है अर्थात् सर्ववि-कारोंतैं विलक्षण वस्तुका नाम अनादिमत् है । और किसी टीकाविषे तौ (अनादिमत्परम्) यह एकही पद अंगीकारकरिकै यह अर्थ कऱ्या है । तहां कार्यका नाम आदिमत् है । और कारणका नाम पर है । ता कार्यकारण दोनोंतैं जो अन्य होवै ताका नाम अनादिमत्पर है । और अन्य किसी टीकावि-षे तौ (अनादि मत्परम्) या प्रकारके दो पद अंगीकारकरिकै यह अर्थ कऱ्या है । तहां सो ब्रह्म अनादि है अर्थात् उत्पत्तितैं रहित है । तथा सो ब्रह्म मत्पर है अर्थात् मैं सगुणब्रह्मतैं पर निर्विशेषरूप है इति । और अन्य किसी टीकाविषे तौ (मत्परम्) इस पदका यह अर्थ कऱ्या है—मैं भगवान् वासुदेव हूं परा शक्ति जिसकी ता-का नाम मत्पर है । सो यह व्याख्यान समीचीन नहीं है । काहेतैं जिस ज्ञेयवस्तुकूं

जानिकै यह अधिकारी पुरुष अमृतभावकूं प्राप्त होवै है सो ज्ञेयवस्तु मैं तुम्हारे प्रति कथन करता हूं, या प्रकारका वचन श्रीभगवान्नैं पूर्व कथन कऱ्या है। सा मोक्ष-की प्राप्ति निर्विशेष शुद्धब्रह्मके ज्ञानतैं ही होवैहै। शक्तिवाले सविशेष ब्रह्मके ज्ञानतैं सा मोक्षकी प्राप्ति होवै नहीं। यातैं इहां श्रीभगवान्नैं निर्विशेष ब्रह्मही कथन कऱ्या है। ऐसे निर्विशेष ब्रह्मविषे शक्तिमत्त्व कहणा असंगत है इति। अब श्रीभगवान् ता ज्ञेयब्रह्मकी निर्विशेषताकूं कथन करैं हैं (न सत्तन्नासदुच्यते इति।) तहां जो वस्तु अस्ति इस प्रकारतैं विधिमुखकरिकै प्रमाणका विषय होवै है सो वस्तु सत् इस नामकरिकै कह्या जावै है। और जो वस्तु नास्ति इस प्रकारतैं निषेधमुख करिकै प्रमाणका विषय होवै है सो वस्तु असत् इस नामकरिकै कह्या जावै है। और सो ज्ञेयब्रह्म तौ निर्विशेष है तथा स्वप्रकाश चैतन्य-स्वरूप है। यातैं सो ब्रह्म सत् असत् दोनोंतैं विलक्षण होणेतैं सत्भी नहीं कह्या जावै तथा असत्भी नहीं कह्या जावैहै। तहां श्रुति-(यतो वाचो निवर्त्तंते अप्रा-प्य मनसा सह।) अर्थ यह-मनसहित वाणी जिस निर्गुण ब्रह्मकूं प्राप्त होइकै जिस निर्गुण ब्रह्मकूं न प्राप्त होइकै जिस निर्गुण ब्रह्मतैं निवृत्त होजावैं हैं इति। हे अर्जुन ! जिसकारणतैं सो ज्ञेयब्रह्म सत् नहीं है अर्थात् भावत्व धर्मका आश्रय नहीं है तथा असत् नहीं है अर्थात् अभावत्वधर्मका आश्रय नहीं है, इस कारणतैं सो ज्ञेयब्रह्म किसी भी शब्दनै शक्तिरूप मुख्यवृत्तिकरिकै कथन नहीं करता। तात्पर्य यह-जाति, गुण, क्रिया, संबंध यह च्यारों शब्दकी प्रवृत्तिके हेतु होवैं हैं। जैसे गौ अश्व इत्यादिक शब्द तौ गोत्व अश्वत्व इत्यादिक जातियोंकूं लैके आपणेआपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। और शुक्ल कृष्ण इत्यादिक शब्द तौ शुक्ल नील इत्यादिक गुणोंकूं लैके आपणे आपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। और पाचक, पाठक इत्यादिक शब्द तौ पाक पाठ इत्यादिक क्रियावोंकूं लैके आपणेआपणे अर्थ-विषे प्रवृत्त होवैं हैं। और धनी, गोमान् इत्यादिक शब्द तौ स्वस्वामिभाव आदिक संबंधोंकूं लैके आपणेआपणे अर्थविषे प्रवृत्त होवैं हैं। इहां गुण, क्रिया, संबंध इन तीनोंतैं भिन्न जितनेक जातिरूप धर्म हैं तथा उपाधिरूप धर्म हैं ते सर्वधर्म जाति-शब्दकरिकै ग्रहण करणे। तहां (न सत्तन्नासदुच्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस ज्ञेय ब्रह्मविषे जातिका निषेध कथन कऱ्याहै सो जातिका निषेध गुण, क्रिया, संबंध इन तीनोंके निषेधकाभी उपलक्षण है अर्थात् तिस ज्ञेय ब्रह्मविषे जाति,

गुण, क्रिया, संबंध यह च्यारों नहीं हैं। तहां (एकमेवाद्वितीयम् ।) यह श्रुति तिस ब्रह्मकूं एक अद्वितीयरूप कहती हुई ता ब्रह्मविषे जातिका निषेध करैहै। काहेतैं अनेक व्यक्तियोंविषे रहणेहारा जो एक धर्म है ताकूं जाति कहैं हैं। जैसे अनेक गौव्यक्तियोंविषे रहणेहारा जो एक गोत्वधर्म है ताकूं जाति कहैं हैं। ऐसी जाति एक अद्वितीय ब्रह्मविषे संभवती नहीं। और (निर्गुणं निष्क्रियं शांतम्) यह श्रुति यथाक्रमतैं तिस ब्रह्मविषे गुण, क्रिया, संबंध इन तीनोंका निषेध करै है। तहां (निर्गुणम्) इस पदकारिकै तौ गुणोंका निषेध करैहै और (निष्क्रियम्) इस पदकारिकै क्रियाका निषेध करैहै और (शांतम्) इस पदकारिकै संबंधका निषेध करैं है। और (असंगो ह्ययं पुरुषः । अथातः आदेशो नेति नेति ।) यह दोनों श्रुतियां तौ तिस ज्ञेयब्रह्मविषे सर्व प्रपंचमात्रका निषेध करैं हैं। ऐसा जातिआदिक सर्वधर्मोंतैं रहित सो निर्गुण ब्रह्म किसीभी शब्दनैं कथन करीता नहीं इति। शंका—हे भगवन् ! सो निर्गुण ब्रह्म जो कदाचित् किसीभी शब्दकारिकै नहीं कथन कऱ्या जावैहै तौ (ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि ।) अर्थ यह—जो ज्ञेयवस्तु है तिसकूं मैं तुम्हारे प्रति कथन करताहूं। यह आपका वचन कैसे संगत होवैगा। तथा—(शास्त्रयोनित्वात् ।) अर्थ यह—उपनिषदरूप वेदांतशास्त्र है योनि क्या प्रमाण जिसविषे ऐसा सो ब्रह्म है यह व्यास भगवान्का सूत्रभी कैसे संगत होवैगा ? समाधान—हे अर्जुन ! तिस-निर्गुणब्रह्मकूं उपनिषदरूप शास्त्र जो प्रतिपादन करैहै सो शक्तिरूप मुख्यवृत्तिकारिकै प्रतिपादन करता नहीं किंतु यथाकथंचित् लक्षणावृत्तिकारिकै सो शब्द तिस निर्गुणब्रह्मकूं प्रतिपादन करैहै सो प्रतिपादन करणेका प्रकार तौ द्वितीय अध्याय-विषे (आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्)इस श्लोकविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं। यातैं तिस ज्ञेय ब्रह्मविषे शब्दकी प्रवृत्तिके निषेध करणेहारे (न सत्तन्नासदु-च्यते) इस वचनके साथि (ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि) इस हमारे वचनका तथा (शास्त्रयोनित्वात्) इस सूत्रवचनका विरोध होवै नहीं इति। और किसी टीका-विषे तौ (न सत्तन्नासदुच्यते) इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है। सो ज्ञेयब्रह्म प्रधानपरमाणु आदिकोंकी न्याईं सत् इस नामकारिकै कह्या जावै नहीं। तथा शून्यकी न्याईं असत् इस नामकारिकैभी कह्या जावै नहीं। तहां श्रुति—(नासदा-सीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यदिति।) अर्थ यह—इस सृष्टितैं पूर्व

शून्यभी नहीं होताभया। तथा त्रिगुणात्मक प्रधानभी नहीं होताभया। तथ परमाणुभी नहीं होतेभये। तथा अव्यक्तभी नहीं होताभया ॥ १२ ॥

तहां पूर्व श्लोकविषे (न सत् उच्यते) इस वचनकारिकै तिस निरुपाधिक शुद्ध ब्रह्मविषे सत् शब्दकी तथा ता सत्शब्दजन्य ज्ञानकी अविषयता कथन करी ता कहणेकारिकै यह शंका प्राप्त हुई—तिस ज्ञेयब्रह्मकूं जो कदाचित् सत् शब्दका तथा ता सत्शब्दजन्यज्ञानका अविषय मानोगे तौ सो ब्रह्म वंध्यापुत्र शशशृङ्गकी न्याई असत् ही होवैगा। इस प्रकारकी शंकाकूं श्रीभगवान् (नासदुच्यते) इस वचनकारिकै सामान्यतैं निवृत्त करतेभये अब तिसी असत्पणेकी शंकाकूं विस्तारतैं निवृत्त करणे वासतै श्रीभगवान् सर्वप्राणियोंके श्रोत्रादिक करणरूप उपाधिद्वारा चेतनक्षेत्रज्ञरूपता करिकै तिस ज्ञेयब्रह्मके अस्तिपणेकूं प्रतिपादन करैं हैं—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) सर्वतः पाणिपादम्। तत्। सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमत्। लोके। सर्वम्। आवृत्य। तिष्ठति ॥ १३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म कैसाहै सर्व देहोंविषे हैं हस्तपाद जिसके तथा सर्वदेहोंविषे हैं नेत्रशिरमुख जिसके तथा सर्वदेहोंविषे श्रवणइंद्रियवाला है तथा सर्वप्राणियोंके शरीरविषे सर्वअचेतनवर्गकूं व्याप्यकारिकै स्थित है ॥ १३ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन! पूर्व हमनैं कथन कऱ्या जो ज्ञेयब्रह्म है सो ज्ञेयब्रह्म कैसा है—सर्वतःपाणिपाद है। तहां सर्वदेहोंविषे स्थित जे अचेतनरूप पाणि हैं तथा पाद हैं ते अचेतनरूप सर्व पाणिपाद आपणे आपणे व्यापारविषे प्रवृत्त करीते हैं जिस चेतनरूप क्षेत्रज्ञाननैं ता चेतनका नाम सर्वतःपाणिपाद है। तहां लोकविषे जितनीक अचेतन पदार्थोंकी प्रवृत्तियां हैं ते सर्व प्रवृत्तियां चेतनरूप अधिष्ठानपूर्वक ही होवैंहैं। चेतनरूप अधिष्ठानतैं विना जड पदार्थोंकी प्रवृत्ति कहींभी देखणेविषे आवती नहीं। जैसे रथादिक जडपदार्थोंकी प्रवृत्ति चेतनपुरुषपूर्वकही होवैहै तैसे हस्तपादादिक सर्व जडपदार्थोंकी प्रवृत्तियांभी चेतनब्रह्मपूर्वक ही होवैंहैं। ऐसे हस्तपादादिक सर्व जडवर्गके प्रवर्त्तक चेतनक्षेत्रज्ञरूप ब्रह्मविषे नास्तिपणेकी शंका कदाचित्भी संभवती नहीं इति। या प्रकारकी युक्ति (सर्वतोऽक्षिशिरो-

मुखम्) इत्यादिक सर्व पर्यायोंविषे जानिलेणी । इहां पाणिपाद इन दो इंद्रियोंका ग्रहण वागादिक सर्व कर्मइंद्रियोंका उपलक्षण है । पुनः कैसा है सो ज्ञेयब्रह्म—सर्वतोक्षिशिरोमुख है । तहां सर्व देहोंविषे स्थित जितनेक अक्षि हैं तथा शिर हैं तथा मुख हैं ते सर्व अक्षिशिर मुख आपणे आपणे व्यापारविषे प्रवृत्त करीतेहैं जिस चैतन्यनैं ताका नाम सर्वतोक्षिशिरोमुख है । पुनः कैसा है सो परब्रह्म—सर्वतःश्रुतिमत् है । तहां सर्वदेहोंविषे स्थित जितनेक श्रवणइंद्रिय हैं ते सर्व श्रवणइंद्रिय आपणे आपणे व्यापारविषे प्रवृत्त करीते हैं जिस चैतन्यनैं ताका नाम सर्वतःश्रुतिमत् है । इहां अक्षि श्रोत्र इन दोनों इंद्रियोंका ग्रहण सर्व ज्ञानइंद्रियोंका तथा मन बुद्धि आदिकोंका उपलक्षण है । पुनः कैसा है सो परब्रह्म—सर्वदेहोंविषे सो एकही नित्य विभु चेतन सर्वजडवर्गकूं अध्यासिक संबंधकरिकै आपणे सत्तास्फूर्तिरूपतैं व्याप्यकरिकै स्थित हुआहै अर्थात् निर्विकारस्थितिकूंही प्राप्त हुआ है । तात्पर्य यह—जैसे रज्जुरूप अधिष्ठान आपणेविषे कल्पित सर्पादिकोंके गुणकरिकै तथा दोषकरिकै लिंपायमान होवै नहीं तैसे आपणेविषे अध्यस्त जडप्रपंचके दोषकरिकै तथा गुणकरिकै सो चेतन देव लेशमात्रतैंभी बंधायमान होवै नहीं इति । तहां सर्व देहोंविषे एकही चेतन है सो चेतन नित्य है तथा विभु है । देह देहविषे भिन्नभिन्न चेतन हैं नहीं । यह सर्व वार्त्ता पूर्व विस्तारतैं प्रतिपादन करिआयेहैं । तहां इस श्लोककरिकै श्रीभगवान्नैं यह दो अनुमान सूचन करे । श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रिय तथा वागादिक पंच कर्म इंद्रिय तथा मन बुद्धिआदिक चतुष्टय अंतःकरण यह सर्व चेतनशक्तिनिमित्तक स्वस्वव्यापारवाले हैं । स्वभावतैं जड होणेतैं चर्ममय अथवा काष्ठमय प्रतिमादिकोंकी न्याईं इति । तथा देह इंद्रियादिक सर्व स्वभावतैं जड हैं दूसरे चेतन अधिष्ठाताकी बुद्धिपूर्वक प्रवृत्तिवाले होणेतैं रथादिकोंकी न्याईं इति । इस प्रकारतैं सर्व प्राणियोंके देहइंद्रियादिक उपाधियोंकरिकै तिस ज्ञेयब्रह्मका अस्तिपणा निश्चय कऱ्याजावै है ॥ १३ ॥

तहां—(अध्यारोपापवादाभ्यां निःप्रपंचं प्रपंच्यते ।) अर्थ यह—शुद्धब्रह्मविषे प्रथम इस सर्वप्रपंचका अध्यारोप करिकै तिसतैं अनंतर तिस सर्वप्रपंचका निषेधरूप अपवादकरिकै सो शुद्धब्रह्म श्रुति भगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं अधिकारी शिष्योंके प्रति आत्मारूपकरिकै प्रतिपादन करीताहै इति । इस वृद्ध पुरुषोंके

न्यायकूं अनुसरण करिकै तिस ज्ञेयब्रह्मविषे सर्वप्रपंचका अध्यारोप करिकै (अनादिमत्परं ब्रह्म) इस पूर्वउक्त वचनका पूर्वले श्लोकविषे व्याख्यान कऱ्या। अब तिस अध्यारोपित सर्वप्रपंचका अपवादकरिकै (न सत्तन्नासदुच्यते) इस पूर्वउक्त वचनके व्याख्यान करणे अर्थ अधिकारी जनोंके प्रति निरुपाधिक स्वरूपके जनाणेवासतै श्रीभगवान् आरंभ करैहैं–

सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेंद्रियविवर्जितम्॥
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥ १४॥

(पदच्छेदः) सर्वेंद्रियगुणाभासम्। सर्वेंद्रियविवर्जितम्। असक्तम्। सर्वभृत्। च। एव। निर्गुणम्। गुणभोक्तृ च॥ १४॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म सर्वइंद्रियोंतैं रहित है तथा सर्वइंद्रियोंके व्यापारकरिकै भासमान है तथा सर्वसंबंधतैं रहित है तथा सर्वके धारणकरणेहाराही है तथा सत्त्वादिक गुणोंतैं रहित है तथा तिन सत्त्वादिक गुणोंका भोक्ताहै॥ १४॥

भा०टी०–हे अर्जुन ! सो ज्ञेय परब्रह्म परमार्थतैं तौ श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंतैं रहित है। आपणी मायाकरिकै सर्व इंद्रियोंके गुणोंकरिकै भासमान है। तहां बाह्यकरणरूप जे श्रोत्रवागादिक दश इंद्रिय हैं। तथा अंतःकरणरूप जो मन बुद्धि हैं तिन सर्वइंद्रियोंके जे गुण हैं अर्थात् श्रवण, वचन, संकल्प, निश्चय इत्यादिक जे व्यापार हैं तिन सर्वइंद्रियोंके गुणोंकरिकै सो ज्ञेयब्रह्म भासमान होवैहै अर्थात् सो परब्रह्म तिन सर्वइंद्रियोंके व्यापारकरिकै व्यापारवालेकी न्याईं प्रतीत होवैहै। तहां श्रुति–(ध्यायतीव लेलायतीव।) अर्थ यह–बुद्धिआदिक उपाधियोंके संबंधतैं यह आत्मादेव ध्यान करताकी न्याईं तथा चलायमान हुएकी न्याईं प्रतीत होवैहै इति। इस श्रुतिविषे ध्यायति इस शब्दकरिकै कथन कऱ्या जो ध्यान है सो ध्यान सब ज्ञानइंद्रियोंके व्यापारोंका उपलक्षण है। और लेलायति इस शब्दकरिकै कथन कऱ्या जो चलनरूप लेलायन है सो लेलायन सर्व कर्मइंद्रियोंके व्यापारोंका उपलक्षण है। अर्थात् तिन इंद्रियोंके तादात्म्य अध्यासतैं यह आत्मादेव मैं देखताहूं मैं श्रवण करताहूं मैं बोलताहूं मैं चालताहूं इस प्रकारतैं तिसतिस इंद्रियके व्यापारविशिष्ट हुआ प्रतीत होवैहै। और वास्तवतैं तिन सर्वइंद्रियोंतैं रहित है तहां श्रुति–(पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। अपाणिपादो जवनो गृहीता) अर्थ यह–यह

आत्मादेव वास्तवतैं चक्षुतैं रहित हुआभी देखै है तथा वास्तवतैं श्रोत्रइंद्रियतैं रहित हुआभी शब्दकूं श्रवण करैहै। तथा वास्तवतैं हस्तइंद्रियतैं रहित हुआभी वस्तुकूं ग्रहण करैहै। तथा वास्तवतैं पादइंद्रियतैं रहित हुआभी शीघ्रगमनवाला है इति। पुनः कैसा है सो परब्रह्म—परमार्थतैं तौ सर्वसंबंधोंतैं रहित है। तहां श्रुति—(असंगो ह्ययं पुरुषः। असंगो न हि सज्यते।) अर्थ यह—यह परमात्मा पुरुष सर्वसंगतैं रहित होणेतैं असंग है। तथा यह असंग आत्मादेव किसीभी पदार्थके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं इति। इस प्रकार परमार्थतैं असंगहुआभी सो परब्रह्म आपणी मायाशक्तिकरिकै सर्वभृत् है। तहां लोकविषे अधिष्ठानतैं विना कोईभी भ्रम होता नहीं किंतु रज्जु शुक्ति आदिक अधिष्ठानविषेही सर्परजतादिकोंका भ्रम होवै है। यातैं जो चैतन्य आपणे सत्तारूपकरिकै सर्व कल्पित प्रपंचकूं धारण करै है तथा पोषण करै है ताका नाम सर्वभृत् है। पुनः कैसा है सो ज्ञेय ब्रह्म—निर्गुण है अर्थात् परमार्थतैं तौ सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंतैं रहित है तथा गुणोंका भोक्ता है अर्थात् शब्दस्पर्शादिक विषयद्वारा सुख दुःख मोहके आकारकरिकै परिणामकूं प्राप्त हुए जे सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं तिन गुणोंका भोक्ता है तथा उपलब्धा है। तहां श्रुति—(साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।) अर्थ यह—यह परमात्मा देव सर्वका साक्षी है तथा चेतन है तथा अद्वितीय है तथा सत्त्वादिक सर्व गुणोंतैं रहित है॥ १४॥

किंच—

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत्॥ १५॥

(पदच्छेदः) बहिः। अंतः। च। भूतानाम्। अचरम्। चरम्। एव। च। सूक्ष्मत्वात्। तत्। अविज्ञेयम्। दूरस्थम्। च। अंतिके। च। तत्॥ १५॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! सो ज्ञेयब्रह्म ही सर्वभूतोंके बाह्य है तथा अंतर है तथा स्थावररूप है तथा जंगमरूप है तथा सूक्ष्महोणेतैं अविज्ञेय है तथा सो ज्ञेयब्रह्म अत्यंत दूरस्थित है तथा अत्यंत समीप है॥ १५॥

भा॰ टी॰—हे अर्जुन! पुनः कैसा है सो ज्ञेयब्रह्म—उत्पत्तिधर्मवाले जितनेक कल्पितकार्य हैं तिन सर्व कल्पितकार्योंके बाह्य तथा अंतर सो एकही अकल्पित

अधिष्ठानरूप ब्रह्म व्यापक है । अर्थात् जैसे रज्जुविषे कल्पित जे सर्प, दंड, माला, जलधारा आदिक हैं तिन कल्पित सर्पादिकोंके बाह्य तथा अंतर सो रज्जुरूप अधिष्ठान ही व्यापक होवैहै तैसे तिन सर्वभूतोंके बाह्य तथा अंतर सो अधिष्ठानरूप ब्रह्मही सर्व प्रकारकरिकै व्यापक है । तहां श्रुति-(तदंतरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ।) अर्थ यह-सो अधिष्ठानरूप परब्रह्म ही इस सर्वप्रपंचके अंतर तथा बाह्य व्यापक है इति । सर्वत्र व्यापक होणेतैं सो परब्रह्मही सर्व स्थावरभूतरूप है तथा सर्व जंगमभूतरूप है । काहेतैं इस लोकविषे जो जो कल्पित पदार्थ होवै है सो अधिष्ठानतैं भिन्नसत्तावाला होवै नहीं किंतु सो कल्पित पदार्थ अधिष्ठानरूपही होवैहै । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्पादिक अधिष्ठान रज्जुरूपही है तैसे अधिष्ठानब्रह्मविषे कल्पित यह स्थावर जंगमरूप जगत्भी तिस अधिष्ठान ब्रह्मतैं भिन्नसत्तावाला नहीं है किंतु ता अधिष्ठानब्रह्मरूप ही है । यातैं इन स्थावरजंगम पदार्थोंकूं अधिष्ठान ब्रह्मरूपता युक्तही है। तहां श्रुति-(सर्वं ह्येतद्ब्रह्म) अर्थ यह-यह स्थावरजंगमरूप सर्व जगत् ब्रह्मरूपही है । शंका-हे भगवन् ! इस प्रकारतैं सो ज्ञेयब्रह्म जो सर्वका आत्मारूप है तौ सर्व प्राणी तिस परब्रह्मकूं स्पष्टकरिकै क्यों नही जानते ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए, श्रीभगवान् ताके न जानणेविषे हेतु कहैहैं-(सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयमिति) हे अर्जुन ! सो परब्रह्म सर्वका आत्मारूप हुआभी अत्यंत सूक्ष्म होणेतैं तथा रूपादिक गुणोंतैं रहित होणेतैं अविज्ञेय है अर्थात् यह ब्रह्म इसी प्रकारका ही है । या प्रकारतैं स्पष्ट ज्ञानके योग्य होवै नहीं । तहां श्रुति-(सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम् ।) अर्थ यह-सो परब्रह्म आकाशादि सूक्ष्मपदार्थोंतैं भी अत्यंत सूक्ष्म है तथा नित्य है इति । इसी कारणतैं ही सो परब्रह्म विवेक वैराग्यादिक साधनोंतैं रहित पुरुषोंकूं सहस्रकोटि वर्षोंकरिकैभी प्राप्त होता नहीं । यातैं सो परब्रह्म तिन बहिर्मुख पुरुषोंकूं दूरस्थ है अर्थात् लक्षकोटि योजनमार्गके अंतरायवाले देशकी न्याईं अत्यंत दूर है । और जे पुरुष तिन विवेकवैराग्यादिक साधनोंकारिकै संपन्न हैं तिन पुरुषोंकूं सो परब्रह्म आपणा आत्मारूप होणेतैं अत्यंत समीप है । तहां श्रुति-(दूरात्सुदूरे तदिहांतिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।) अर्थ यह-जे पुरुष विवेकवैराग्यादिक साधनोंतैं रहित हैं ऐसे बहिर्मुख पुरुषोंकूं तौ यह परमात्मा देव अत्यंत दूर लोकालोकपर्वततैंभी अत्यंत दूर है । और जे पुरुष विवेकवैराग्यादिक साधनसंपन्न होइकै ब्रह्मवेत्ता गुरुके

शरणकूं प्राप्त हुए हैं ऐसे उत्तम अधिकारी पुरुषोंकू परब्रह्म अत्यंत समीप हृदयदेशविषेही साक्षात्कार होवेहै ॥ १५ ॥

तहां पूर्व त्रयोदश श्लोकविषे (सर्वमावृत्य तिष्ठति) इस वचनकारिकै एकही परमात्मा देव सर्व जडवर्गकूं व्याप्तकारिकै स्थित हुआ है यह अर्थ सामान्यतैं कथन कऱ्या। अब देहविषे आत्माके भेद मानणेहारे वादियोंके खंडन करणेवासतै तिस अर्थकूं श्रीभगवान् स्पष्टकारिकै वर्णन करैंहैं-

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ॥
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥

(पदच्छेदः) अविभक्तम् । च । भूतेषु । विभक्तम् । इव । च । स्थितम् । भूतभर्तृ । च । तत् । ज्ञेयम् । ग्रसिष्णु । प्रभविष्णु । च ॥ १६ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः सो परब्रह्म सर्वप्राणियोंविषे एकही है तथा भिन्नहुएकी न्याईं स्थित है सो परब्रह्मही सर्वभूतोंका धारण करणेहारा तथा संहार करणेहारा तथा उत्पन्नकरणेहारा तुमनैं जानणा ॥ १६ ॥

भा०टी०-हे अर्जुन ! सो परब्रह्म सर्वप्राणियोंविषे एकही व्यापक है देहदेहविषे भिन्नभिन्न है नहीं । जिस कारणतैं सो परब्रह्म आकाशकी न्याईं सर्वत्र व्यापक है । तहां श्रुति-(एको देवः सर्वभूतेषु गूढः ।) अर्थ यह-जैसे सर्व काष्ठोंविषे अग्नि गुह्य होइकै रह्या है तैसे सो एकही परमात्मा देव सर्वभूतोंविषे गुह्य होइकै रह्या है इति । इसप्रकार वास्तवतैं एक अद्वितीयरूप हुआभी सो परब्रह्म इन देहोंके साथि तादात्म्यकारिकै प्रतीत होवैहै । यातैं सो परब्रह्म देहदेहविषे भिन्न भिन्न हुएकी न्याईं स्थित है। अर्थात् जैसे एकही आकाशविषे घटमठादिकउपाधियोंकारिकै मिथ्याभेद प्रतीत होवैहै सो मिथ्याभेद वास्तवतैं आकाशकी एकताकूं निवृत्त कारिसकै नहीं, तैसे एकही परमात्मा देवविषे देहादिक उपाधियोंकारिकै मिथ्याभेद प्रतीत होवैहै, सो मिथ्याभेद तिस परमात्मादेवकी वास्तव एकताकूं निवृत्त कारिसकै नहीं । शंका-हे भगवन् ! इस प्रकारतैं सो क्षेत्रज्ञ चेतन सर्वभूतोंविषे व्यापक होवो । परंतु सर्व जगत्का कारण जो ब्रह्म है सो कारणब्रह्म तौ ता क्षेत्रज्ञ चेतनतैं भिन्न ही है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं (भूतभर्तृ च इति) हे अर्जुन ! सो ब्रह्म भूतभर्तृ है अर्थात् जो ब्रह्म स्थितिकालविषे अधिष्ठानतारूप

करिकै सर्वभूतोंको धारण करैहै तथा पोषण करैहै । तथा जो ब्रह्म प्रलयकालविषे तिन सर्वभूतोंका संहार करैहै । तथा जो ब्रह्म सृष्टिकालविषे तिन सर्वभूतोंकूं उत्पन्न करैहै । जैसे रज्जुआदिक अधिष्ठान मायाकल्पित सर्पादिकोंके उत्पत्ति स्थिति लयका कारण होवैहै तैसे इस सर्वजगत्के उत्पत्ति, स्थिति, लयका कारणरूप जो ब्रह्म है सो ब्रह्म ही सर्वदेहोंविषे एक क्षेत्रज्ञरूप तुमनैं जानणा । तिस ब्रह्मतैं सो क्षेत्रज्ञ चेतन भिन्न नहीं जानणा ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! सर्वत्र विद्यमान हुआभी सो ज्ञेयब्रह्म जबी नहीं प्रतीत होवैहै तबी सो ज्ञेयब्रह्म जड ही होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए सो ज्ञेयब्रह्म नहीं प्रतीत होणेमात्रकरिकै जड होवै नहीं । काहेतैं सो परब्रह्म यद्यपि स्वयंज्योतिरूप है तथापि सो परब्रह्म रूपादिक गुणोंतैं रहित है । यातैं तिस परब्रह्मविषे नेत्रादिक इंद्रियजन्य ज्ञानकी अविषयता संभव होइसकै है । इस प्रकारके उत्तरकूं श्रीभगवान् कहैं हैं (ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः इति) अथवा पूर्वश्लोकके उत्तरार्द्धकरिकै तिस ज्ञेयब्रह्मका जगत्की उत्पत्ति स्थिति लय कर्तृत्वरूप तटस्थ लक्षण कथन कन्याथा । अब (ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः) इस श्लोककरिकै तिस ज्ञेयब्रह्मका स्वरूपलक्षण कथन करैहैं—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ॥
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥

(पदच्छेदः) ज्योतिषाम् । अपि । तत् । ज्योतिः । तमसः । परम् । उच्यते । ज्ञानम् । ज्ञेयम् । ज्ञानगम्यम् । हृदि । सर्वस्य । धिष्ठितम् ॥ १७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म सूर्यादिक ज्योतियोंका भी ज्योति है तथा जडवर्गरूपतैं पर कह्याँ है तथा ज्ञानरूप है तथा ज्ञेयरूप है तथा ज्ञानकरिकै प्राप्य है तथा सर्वप्राणियोंके बुद्धिविषे स्थित है ॥ १७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पुनः सो ज्ञेयब्रह्म कैसा है—ज्योतियोंकाभी ज्योति है अर्थात् अनात्मपदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारे जे आदित्य, चंद्रमा, अग्नि, विद्युत् इत्यादिक बाह्यज्योति हैं तथा मन बुद्धि आदिक अंतरज्योति हैं तिन सर्वज्योतियोंकाभी सो परब्रह्म प्रकाशकरणेहारा है । तहां चैतन्य ज्योतिविषे सूर्यादिक जडज्योतियोंका प्रकाशकपणा युक्तिकरिकैभी संभव होइसकैहै । तथा इस अर्थकूं

साक्षात् श्रुति भगवतीभी कथन करैहै। तहां श्रुति-(येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः। तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।) अर्थ यह-जिस स्वयंज्योति परमात्मा देवकरिकै यह तेजयुक्त सूर्य तपायमान होवैहै। तथा जिस परमात्मादेवके प्रकाशकरिकै यह सूर्यचन्द्रादिक सर्व जगत् प्रकाशमान होवैहै इति। तथा यह वार्त्ता श्रीभगवान् आपही (यदादित्यगतं तेजः) इत्यादिक वचनकरिकै कथन करैगा। यातैं चैतन्य ब्रह्मरूप ज्योतिकरिकै सूर्यादिक जड ज्योतियोंका प्रकाश संभवैहै इति। शंका-हे भगवन्! सो चैतन्यस्वरूप ब्रह्म स्वभावतैं जडपणेतैं रहित हुआभी जडपदार्थोंके साथि संबंधवाला होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (तमसः परमुच्यते इति।) हे अर्जुन! सो परब्रह्म जडवर्गरूप तमतैं पर कह्याहै अर्थात अविद्या तथा ता अविद्याका कार्यरूप यह सर्वप्रपंच यह दोनों अपारमार्थिक हैं। और सो चैतन्यरूप ज्ञेयब्रह्म पारमार्थिक है ता असत् जगत्का तथा सत् ब्रह्मका कोईभी संबंध संभवता नहीं। यातैं श्रुति भगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं सो ज्ञेयब्रह्म अविद्याके तथा ताके कार्यरूप प्रपंचके संबंधतैं रहित कथन कऱ्या है। तहां श्रुति- (अक्षरात्परतः परः। आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्) अर्थ यह- आत्मज्ञानतैं विना अन्य उपायकरिकै नहीं नाशहोणेहारी तथा आपणे कार्यकी अपेक्षाकरिकै पर ऐसी जा अविद्या है तिस अविद्यातैंभी सो परब्रह्म पर है तथा सो परब्रह्म सूर्यकी न्याई दूसरे प्रकाशककी नहीं अपेक्षा करताहुआ सर्व प्रपंचका प्रकाश करैहै। तथा अविद्यारूप तमतैं पर है इति। यह वार्त्ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं भी कथन करीहै। तहां श्लोक-(निःसंगस्यैव संगेन कूटस्थस्य विकारिणा। आत्मनोऽनात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते ॥) अर्थ यह-सर्वसंगतैं रहित कूटस्थ आत्माका संगवान् विकारी अनात्मवस्तुके साथि वास्तवसंबंध संभवता नहीं इति। अथवा (तमसः परमुच्यते) इस वचनकरिकै श्रीभगवान्नैं तिस ज्ञेयब्रह्मविषे जडवर्गरूप तमतैं भिन्नपणा कथन कऱ्याहै ता भिन्नपणेकी सिद्धि करणेवासतै तिस ज्ञेयब्रह्मका (ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः) इस वचनकरिकै हेतुगर्भितविशेषण कथन कऱ्याहै ताकरिकै यह अनुमान सिद्ध होवैहै: सो ज्ञेयब्रह्म तिस जडवर्गरूप तमतैं भिन्न होणेकूं योग्य है ज्योतियोंकाभी ज्योतिरूप होणेतैं जो पदार्थ जडवर्गतैं भिन्न नहीं होवै है सो पदार्थ ज्योतियोंका ज्योतिरूपभी नहीं होवैहै जैसे घटादिक जड पदार्थ हैं इति। जिस कारणतैं सो ज्ञेयब्रह्म स्वयंज्यो-

तिरूप है तथा सर्व जडपदार्थोंके संबंधतैं रहित है। तिस कारणतैं सो ज्ञेयब्रह्म ज्ञानरूप है। अथवा शंका—हे भगवन् ! जैसे चंद्ररूप ज्योतिका प्रकाश करणेहारा तथा भौतिकत्वरूपकरिकै ता चंद्रके सजातीय सूर्यरूप ज्योति है यह वार्त्ता ज्योतिषशास्त्रविषे प्रसिद्ध है तैसे तिन सूर्यादिक ज्योतियोंका प्रकाश करणेहारा तथा तिन सूर्यादिकोंके सजातीय कोई अलौकिक ज्योति होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं—(ज्ञानमिति) हे अर्जुन ! सो सूर्यादिज्योतियोंका प्रकाश करणेहारा ज्ञेयब्रह्म कैसा है-ज्ञानरूप है। अर्थात् प्रमाणजन्य चित्तवृत्तिकरिकै अभिव्यक्त संवितरूप है कोई अलौकिक भौतिक ज्योति नहीं है। ऐसा ज्ञानरूप होणेतैं ही सो परब्रह्म ज्ञेयरूप है अर्थात् अज्ञात होणेतैं सो परब्रह्म अधिकारी जनोंनैं जानणेकूं योग्य है। ता ज्ञानरूप ब्रह्मतैं भिन्न जडपदार्थोंविषे सो अज्ञातपणा रहै नहीं। यातैं ते जडपदार्थ जानणे योग्य नहीं हैं। शंका—हे भगवन् ! ऐसा ज्ञेयब्रह्म इन सर्वप्राणियोंनैं किसवासतै नहीं जानीता है ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैंहैं (ज्ञानगम्यमिति) हे अर्जुन ! पूर्व अमानित्वतैं आदिलैके तत्त्वज्ञानार्थदर्शनपर्यंत कथन करे जे बीस साधन हैं जे साधन ज्ञानके हेतु होणेतैं ज्ञानशब्दकरिकै कथन करे हैं। ऐसे ज्ञानरूप साधनोंकरिकैही सो ज्ञेयब्रह्म प्राप्त होवैहै। तिन साधनोंतैं विना प्राप्त होवै नहीं। यातैं अमानित्वादिक साधनसंपन्न पुरुष ही तिस ज्ञेयब्रह्मकूं प्राप्त होवैहै। तिन साधनोंतैं रहित बहिर्मुख पुरुष तिस ज्ञेयब्रह्मकूं प्राप्त होते नहीं इति। शंका—हे भगवन् ! यज्ञादिक साधनोंकरिकै प्राप्त होणेयोग्य स्वर्गादिक जैसे देशकालकरिकै व्यवहित होवैं हैं तैसे अमानित्वादिक साधनोंकरिकै प्राप्त होणेयोग्य सो ज्ञेयब्रह्मभी देशकालकरिकै व्यवहित ही होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (हृदि सर्वस्य धिष्ठितमिति) हे अर्जुन ! सो ज्ञेयब्रह्म स्वर्गादिकोंकी न्याई कोई व्यवहित नहीं है किंतु सर्व प्राणियोंकी बुद्धिविषे ही स्थित है अर्थात् सो ज्ञेयब्रह्म सामान्यतैं सर्व प्रपंचविषे स्थित हुआभी विशेषरूपकरिकै तिस बुद्धिविषे ही जीवरूपकरिकै तथा अंतर्यामिरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै। जैसे सामान्यतैं सर्वपदार्थोंविषे स्थित हुआभी सूर्यका तेज दर्पण सूर्यकांतमणि इत्यादिक स्वच्छ पदार्थोंविषे विशेषरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवै है, तैसे स्थावरजंगमरूप सर्वजगतविषे सामान्यरूपतैं स्थित हुआभी सो परब्रह्म ता बुद्धिविषे विशेषरूपकरिकै अभिव्यक्तिकूं प्राप्त होवैहै। तात्पर्य

यह—सो परब्रह्म सर्वप्राणियोंका आपणा आत्मारूप होणेतैं वास्तवतैं अत्यंत अव्यवहित हुआभी भ्रांतिकरिकै व्यवहितकी न्याई प्रतीत होवैहै सोईही ज्ञेयब्रह्म तत्त्वज्ञानकरिकै सर्व भ्रमके कारणरूप अज्ञानकी निवृत्तिकरिकै आपणा आत्मारूप करिकै प्राप्त होवैहै ॥ १७ ॥

तहां पूर्व कथन करे हुए क्षेत्रादिकोंकूं तथा अधिकारीकूं तथा फलकूं कथन करते हुए श्रीभगवान् इस पूर्वप्रसंगका उपसंहार करैं हैं—

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ॥
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

(पदच्छेदः) इति । क्षेत्रम् । तथा । ज्ञानम् । ज्ञेयम् । च । उक्तम् । समासतः । मद्भक्तः । एतत् । विज्ञाय । मद्भावाय । उपपद्यते ॥ १८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे ताईं इस पूर्वउक्तप्रकारकरिकै क्षेत्र तथा ज्ञान तथा ज्ञेय संक्षेपकरिकै कथन करचा मेरा भक्त इन क्षेत्रादिक तीनोंकूं जानिकरिकै मेरेभावकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहै ॥ १८ ॥

भा० टी०—इस पूर्वउक्त प्रकारकरिकै मैं परमेश्वरनैं तुम्हारे ताईं महाभूतोंतैं आदिलैके धृतिपर्यंत क्षेत्रका स्वरूप संक्षेपतैं कथन कऱ्या । तथा अमानित्वतैं आदिलैके तत्त्वज्ञानार्थदर्शनपर्यंत ज्ञानभी संक्षेपतैं कथन कऱ्या । तथा (अनादिमत्परं ब्रह्म) इस वचनतैं आदिलैके (हृदि सर्वस्य धिष्ठितम्) इस वचनपर्यंत ज्ञेयब्रह्मभी संक्षेपतैं कथन कऱ्या अर्थात् जे क्षेत्र ज्ञान ज्ञेय यह तीनों श्रुतिस्मृतियोंविषे अत्यंत विस्तारतैं कथन करेहैं ते तीनों तिन श्रुतिस्मृतिवचनोंतैं आकर्षणकरिकै मंदबुद्धि पुरुषोंके अनुग्रहवासतै मैं परमेश्वरनैं संक्षेपकरिकै तुम्हारे ताईं कथन करेहैं । इतना ही सर्ववेदोंका अर्थ है तथा इस गीताशास्त्रका अर्थ है इति । तहां इस अर्थविषे पूर्व द्वादश अध्यायविषे कथन करे हैं लक्षण जिसके ऐसा जो मैं परमेश्वरका भक्त है सो मेरा भक्तही अधिकारी है, इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (मद्भक्तः इति) अर्थात् परमगुरुरूप मैं भगवान् वासुदेवविषे समर्पण करे हैं सर्वकर्म जिसनैं तथा एक मैं परमेश्वरके ही शरणकूं प्राप्त हुआ जो मैं परमेश्वरका भक्त है सो मेरा भक्त ही इन पूर्व उक्त क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय तीनोंकूं भलीप्रकारतैं जानिकै मेरे भावकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहै अर्थात् सर्व अनर्थोंतैं

रहित परमानंद ब्रह्मभावरूप मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहै । तहां परमेश्वरकी भक्तिकरिकै ही इस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति होवैहै यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति-(यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥) अर्थ यह-जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे अनन्यभक्ति है और जैसी परत्मादेवविषे अनन्यभक्ति है तैसीही ब्रह्मवेत्तागुरुविषे अनन्यभक्ति है, तिस महात्मा पुरुषकूं ही यह वेदांतप्रतिपादित अर्थ हृदयविषे प्रकाशमान होवैहैं इति । और यह अधिकारी पुरुष ज्ञेयब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानिकै ब्रह्मरूप होवैहै । यह वार्त्ताभी श्रुतिविषे कथन करीहै । तहां श्रुति-(ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।) अर्थ यह-यह अधिकारी पुरुष मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारतैं ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानिकै ब्रह्मरूप ही होवैहै। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। परमपुरुषार्थके प्राप्तिकी इच्छावान् यह अधिकारी पुरुष अत्यंत तुच्छविषयभोगोंकी इच्छाका परित्याग करिकै सर्वकालविषे एक मैं परमेश्वरके शरण हुआ आत्मज्ञानके अमानित्वादिक साधनोंकूं ही प्रयत्नतैं संपादन करै ॥ १८ ॥

तहां इस पूर्वउक्त ग्रंथकरिकै (तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च) इस वचनका व्याख्यान कऱ्या । अब (यद्विकारि यतश्च यत् । स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनका व्याख्यान करणा प्राप्त भया। तहां प्रकृति पुरुष इन दोनोंकूं संसारका हेतुपणा कथन करिकै (यद्विकारि यतश्च यत्) इस वचनका अर्थ (प्रकृतिं पुरुषं चैव) इत्यादिक दो श्लोकोंकरिकै विस्तारतैं कथन करैहैं। और (स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनका अर्थ तौ (पुरुषः प्रकृतिस्थो हि) इत्यादिक दो श्लोकोंकरिकै विस्तारतैं कथन करैंगे । तहां पूर्व सप्तम अध्यायविषे क्षेत्रनामा अपरा प्रकृति तथा क्षेत्रज्ञ जीवनामा परा प्रकृति इन दोनों प्रकृतियोंकूं कथन करिकै (एतद्योनीनि भूतानि) इस वचनकरिकै तिन दोनों प्रकृतियोंविषे सर्व भूतोंकी कारणता कथन करीथी । अब तिन दोनों प्रकृतियोंविषे अनादिपणा कथन करिकै सर्व भूतोंविषे तिन दोनों प्रकृतियोंके कार्यपणेकूं श्रीभगवान् कथन करैहैं-

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ॥
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

(पदच्छेदः) प्रकृतिम् । पुरुषम् । च । एव । विद्धि । अनादी । उभौ । अपि । विकारान् । च । गुणान् । च । एव । विद्धि । प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! प्रकृतिकूं तथा पुरुषकूं दोनोंकूं भी तूं अनादि ही जान तथा विकारोंकूं तथा गुणोंकूं तौ प्रकृतितैं उत्पन्नहुआ ही तूं जान ॥ १९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! माया अज्ञान् अविद्या यह हैं नाम जिसके ऐसी जा त्रिगुणात्मिका परमेश्वरकी शक्ति है जा मायाशक्ति पूर्व सप्तमअध्यायविषे अष्टप्रकारकी कथन करीथी तथा अपरा प्रकृति इस नामकरिकै कथन करीथी सा क्षेत्रनामा अपरा प्रकृति इहां प्रकृतिशब्दकरिकै ग्रहण करणी। और पूर्व सप्तमअध्यायविषे जा क्षेत्रज्ञरूप जीवनामा परा प्रकृति कथन करीथी सा जीवनामा परा प्रकृतिही इहां पुरुषशब्दकरिकै ग्रहण करणी । ऐसे प्रकृति पुरुष दोनोंकूंभी तूं अनादि ही जान । तहां नहीं विद्यमान है आदि क्या कारण जिसका ताका नाम अनादि है ऐसा अनादिरूप तिन दोनोंकूं तूं जान । तहां (मायां तु प्रकृतिं विद्यात्) इस श्रुतिनैं तिस मायारूप प्रकृतिकूंही सर्वजगत्का कारण कह्या है ऐसी सर्वजगत्के कारणरूप प्रकृतिविषे सो अनादिपणा युक्त है । काहेतैं जो कदाचित् तिस मायानामा प्रकृतिकूंभी अन्य किसी कारणकी अपेक्षा मानिये तौ तिस प्रकृतिके कारणकूंभी किसी अन्यकारणकी अपेक्षा होवैगी तिस अन्यकारणकूंभी किसी अन्यकारणकी अपेक्षा होवैगी इस प्रकारतैं कारणोंकी अनवस्था प्राप्त होवैगी । यातैं ता मायारूप प्रकृतिविषे सो अनादिपणा ही मानणे योग्य है । किंवा तिस मायारूप प्रकृतिविषे केवल युक्तिकरिकै ही सो अनादिपणा नहीं किंतु(अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्) यह साक्षात् श्रुतिभी तिस प्रकृतिविषे अनादिपणेकूं कथन करै है । किंवा जैसे मायारूप प्रकृतिविषे सो अनादिपणा युक्तिकरिकै तथा श्रुतिकरिकै सिद्ध है । तैसे क्षेत्रज्ञनामा जीवात्मा पुरुषविषेभी सो अनादिपणा युक्तिकरिकै तथा श्रुतिकरिकै सिद्ध है सो दिखावैं हैं। इन सर्वप्राणीमात्रकूं जन्मकालविषेही हर्ष, शोक, भय, सुख, दुःख, प्रवृत्ति इत्यादिक प्राप्त होवे हैं तिन हर्षशोकादिकोंविषे इस जन्मके तौ धर्म अधर्म संस्कार कारण हैं नहीं किंतु तिन जीवोंकूं ते हर्ष शोकादिक पूर्वजन्मके धर्म अधर्मकरिकै तथा संस्कारोंकरिकै ही प्राप्त होवैं हैं । ते धर्म अधर्मादिक धर्म आश्रयतैं विना संभवते नहीं । यातैं इस जन्मतैं पूर्वजन्मोंविषेभी ता जीवात्माकी विद्यमानता अंगीकार करणी

होवैगी इस प्रकारतैं धर्म अधर्मादिकोंकी आश्रयतारूप करिकै इस जीवात्माविषे अनादिपणा सिद्ध होवै है। किंवा इस जीवात्माकूं जो कदाचित् अनादि नहीं मानियें किंतु उत्पत्तिवाला मानियें तौ पूर्व करे हुए पुण्यपापकर्मोंका सुखदुःखरूप फलके भोगतैं विना ही नाश होवैगा। तथा पूर्व नहीं करेहुए पुण्यपापरूप कर्मोंके सुखदुःखरूप फलका भोग होवैगा। या प्रकारके कृतनाश तथा अकृताभ्यागम यह दोनों दोष प्राप्त होवैंगे तिन दोनों दोषोंकी निवृत्ति वासतैंभी इस जीवात्माकूं अनादिही मान्या चाहिये। और (अजो ह्येको जुषमाणोनुशेते) इत्यादिक श्रुतियांभी तिस जीवात्माकूं अनादिही कथन करैं हैं इति। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं सा मायानामा प्रकृति अनादि है इसकारणतैं ता मायानामा प्रकृतिविषे जो पूर्व सर्वभूतोंका कारणपणा कथन कऱ्याथा सो संभव होइसकै है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् कथन करैंहैं (विकारांश्चेति) हे अर्जुन ! आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी यह जे पंचमहाभूत हैं तथा श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु, मन यह जे एकादश इंद्रिय हैं इन षोडशोंका नाम विकार है। तथा सुख दुःख मोहरूप जे सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण हैं तिन षोडश विकारोंकूं तथा तीन गुणोंकूं तूं तिस मायारूप प्रकृतितैं ही उत्पन्न हुआ जान ॥ १९ ॥

अब तिन विकारोंविषे प्रकृतिजन्यत्वका विवेचन करते हुए श्रीभगवान् तिस क्षेत्रज्ञ पुरुषविषे संसारका हेतुपणा दिखावैं हैं–

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

(पदच्छेदः) कार्यकरणकर्तृत्वे। हेतुः। प्रकृतिः। उच्यते। पुरुषः। सुखदुःखानाम्। भोक्तृत्वे। हेतुः। उच्यते ॥ २० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! कार्यकरणोंके कर्त्तापणेविषे सा प्रकृतिही हेतु कहीजावैहै तथा सुखदुःखोंके भोक्तापणेविषे सो पुरुषही हेतु कह्याजावैहै ॥ २० ॥

भा०टी०–इहां शरीरका नाम कार्य है और ता शरीरविषे स्थित जे पंच ज्ञानइंद्रिय पंच कर्मइंद्रिय मन बुद्धि चित्त यह त्रयोदश इंद्रिय हैं तिनोंका नाम करण है। इहां इस देहका आरंभ करणेहारे आकाशादिक पंच भूत तथा शब्दादिक पंच विषय यह सर्व ता शरीररूप कार्यके ग्रहणकरिकै ग्रहण करणे। और

सुखदुःखमोहरूप सत्त्व रज तम यह तीन गुण तिस करणके आश्रितहोणेतैं ता करणके ग्रहणकरिकै ग्रहण करणे । ऐसे कार्योंके तथा करणोंके कर्तृत्वविषे अर्थात् तिस कार्यकरणके आकार परिणामविषे महाऋषियोंनैं सा मायारूप प्रकृति ही कारणरूप कही है। तहां किसी पुस्तकविषे (कार्यकारणकर्तृत्वे) या प्रकारकाभी पाठ होवैहै । इस प्रकारके पाठविषेभी यह पूर्व उक्त अर्थ ही जानणा । इस प्रकार मायारूप प्रकृतिविषे संसारका कारणपणा कथन करिकै अब तिस क्षेत्रज्ञनामा पुरुषविषेभी जिस प्रकारका सो कारणपणा है ताकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (पुरुषः इति) हे अर्जुन ! जो क्षेत्रज्ञरूप जीवनामा पुरुष पूर्व परा प्रकृति इस नामकरिकै कथन कऱ्याथा सो क्षेत्रज्ञ पुरुष सुखदुःखोंके भोक्तृत्वविषे कारण कह्या जावै है। अर्थात् सुखदुःखमोहरूप सर्व भोग्यपदार्थोंके वृत्तियुक्त अनुभवविषे कारण कह्या जावै है इति। और किसी टीकाविषे तौ (कार्यकरणकर्तृत्वे) इस श्लोकका यह अर्थ कथन कऱ्या है । ता क्षेत्रज्ञ पुरुषके कार्यपणेविषे तथा करणपणेविषे तथा कर्त्तापणेविषे सा मायारूप प्रकृतिही ता पुरुषके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्त हुई कारण होवैहै । जैसे अग्निके साथि तादात्म्यभावकूं प्राप्त हुआ लोह तिस अग्निके चतुष्कोणत्व आदिकोंका कारण होवै है तैसे ता पुरुषके साथि तादाम्यभावकूं प्राप्त हुई सा मायारूप प्रकृतिही ता पुरुषके कार्यपणेविषे तथा करणपणेविषे तथा कर्त्तापणेविषे कारण होवैहै । इस प्रकार ता प्रकृतिके सुखदुःखोंके भोक्तापणेविषे सो क्षेत्रज्ञ पुरुषही ता प्रकृतिविषे आपणे आभासरूप छायाकी प्राप्तिकरिकै कारण होवैहै । जैसे अग्नि लोहविषे आपणी छायाकी प्राप्तिकरिकै ता लोहके दाह कर्त्तापणेविषे कारण होवैहै तैसे सो क्षेत्रज्ञ पुरुषभी ता प्रकृतिविषे आपणे छायाकी प्राप्तिकरिकै ता प्रकृतिके सुखदुःखोंके भोक्तापणेविषे कारण होवैहै सो दिखावैंहैं । कार्यपणा, करणपणा, कर्त्तापणा यह तीनों वास्तवतैं प्रकृतिके विकाररूप देहइंद्रियबुद्धिके धर्म हुएभी चेतन आत्माविषे आरोपण करे जावैंहैं । जैसे मैं गौर हूं, मैं इस मनुष्यका पुत्र हूं, मैं काणा हूं, मैं खंज हूं, मैं कर्त्ता हूं, इस प्रकारतैं देहादिकोंके कार्यत्वादिक धर्म चेतन आत्माविषे आरोपित हुए प्रतीत होवैंहैं। और तिस चेतन आत्माके आभासरूप छायाकूं प्राप्त हुई सा बुद्धि भी मैं चेतनतावाली हूं तथा सुख दुःखादिकोंकूं मैं जानती हूं इस प्रकारतैं चेतन आत्माके धर्मोंकूं आपणेविषे मानै है । इस प्रकारका जो प्रकृति पुरुष दोनोंविषे परस्पर धर्मोंका अध्यास है

सो अध्यासही इस संसारका कारण सिद्ध होवै है। इतने कहणे करिकै जो सांख्यवादियोंनैं केवल पुरुषविषेही भोक्तापणा मान्या है सोभी खंडन हुआ जानणा। जो कदाचित् ऐसा नहीं अंगीकार करिये किंतु प्रकृतिकूं तौ कर्त्ता मानियें और पुरुषकूं भोक्ता मानियें तौ कर्तृत्व भोक्तृत्व इन दोनोंका एक अधिकरण सिद्ध नहीं होवैगा किंतु भिन्नभिन्न अधिकरण सिद्ध होवैगा सो अत्यंत विरुद्ध है और भोक्तापुरुषविषे निर्विकारपणाभी सिद्ध होवैगा नहीं॥ २०॥

हे भगवन्! (पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते) इस वचनकरिकै पूर्व आपनैं क्षेत्रज्ञनामा पुरुषविषे सुखदुःखका भोक्तृत्वरूप संसारीपणा कथन कऱ्या सो तिस पुरुषके संसारीपणेविषे कोई निमित्त है अथवा नहीं है। तहां किसी निमित्ततैं विना जो तिस पुरुषविषे संसारीपणा मानोगे तौ मुक्तिकालविषे तिस पुरुषविषे सो संसारीपणा होणा चाहिये। इस दोषकी निवृत्ति करणेवासतैं ता पुरुषके संसारीपणेविषे कोई निमित्त अंगीकार करणा होवैगा। सो निमित्त कौन है? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता निमित्तकूं कथन करैंहैं—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्॥
कारणं गुणसंगोस्य सदसद्योनिजन्मसु॥ २१॥

(पदच्छेदः) पुरुषः। प्रकृतिस्थः। हि। भुंक्ते। प्रकृतिजान्। गुणान्। कारणम्। गुणसंगः। अस्य। सदसद्योनिजन्मसु॥ २१॥

(पदार्थः) हे अर्जुन! यह क्षेत्रज्ञ पुरुष मायारूपप्रकृतिविषे स्थितहुआही तिस प्रकृतिजन्य सुखदुःखादिक गुणोंकूं भोगै है यातैं सत्असत्योनिजन्मोंविषे इस पुरुषका त्रिगुणात्मकप्रकृतिके साथि तादात्म्यही कारण है॥ २१॥

भा० टी०—हे अर्जुन! यह क्षेत्रज्ञनामा पुरुष प्रकृतिविषे स्थित हुआही अर्थात् मायारूपप्रकृतिके साथि मिथ्यातादात्म्यभावकूं प्राप्त हुआही तिस प्रकृतिजन्य सुखदुःखादिक गुणोंकूं भोगै है अर्थात् अंतःकरणकी वृत्तिकरिकै तिन सुखदुःखादिकोंकूं अनुभव करै है। यातैं तिस प्रकृतिजन्य सुखदुःखादिकगुणोंके भोगका स्थानरूप जो सत्योनिविषे जन्म है तथा असत्योनिविषे जन्म है तथा सत् असत् योनिविषे जन्म है तिन जन्मोंकी प्राप्तिविषे इस क्षेत्रज्ञनामा पुरुषक

गुणसंगही कारण है अर्थात् सत्त्व, रज, तम यह तीन गुणात्मक मायारूपप्रकृतिविषे तिस पुरुषका तादात्म्य अभिमानही कारण है । ता प्रकृतिके तादात्म्य अभिमानतैं विना तिस असंग पुरुषकूं स्वभावतैं सो फलभोक्तृत्वरूप संसार संभवता नहीं । तहां इंद्रादिक देवताशरीर तौ सत्योनिविषे जन्मवाले हैं यातैं तिन देवताशरीरोंविषे सात्त्विक इष्टफल ही भोग्या जावै है । और पशुआदिक असत्योनिविषे जन्मवाले हैं। यातैं तिन पशुआदिक शरीरोंविषे तामस अनिष्टफलही भोग्या जावै है । और ब्राह्मणादिक मनुष्यशरीर तौ धर्म अधर्म दोनों करिकै मिश्रित होणेतैं सत् असत योनिविषे जन्मवाले हैं । यातैं तिन मनुष्यशरीरोंविषे राजस इष्ट अनिष्ट मिश्रित फल भोग्या जावैहै । अथवा (गुणसंगः) इस वचनका यह दूसरा अर्थ करणा— सुखदुःखमोहरूप जे शब्दादिक विषयरूप गुण हैं तिन शब्दादिक गुणोंविषे जो इस पुरुषका अभिलाषारूप संग है जिस अभिलाषारूप संगकूं शास्त्रविषे काम इस नामकरिकै कथन कऱ्या है । ऐसा गुणसंग ही इस पुरुषकूं सत्असत्योनिजन्मोंविषे कारण होवै है । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है। तहां श्रुति—(स यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते ।) अर्थ यह—सो पुरुष जिस वस्तुविषयक अभिलाषारूप कामवाला होवै है तिस वस्तुविषयक ही निश्चयवाला होवै है और जिस वस्तुविषयक निश्चयवाला होवै है तिस वस्तुकी प्राप्तिवासतैही कर्मकूं करै है । और जिस वस्तुकी प्राप्तिवासतै कर्मकूं करै है तिसीही वस्तुकूं प्राप्त होवै है इति । इस पक्षविषेभी ता संसारका मूलकारणरूप करिकै तौ सो त्रिगुणात्मक प्रकृतिका तादात्म्य अभिमान ही अंगीकार करणा इति । और किसी टीकाविषे तौ (पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।) इस वचनका यह अर्थ कऱ्या है—देह, इंद्रिय, मन इत्यादिक संघातका नाम प्रकृति है । ऐसी प्रकृतिविषे तादात्म्यभावकूं प्राप्तहुआ ही यहपुरुष तिस प्रकृतिजन्य सुखदुःखमोहरूप गुणोंकूं भोगै है । जिस कालविषे सुषुप्ति समाधि मूर्च्छादिकोंविषे इस पुरुषका तिस प्रकृतिविषे स्थितपणा नहीं है तिस कालविषे ता सुषुप्ति समाधि मूर्च्छादिकोंविषे यह पुरुष तिन सुखदुःखादिकोंकूं प्राप्त होवै नहीं । यातैं ते सुखदुःखादिक केवल उपाधिविषेही स्थित हैं ता उपाधिके अभाव हुए ते सुखदुःखादिक प्रतीत होवैं नहीं यह अर्थ सिद्ध भया । यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है । तहां श्रुति—(आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।)

अर्थ यह—देह श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै तथा मनकरिकै युक्त हुआ ही यह आत्मा भोक्ता होवै है। इस प्रकार तत्त्ववेत्ता पुरुष कथन करैं हैं। यह श्रुति देह इंद्रिय मनके योगतैंही आत्माविषे भोक्तापणेकूं दिखावती हुई केवल शुद्ध आत्माविषे ता भोक्तापणेका निषेध करै है इति। और किसी टीकाविषे तौ (पुरुषः प्रकृतिस्थो हि) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है। देह इंद्रिय मन इत्यादिक जड पदार्थोंका संघातरूप जा प्रकृतिहै तिस प्रकृतिविषे स्थित हुआ विद्वान् पुरुष अथवा अविद्वान् पुरुष तिस प्रकृतिजन्य सुखदुःखादिक गुणोंकूं समान ही भोगै है। यह वार्त्ता ब्रह्मसूत्रोंविषे श्रीभाष्यकार भगवान्नैंभी कथन करी है (पश्वादिभिश्चाविशेषात्।) अर्थ यह—व्यवहारकालविषे विद्वान् पुरुषकी पशुआदिकोंके साथि तुल्यताही होवै है अर्थात् जैसे पशुआदिक इष्टवस्तुकूं देखिकै प्रवृत्त होवैं हैं अनिष्ट वस्तुकूं देखिकै निवृत्त होवैं हैं तैसे सो विद्वान् पुरुषभी इष्टवस्तुकूं देखिकै तौ प्रवृत्त होवै है और अनिष्ट वस्तुकूं देखिकै निवृत्त होवै है इति। शंका—हे भगवन्! प्रकृतिविषे स्थित होइकै ता प्रकृतिजन्य सुखदुःखादिक गुणोंके भोगविषे जो विद्वान् पुरुषकी तथा अविद्वान् पुरुषकी समानताही अंगीकार करौगे तौ जैसे सो विद्वान् पुरुष मुक्त है तैसे सो अविद्वान् पुरुषभी क्यों नहीं मुक्त होता? तथा जैसे सो अविद्वान् पुरुष बंधायमान है तैसे सो विद्वान् पुरुषभी क्यों नहीं बंधायमान होता? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैं हैं (कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु इति।) हे अर्जुन! देहइंद्रियविषयरूप गुणोंविषे जो इस पुरुषका संग है अर्थात् यह मैं हूं यह मेरे हैं इस प्रकारका जो अहंमम अभिमानरूप अभिनिवेश है सो गुणसंगही इस पुरुषके सत् असत् योनिजन्मोंविषे कारण है। तहां विद्वान् पुरुषोंविषे तौ सो जन्मका कारणरूप गुणसंग है नहीं। यातैं ते विद्वान् पुरुष जन्मादिक बंधकूं प्राप्त होवैं नहीं। और अविद्वान् पुरुषोंविषे तौ सो जन्मका कारणरूप गुणसंग विद्यमान है। यातैं ते अविद्वान् पुरुष मुक्तिकूं प्राप्त होवैं नहीं। तहां दृष्टांत— जैसे किसी पुरुषके देहविषे पिशाच प्रवेश करै है तहां तिस देहविषे ता पिशाचकाभी संबंध है। तथा तिस देहपति जीवकाभी संबंध है। तिस देहसंबंधके समान हुएभी जिस कालविषे सो पिशाच तिस देहके अभिमानकूं धारण करैहै तिस कालविषे तौ सो पिशाच ही तिस देहकी पीडाकरिकै पीडित होवैहै। सो देहपति जीव ता देहकी पीडाकरिकै पीडित होवै नहीं। और जिसकालविषे सो देह-

पति जीव ही तिस देहके अभिमानकूं धारण करै है तिस कालविषे सो देहपति जीव ही तिस देहकी पीडाकरिकै पीडित होवैहै। सो पिशाच ता देहकी पीडाकरिकै पीडित होवै नहीं। इस प्रकारतैं अहंमम अभिमानरूप संगविषे ही बंधकपणा प्रसिद्ध देखणेविषे आवैहै। समीपतामात्रविषे सो बंधकपणा देखणेविषे आवता नहीं। यातैं विद्वान् पुरुषविषे तथा अविद्वान् पुरुषविषे देहसंबन्धके समान हुएभी अहंमम अभिमानरूप संगकृत तथा ता संगके अभावकृत तिन दोनोंविषे महान् विशेषता है ॥ २१ ॥

तहां पूर्वश्लोकविषे प्रकृतिके मिथ्या तादात्म्य अध्यासतैं ही पुरुषकूं संसारकी प्राप्ति होवैहै ता प्रकृतिके तादात्म्यतैं विना स्वरूपतैं ता पुरुषविषे सो संसार है नहीं यह वार्त्ता कथन करी। अब तिस क्षेत्रज्ञनामा पुरुषका किस प्रकारका सो वास्तवस्वरूप है जिस स्वरूपविषे सो संसार नहीं संभवैहै ? ऐसी अर्जुनकी जिज्ञासाके हुए श्रीभगवान् तिस क्षेत्रज्ञनामा पुरुषके स्वरूपकूं साक्षात् दिखावते हुए कहैं हैं—

उपद्रष्टानुमंता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ॥
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥

(पदच्छेदः) उपद्रष्टा । अनुमंता । च । भर्त्ता । भोक्ता । महेश्वरः । परमात्मा । इति । च । अपि । उक्तः । देहे । अस्मिन् । पुरुषः । परः ॥ २२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! इस देहविषे वर्त्तमानहुआभी यह पुरुष सर्वतैं भिन्न है जिसकारणतैं यह पुरुष उपद्रष्टा है तथा अनुमंता है तथा भर्त्ता है तथा भोक्ता है तथा महेश्वर है तथा श्रुतिविषे परमात्मा इसनामकरिकै भी कथन कऱ्याहै ॥ २२ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तिस मायारूप प्रकृतिका परिणामरूप जो यह देह है इस देहविषे जीवरूपकरिकै वर्त्तमानहुआभी यह क्षेत्रज्ञनामा पुरुष पर है अर्थात् तिस प्रकृतिजन्य गुणोंके संबंधतैं रहित है तथा आपणे स्वरूपकरिकै परमार्थतैं असंसारी है। अब तिस पुरुषके वास्तवतैं असंगपणेविषे श्रीभगवान् उपद्रष्टा, अनुमंता, भर्त्ता, भोक्ता, महेश्वर, परमात्मा इन षट् हेतुगर्भित विशेषणोंकूं कथन करैहैं। (उपद्रष्टा इति) हे अर्जुन ! सो क्षेत्रज्ञनामा पुरुष कैसा है—उपद्रष्टा है अर्थात् जैसे

यज्ञरूपकर्मकी सिद्धि करणेवासतै व्यापारवाले हुए जे ऋत्विक् हैं तथा यजमान हैं तिन ऋत्विक्यजमानके समीपवर्त्ती जो कोई अन्यपुरुष है सो अन्यपुरुष आप तिस यज्ञके अनुकूल व्यापारतैं रहित हुआभी यज्ञविद्याविषे कुशल होणेतैं तिन ऋत्विक्यजमानके व्यापारोंविषे स्थित गुणदोषोंकूं देखै है। तैसे यह क्षेत्रज्ञनामा पुरुष देहइंद्रियादिकोंके व्यापारविषे आप नहीं व्यापारवाला हुआ तथा तिन देहइंद्रियादिकोंतैं विलक्षण हुआ तिन व्यापारसहित देहइंद्रियादिकोंकूं समीप स्थित होइके देखै है। सो क्षेत्रज्ञनामा पुरुष तिन देहइंद्रियादिकोंकी न्याई आप कर्त्ता होवै नहीं। यातैं यह आत्मादेव उपद्रष्टा कह्या जावै है। तहां श्रुति-(स यत्तत्र किंचित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसंगो ह्ययं पुरुषः।) अर्थ यह-यह आत्मादेव पुरुष तिन जाग्रत्स्वप्नादिक अवस्थावोंविषे जिसजिस पदार्थकूं देखै है तिसतिस पदार्थके साथि संबंधवाला होवै नहीं। जिस कारणतैं यह आत्मापुरुष असंग है इति। अथवा देह, चक्षु, मन, बुद्धि, आत्मा इन पांच द्रष्टावोंके मध्यविषे बाह्यदेहादिक च्यारि द्रष्टावोंकी अपेक्षाकरिकै अव्यवहितद्रष्टा जो आत्मा पुरुष है सो आत्मापुरुष उपद्रष्टा कह्या जावै है। तहां उपद्रष्टा इस वचनविषे स्थित जो उप यह शब्द है ता उपशब्दका समीपता अर्थ है। सो अव्यवधानरूप समीपता अर्थ प्रत्यक् आत्माविषे ही घटैहै अन्य किसी अनात्मपदार्थविषे घटता नहीं। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कर्‍या। आत्मा देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्न है उपद्रष्टा होणेतैं। जैसे यज्ञका उपद्रष्टा पुरुष ता यज्ञके कर्त्ता ऋत्विक्यजमानतैं भिन्न होवैहै इति। पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञ आत्मापुरुष-अनुमंता है, अर्थात् देहइंद्रियोंकी प्रवृत्तिविषे आप नहीं प्रवृत्त हुएभी प्रवृत्त हुएकी न्याई समीपतामात्रकरिकै तिनोंके अनुकूल होणेतैं सो क्षेत्रज्ञ पुरुष अनुमंता कह्या जावैहै। अथवा आपणे आपणे व्यापारोंविषे प्रवृत्त हुए जे देहइंद्रियादिक हैं तिन देहइंद्रियाकोंकूं जो कदाचितभी आपणे व्यापारतैं निवृत्त करता नहीं। सो तिन देहइंद्रियादिकोंका साक्षीरूप पुरुष अनुमंता कह्या जावैहै। तहां श्रुति-अनुमंता साक्षी च उपद्रष्टानुद्रष्टानुमंतैष आत्मा।) अर्थ यह- यह आत्मादेव अनुद्रष्टा है तथा साक्षी है तथा यह आत्मादेव उपद्रष्टा है तथा अनुमंता है इति। इतनै कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कर्‍या। आत्मा देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्न है अनुमन्ता होणेतैं। जैसे विवादकर्त्ता पुरुषतैं तटस्थ पुरुष

भिन्न होवैहै इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञपुरुष– भर्त्ता है, अर्थात् चैतन्यकं आभासकरिकै युक्त तथा संघातभावकूं प्राप्त हुए जे देह, इंद्रिय, मन, बुद्धि हैं तिन देह इंद्रियादिकोंकूं सो क्षेत्रज्ञ आत्मापुरुष आपणी सत्ताकरिकै तथा स्फुरणकरिकै धारण करणेहारा है तथा पोषण करणेहारा है । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या– आत्मा देह इंद्रियादिकोंतैं भिन्न है भर्त्ता होणेतैं । जैसे पुत्रादिकोंका भरण करणेहारा पिता तिन पुत्रादिकोंतैं भिन्न होवैहै इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञ आत्मापुरुष-भोक्ता है, अर्थात् बुद्धिकी सुखदुःखमोक्षरूप जे वृत्तियां विशेष हैं तिन वृत्तियोंकूं स्वरूप चैतन्यकरिकै प्रकाश करताहुआ यह आत्मादेव निर्विकार हुआ ही तिन सुखादिकोंका उपलब्धा है । इतने कहणे-करिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या । आत्मा बुद्धि आदिकोंतैं भिन्न है भोक्ता होणेतैं । जैसे देवदत्तनामा भोक्ता पुरुष अन्नादिक भोज्य पदार्थोंतैं भिन्न होवैहै इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञपुरुष–महेश्वर । तहां महान् होवै सोई ही ईश्वर होवैहै ताका नाम महेश्वर है । तहां सर्वका आत्मारूप होणेतैं सो क्षेत्रज्ञ पुरुष महान् कह्या जावैहै । और स्वतंत्र होणेतैं ईश्वर कह्या जावैहै । अ-थवा जैसे चुंबक पाषाणकी समीपताकरिकै लोह चेष्टा करैहै तैसे जिसकी समीप-तामात्रकरिकै यह बुद्धि आदिक सर्व पदार्थ नानाप्रकारकी चेष्टा करैं हैं सो क्षेत्रज्ञ आत्मा ईश्वर कह्या जावैहै । तहां श्रुति–(महतो महीयान् ईशानो भूतभ-व्यस्य) अर्थ यह–यह आत्मादेव आकाशादिक महान्पदार्थोंतैंभी अत्यंत महान् है तथा भूत, भविष्यत, वर्त्तमान, सर्व जगत्का प्रेरणा करणेहारा ईशान है इति। इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या । आत्मा प्रकृतितैं तथा ताके कार्यतैं भिन्न होणेकूं योग्य है महेश्वर होणेतैं। जैसे महाराजा आपणी प्रजातैं भिन्न होवैहै इति । पुनः कैसा है सो क्षेत्रज्ञपुरुष–श्रुतिविषे परमात्मा इस शब्दक-रिकै कथन कऱ्याहै अर्थात् अविद्याके वशतैं आत्मस्वरूपकरिकै कल्पना करे जे देहतैं आदिलेके बुद्धिपर्यंत जडपदार्थ हैं तिन सर्व जडपदार्थोंतैं जो उत्कृष्ट होवै ताकूं परम कहैंहैं ऐसा परम जो पूर्वउक्त उपद्रष्टृत्वादिक विशेषणविशिष्ट आत्मा है ताका नाम परमात्मा है । यह वार्त्ता । (उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मे-त्युदाहृतः ।) इस वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही आगे अथन करैगा । इतने कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या है । आत्मा देहइंद्रियादि-

कोंतैं भिन्न है परमात्मा होणेतैं। जो देहइंद्रियादिकोंतैं भिन्न नहीं होवैहै सो परमात्माभी नहीं होवैहै जैसे देहइंद्रियादिक हैं इति। और कीसी टीकाविषे तौ (उपद्रष्टानुमंता च) इस श्लोकका यह अर्थ कऱ्या है। तहां पूर्व (स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनकरिकै क्षेत्रज्ञ तथा ता क्षेत्रज्ञका प्रभाव इन दोनोंके वर्णन करणेकी प्रतिज्ञा करीथी। तहां क्षेत्रज्ञका स्वरूप तौ पूर्व वर्णन कऱ्या। अब इस श्लोककरिकै ता क्षेत्रज्ञके प्रभावका वर्णन करैहैं। (उपद्रष्टा इति) तहां पूर्व श्लोकविषे पुरुषका देह इंद्रिय मन आदिक गुणोंके साथि जो संग है सो गुणसंगही इस पुरुषके जन्मका कारण है यह वार्त्ता कथन करीथी। तहां सो गुणसंग च्यारि प्रकारका होवैहै। एक तौ पुरुषका निषेधकरिकै तिस गुणमात्रकी प्रधानताकरिकै गुणसंग होवैहै और दूसरा तिस पुरुषकूं अंतरभूतकरिकै तिस गुणकी प्रधानताकरिकै गुणसंग होवैहै। और तीसरा पुरुषकी तथा तिन गुणोंकी समप्रधानताकरिकै सो गुणसंग होवैहै। और चौथा तिन गुणोंकी अप्रधानताकरिकै तथा ता पुरुषकी प्रधानताकरिकै गुणसंग होवैहै। तहां प्रथम गुणसंगविषे तौ देह इंद्रिय मन आदिरूप गुणोंके संघातकूं ही आत्मारूपकरिकै देखता हुआ यह पुरुष भोक्ता कह्या जावैहै। जैसे देहादिकोंकूं ही आत्मा मानणेहारे चार्वाकादिक हैं। और दूसरे गुणसंगविषे तौ तिन देहइंद्रियादिरूप गुणोंकूं ही प्रधान होणेतैं आत्माविषे वास्तवकर्तृत्वादि अभिमानकरिकै यह पुरुष कर्मके फलका भर्ता कह्या जावैहै। जैसे नैयायिक आदिक हैं। और तीसरे गुणसंगविषे तौ आत्माके साथि तिन गुणोंकी समप्रधानताकरिकै गुणविषे स्थितभी भोक्तापणेकूं असंगभी आत्माविषे वस्त्रविषे भल्लातकके अंकोंकी न्याईं यह पुरुष मानता हुआ अनुमंता कह्या जावैहै। जैसे सांख्यशास्त्रवाले पुरुष हैं। और चौथे गुणसंगविषे तौ सर्वप्रकारतैं तिन गुणोंके धर्मोंका आत्माविषे प्रवेश नहीं देखताहुआ उदासीन बोधरूपताकरिकै तिन सर्वगुणोंके प्रचारोंकूं देखताहुआ यह पुरुष उपद्रष्टा कह्या जावैहै। जैसे हम वेदांतियोंका साक्षी आत्मा है। तहां पूर्व कथन करे जे भोक्ता, भर्त्ता, अनुमंता, उपद्रष्टा यह च्यारि गुणोंके संगवाले हैं तिन च्यारों गुणसंगियोंविषे उपद्रष्टा तौ उत्तम है और अनुमंता मध्यम है और भर्त्ता अधम है और भोक्ता अधमतैं अधम है। और जो चैतन्यदेव तिन गुणोंके संगतैं भोक्तादिभावकूं प्राप्त हुआहै सोईही चैतन्यदेव जिस कालविषे तिन सर्वगुणोंकूं आपणे वशकरिकै क्रीडा करैहै तिस

कालविषे महेश्वर इस नामकारिकै कह्या जावैहै । और जो चैतन्यदेव इस जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कर्त्ता प्रभु अंतर्यामी है सोईही चैतन्यदेव तिन सर्वगुणोंका परित्यागकारिकै स्थित हुआ परमात्मा इस नामकारिकैभी कह्या जावैहै । यद्यपि उपद्रष्टाभी गुणोंका परित्याग करिकै तिन गुणोंका साक्षीरूपकारिकै स्थित होवैहै तथापि संघात उपहित तिसीही उपद्रष्टाकूं दूसरे संघातके प्रचारका द्रष्टापणा है नहीं और परमात्मादेव तौ सर्वसंघातोंके प्रचारोंका द्रष्टा है । यातैं सर्वतैं उत्कृष्ट होणेतैं यह परम आत्मा है । इस परमात्माकूं (उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥) इस श्लोककारिकै श्रीभगवान् आगे कथन करैगा । तहां महेश्वर परमात्मा यह दोनोंभी गुणसंगी ही हैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—इस देहविषे विद्यमान तथा सर्वगुणोंकूं आपणेविषे लयकारिकै स्थित ऐसा जो सर्वगुणोंतैं रहित अखंड एकरस अद्वितीय आत्मा है सो एक आत्मादेव ही तिस गुणसंगकारिकै उपद्रष्टा, अनुमंता, भर्त्ता, भोक्ता, महेश्वर, परमात्मा यह षट् प्रकारका होवैहै । यह ही इस क्षेत्रज्ञ आत्माका प्रभाव है । तहां अनुमंता, भर्त्ता, भोक्ता इन तीन रूपोंकारिकै तौ यह आत्मादेव बंधायमान होवैहै । और उपद्रष्टा, महेश्वर, परमात्मा इन तीन रूपोंकारिकै तौ यह आत्मादेव नित्यमुक्त एक अद्वितीयरूप ही होवैहै ॥ २२ ॥

तहां पूर्व (स च यो यत्प्रभावश्च) इस वचनका व्याख्यान कऱ्या अर्थात् क्षेत्रज्ञका स्वरूप तथा ताका प्रभाव वर्णन कऱ्या । अब (यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते) यह जो वचन पूर्व कथन कऱ्याथा ताका उपसंहार करैहैं—

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ॥
सर्वथा वर्त्तमानोपि न स भूयोभिजायते ॥ २३ ॥

(पदच्छेदः) यः । एवम् । वेत्ति । पुरुषम् । प्रकृतिम् । च । गुणैः । सह । सर्वथा । वर्त्तमानः । अपि । न । सः । भूयः । अभिजायते ॥ २३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जो अधिकारी पुरुष इस पूर्वउक्तप्रकारतैं क्षेत्रपुरुषकूं तथा आपणे विकारों सहित अविद्यारूप प्रकृतिकूं जानैहै सो पुरुष सर्वप्रकारतैं वर्त्तमानहुआ भी पुनः नहीं जन्मकूं प्राप्त होवैहै ॥ २३ ॥

भा॰ टी॰–हे अर्जुन ! जो अधिकारीपुरुष इस पूर्वउक्त प्रकारकरिकै क्षेत्रज्ञनामा पुरुषकूं जानैहै अर्थात् यह सर्वत्र व्यापक परमात्मादेव मैं हूं या प्रकारतैं जो पुरुष इस क्षेत्रज्ञ आत्माकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं साक्षात्कार करैहै। तथा जो पुरुष देहादि विकारों सहित अविद्यारूप प्रकृतिकूं जानैहै अर्थात् यह देहादिक विकारोंसहित अविद्यारूप प्रकृति आत्मज्ञानकरिकै बाधित होणेतैं मिथ्याभूत ही है ता आत्मज्ञानकरिकै हमारा अज्ञान तथा ता अज्ञानकार्यरूप प्रपंच दोनों निवृत्त होइगयेहैं इस प्रकारतैं जो पुरुष ता गुणसहित प्रकृतिकूं जानैहै, सो तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वथा वर्त्तमान हुआभी अर्थात् अतिप्रबल प्रारब्धकर्मके वशतैं देवराज इंद्रकी न्याईं शास्त्रविधिका उल्लंघन करिकै वर्त्तमानहुआभी पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं। अर्थात् इस विद्वान् पुरुषकूं जिस शरीरविषे आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुईहै तिस शरीरके पात हुएतैं अनंतर सो तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः द्वितीयदेहकूं ग्रहण करै नहीं। काहेतैं अविद्याकरिकै ही इस पुरुषकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होवैहै। ब्रह्मविद्याकरिकै ता अविद्यारूप कारणका जबी नाश होवैहै तबी ता अविद्याके जन्मादिक कार्योंकाभी अभाव होइजावैहै। यह वार्त्ता पूर्व बहुतवार कथन करिआयेहैं किंतु पुण्यपापकर्मोंकरिकै ही इस पुरुषकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होवैहै। ते पुण्यपापकर्म इस तत्त्ववेत्ता पुरुषके आत्मज्ञानकरिकै नाश होइजावैं हैं। या कारणतैं भी तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होवै नहीं। यह वार्त्ता ब्रह्मसूत्रोंविषे श्रीव्यासभगवान्नैंभी कथन करीहै। तहां सूत्र–(तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥) अर्थ यह–मैं ब्रह्मरूप हूं इस प्रकारके आत्मसाक्षात्कारके प्राप्तहुए इस तत्त्ववेत्ता पुरुषके पूर्वले पुण्यपापरूप सर्व संचितकर्म नाशकूं प्राप्त होवैहैं। और तिस आत्मज्ञानतैं उत्तर करेहुए कर्मोंका तिस तत्त्ववेत्तापुरुषकूं स्पर्शही नहीं होवैहै। यह वार्त्ता अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे कथन करीहै इति। इहां (सर्वथा वर्त्तमानोपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपिशब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिकन्याय सूचन करया। अतिप्रबल प्रारब्धकर्मके वशतैं देवराज इंद्रकी न्याईं शास्त्रविधिका उल्लंघन करिकै वर्त्तमान हुआभी यह तत्त्ववेत्ता पुरुष जबी पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहै तबी शास्त्रविधिका नहीं उल्लंघनकरिकै आपणे श्रेष्ठ आचारविषे वर्त्तमानहुआ सो तत्त्ववेत्ता पुरुष पुनः जन्मकूं नहीं प्राप्त होवैहै याकेविषे क्या कहणा है इति। तहां

देवराज इन्द्र शास्त्रविधिका उल्लंघन करिकै जैसे विश्वरूपनामा पुरोहितकूं तथा अनेक संन्यासियोंकूं हनन करताभया है सा सर्व वार्ता आत्मपुराणके द्वितीय अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करिआये हैं ॥ २३ ॥

तहां पूर्व कथन करे हुए फलसहित आत्मज्ञानविषे अधिकारीजनोंके भेद-करिकै साधनोंके विकल्पोंकूं अब श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

ध्यानेनात्मनि पश्यंति केचिदात्मानमात्मना ॥
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

(पदच्छेदः) ध्यानेन । आत्मनि । पश्यंति । केचित् । आत्मानम् । आत्मना । अन्ये । सांख्येन । योगेन । कर्मयोगेन । च । अपरे ॥ २४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! केईक अधिकारीजन तौ ध्यानकरिकैही आपणी बुद्धिविषे प्रत्यक्आत्माकूं ध्यानयुक्त अंतःकरणकरिकै साक्षात्कार करैं हैं और दूसरे अधिकारी जन तौ सांख्य योगकरिकै आत्माकूं साक्षात्कार करैं हैं तथा अन्य केईक अधिकारी जन तौ कर्मयोगकरिकै आत्माकूं साक्षात्कार करैं हैं ॥ २४ ॥

भा० टी०—तहां इस लोकविषे च्यारिप्रकारके अधिकारी जन होवैंहैं । तहां एक अधिकारी जन तौ उत्तम होवै है । और दूसरे अधिकारी जन मध्यम होवैं हैं । और तीसरे अधिकारी जन मंद होवैंहैं । और चौथे अधिकारी जन मंदतर होवैं हैं । तिन च्यारोंविषे प्रथम उत्तम अधिकारी जनोंके आत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं । (ध्यानेन इति) तहां देहादिक अनात्मपदार्थाकार विजातीयवृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित आत्माकार सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप जो आत्मचिंतन है जिस आत्मचिंतनकूं शास्त्रविषे निदिध्यासनशब्दकरिकै कथन कऱ्याहै तथा जो आत्मचिंतन श्रवणमननका फलरूप है । तथा जिस आत्मचिं-तनकरिकै देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप विपरीतभावनाकी निवृत्ति होवैहै ता निदिध्यासनरूप आत्मचिंतनका नाम ध्यान है । ऐसे ध्यानकरिकै ही केईक उत्तम अधिकारी जन आपणी बुद्धिविषे प्रत्यक्चेतनरूप आत्माकूं ता ध्यानयुक्त शुद्ध अंतःकरणकरिकै साक्षात्कार करैंहैं इति । अब मध्यम अधिकारी जनोंके आत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कथन करैंहैं (अन्ये सांख्येन योगेन इति) तहां पूर्वउक्त निदिध्यासनरूप ध्यानतैं पूर्व भावी ऐसा जो श्रवणमननरूप आत्मचिंतन

है जो आत्मचिंतन नित्य अनित्यवस्तुका विवेक, वैराग्य, शमदमादि षट् संपत, मुमुक्षुता इन च्यारि साधनोंतैं उत्तर कऱ्या जावैहै । तथा जो आत्मचिंतन यह त्रिगुणात्मक मायाके परिणामरूप सर्व अनात्मपदार्थ मिथ्याभूत हैं और तिन सर्व मिथ्यापदार्थोंका साक्षीरूप नित्य विभु निर्विकार सत्य समस्त जडपदाथाके संबंधतैं रहित ऐसा जो प्रयक् चेतन आत्मा है सो मैं हूं इस प्रकारके वेदांतवाक्योंके विचारकरिकै जन्य है। तथा जो आत्मचिंतन प्रमाणगत असंभावनाका तथा प्रमेयगत असंभावनाका निवर्त्तक है ता श्रवणमननरूप आत्मचिंतनका नाम सांख्ययोग है। ऐसे सांख्ययोगकरिकै केईक मध्यम अधिकारी जन आपणी बुद्धिविषे तिस प्रत्यक् आत्माकूं ता ध्यानकी उत्पत्तिद्वारा साक्षात्कार करैहैं इति। अब तीसरे मंद अधिकारी जनोंके आत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कहैहैं। (कर्मयोगेन चापरे इति) तहां फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल ईश्वरअर्पण बुद्धिकरिकै करेहुए ऐसे जे तिसतिस वर्णआश्रमके उचित अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम कर्मयोग है। ऐसे कर्मयोगकरिकै केईक मंद अधिकारी जन आपणी बुद्धिविषे तिस प्रत्यक् आत्माकूं अंतःकरणकी शुद्धि, श्रवण, मनन, ध्यान इन च्यारोंकी उत्पत्तिद्वारा साक्षात्कार करैं हैं ॥ २४ ॥

अब चौथे मंदतर अधिकारी जनोंके अत्मज्ञानके साधनकूं श्रीभगवान् कथन करैं हैं—

> **अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ॥**
> **तेपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥**

(पदच्छेदः) [illegible] । [illegible] । एवम् । अजानंतः । श्रुत्वा । अन्येभ्यः । उपासते । ते । अपि । च । अतितरंति । एव । मृत्युम् । श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! पुनः अन्यअधिकारी जन तौ पूर्वउक्तउपायकरिकै आत्माकूं नहीं जानतेहुए अन्यगुरुवोंतैं श्रवणकरिकै आत्माका चिंतन करैं हैं ते अधिकारीजन भी श्रवणपरायणहुए इस मृत्युयुक्त संसारकूं अवश्य अतिक्रमण

२५ ॥

भा० टी०–इहां (अन्ये तु) इस वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है सो तु शब्द पूर्व श्लोकविषे कथन करे हुए तीन प्रकारके अधिकारियोंतैं इन मंदतर अधिकारियोंविषे विलक्षणताके बोधन करणेवासतै है सा विलक्षणता दिखावैं हैं। हे अर्जुन ! पूर्वश्लोकविषे कथन करे जे ध्यान, सांख्ययोग, कर्मयोग यह तीन उपाय हैं तिन तीनों उपायोंविषे किसीभी उपायकरिकै आत्माकूं नहीं जानते हुए केईक मंदतर अधिकारी जन तौ अन्य परम कारुणिक आचार्योंतैं श्रवणकरिकै उपासना करैं हैं अर्थात् तुम इस आत्माकूं इस प्रकारतैं चिंतन करौ इस प्रकारतैं तिन कृपालु आचार्योंकरिकै उपदेश करे हुए तथा तिन गुरुवोंके वचनोंविषे अत्यंत श्रद्धावाले हुए तिसी प्रकारतैं आत्माकूं चिंतन करैं हैं। ते श्रुतिपरायण-पुरुषभी अर्थात् आपणी बुद्धिकरिकै ता विचारविषे असमर्थ हुएभी अत्यंत श्रद्धावान् ताकरिकै ता गुरुके उपदेश श्रवणमात्रपरायण हुएभी मृत्युयुक्त इस संसारकूं अवश्यकरिकै अतिक्रमण करैं हैं। तात्पर्य यह–ध्यानविषे प्रवृत्तिकी अतिशयतातैं तिन पुरुषोंकूं चित्तकी शुद्धिवासतै कर्मोंकीभी अपेक्षा है नहीं और वेदउक्त तत्त्वविषे दृढ निश्चयतैं तिन पुरुषोंकूं असंभावनाकी निवृत्तिवासतै श्रवणमननकीभी अपेक्षा है नहीं इति। इहां (तेपि) इस वचनविषे स्थित जो अपि यह शब्द है ता अपि-शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिकन्याय सूचन कऱ्या। जे आप विचारकरणे-विषे समर्थ नहीं हैं किंतु अन्य गुरुवोंतैं श्रवणमात्र करिकै आत्माका चिंतन करैं हैं ते पुरुषभी जबी इस मृत्युयुक्त संसारकूं अतिक्रमण करैं हैं तबी आप विचार-विषे समर्थ पुरुष इस मृत्युयुक्त संसारकूं अतिक्रमण करैं हैं याकेविषे क्या कहणा है इति। तहां आत्मज्ञानकरिकै जो कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति करणी है यहही ता मृत्युयुक्त संसारका अतिक्रमण है ॥ २५ ॥

तहां अधिष्ठानब्रह्मके आश्रित रहणेहारी तथा ता ब्रह्मकूं ही विषय करणेहारी ऐसी जा अनिर्वचनीय अविद्या है ता अविद्याकरिकै ही यह सर्व संसार उत्पन्न हुआ है। यातैं ता अधिष्ठानब्रह्मकूं विषय करणेहारी जा मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका आत्म-ज्ञानरूप ब्रह्मविद्या है ता ब्रह्मविद्याकरिकै ता अविद्याके निवृत्त हुए इस अधिकारी पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति बनि सकैहै। इस अर्थके निश्चय करावणेवासतै इस त्रयोदश अध्यायकी समाप्तिपर्यंत श्रीभगवान्नैं संसारका तथा ता संसारके निवर्तक आत्मज्ञानका दोनोंका विस्तारतैं निरूपण करीता है। तहां (कारणं गुणसंगोऽस्य

सदसद्योनिजन्मसु) यह जो वचन पूर्व कथन कर्याथा तिस वचनके अर्थकूंही अब श्रीभगवान् स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं—

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

(पदच्छेदः) यावत् । संजायते । किंचित् । सत्त्वम् । स्थावरजंगमम् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् । तत् । विद्धि । भरतर्षभ ॥ २६ ॥

(पदार्थः) हे भरतवंशविषे श्रेष्ठ अर्जुन ! जितना कोई स्थावरजंगमरूप वस्तु उत्पन्न होवै है तिससर्वकूं तूं क्षेत्रक्षेत्रज्ञदोनोंके संयोगतैं उत्पन्नहुआ जान ॥ २६ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! तीन लोकोंविषे कोई वस्तु स्थावररूप अथवा जंगमरूप उत्पन्न हुवा होवैहै तिन सर्व वस्तुवोंकूं तूं क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके संयोगतैं ही उत्पन्नहुआ जान । तहां अविद्या तथा ता अविद्याका कार्यरूप जितनाक जड अनिर्वचनीय भाव अभावरूप दृश्यप्रपंच है यह सर्व क्षेत्ररूप है । और ता क्षेत्रतैं विलक्षण तथा ता क्षेत्रका प्रकाशक तथा स्वप्रकाशपरमार्थ सत् तथा असंग उदासीन तथा सर्वधर्मोंतैं रहित ऐसा जो अद्वितीय चैतन्य है ताका नाम क्षेत्रज्ञ है । ऐसे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ दोनोंका जो मायाके वशतैं परस्पर अविवेक निमित्तक सत्य अनृत मिथुनीकरणरूप मिथ्या-तादात्म्य अध्यास है यह ही ता क्षेत्रक्षेत्रज्ञका संयोग है । ऐसे क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगतैंही यह स्थावरजंगमरूप सर्व कार्य उत्पन्न होवैं हैं । इस प्रकारतैं तूं निश्चय कर । या कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध भया । आपणे वास्तवस्वरूपके अज्ञानतैं ही यह संसार प्रतीत होवै है । ता स्वरूपके ज्ञानतैं यह संसार नाशकूंही प्राप्त होवै है । जैसे स्वप्ना-दिक मिथ्यापदार्थ अधिष्ठानवस्तुके यथार्थ स्वरूपके अज्ञानतैं ही प्रतीत होवैं हैं ता स्वरूपके ज्ञान हुएतैं निवृत्त होइ जावैं हैं ॥ २६ ॥

इस प्रकार अविद्यारूप संसारकूं कथन करिकै अब तिस संसारकी निवृत्ति करणेहारी ब्रह्मविद्याके कथन करणेवास्तै (य एवं वेत्ति पुरुषम्) इस पूर्वउक्त वचनके अर्थकूं श्रीभगवान् स्पष्टकरिकै निरूपण करैं हैं—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

(पदच्छेदः) समम् । सर्वेषु । भूतेषु । तिष्ठंतम् । परमेश्वरम् । विनश्यत्सु । अविनश्यंतम् । यः । पश्यति । सः । पश्यति ॥ २७ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! नाशवान् सर्व भूतोंविषे सम तथा निर्विकाररूपतैं स्थित तथा विनाशतैं रहित तथा परमेश्वररूप ऐसे आत्माकूं जो पुरुष देखैं है सोपुरुषही देखैहै ॥ २७ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! उत्पत्तिधर्मवाले जितनेक स्थावर जंगम प्राणीरूप भूत हैं कैसे हैं ते सर्वभूत—अनेक प्रकारके जन्मादिक परिणाम स्वभाववत्ताकरिकै तथा गुणप्रधानभावकी प्राप्तिकरिकै विषमस्वभाववाले हैं। इस कारणतैं ही ते भूत अत्यंत चंचल हैं अर्थात् क्षणक्षणविषे परिणामी हैं ता परिणामकूं न प्राप्त होइकै एक क्षणमात्रभी स्थित होणेकूं समर्थ हैं नहीं। इसी कारणतैं ही ते सर्वभूत परस्पर बाध्यबाधकभावकूं प्राप्त होवैं हैं। इसी कारणतैं ही ते सर्वभूत विनाशवान् हैं अर्थात् मायागंधर्वनगरादिकोंकी न्याईं दृष्टनष्टस्वभाववाले हैं। जो पदार्थ देखतेदेखते ही नष्ट होइजावैहै सो पदार्थ दृष्टनष्टस्वभाववाला कह्या जावैहै। ऐसे सर्व स्थावर-जंगमरूप भूतोंविषे आत्मादेव सम है अर्थात् सर्वत्र एकरूप है तथा सर्व देहोंविषे एक है। तथा जो आत्मादेव तिन सर्वभूतोंविषे जन्मादिक परिणामोंतैं रहितता-करिकै निर्विकाररूपतैं स्थित है। तथा जो आत्मादेव परमेश्वर है अर्थात देहादिक सर्व जडवर्गके प्रति सत्तास्फूर्तिका प्रदाता होणेतैं बाध्यबाधकभावतैं रहित है। तहां नाश होणेयोग्य वस्तुकूं बाध्य कहैं हैं । और नाशकरणेहारे वस्तुकूं बाधक कहैं हैं । ऐसे बाध्यबाधकभावतैं रहित है। तथा सर्वदोषोंतैं रहित है। पुनः कैसा है सो आत्मादेव—अविनाशी है अर्थात मायागंधर्वनगरादिकोंकी न्याईं दृष्टनष्टप्राय इस सर्व द्वैतके बाधहुएभी जो बाधकूं प्राप्त होता नहीं । तहां श्रुति—(अविनाशी वा अरेऽयमात्मा) अर्थ यह—हे मैत्रेयि ! यह आत्मादेव नाशतैं रहित है इति । इस रीतिसैं सर्वप्रकारकरिकै इस जडप्रपंचतैं विलक्षण जो प्रत्यक् आत्मा है तिस प्रत्यक्आत्माकूं जो अधिकारी जन वेदांतशास्त्ररूप चक्षुकरिकै सर्व जडवर्गतैं भिन्नकरिकै देखैहै सोईही अधिकारी जन आत्माकूं देखैहै । जैसे जाग्रत्के बोधकरिकै स्वप्नभ्रमकूं निवृत्त करताहुआ षही सम्यक् देखे है । और जो पुरुष इस प्रकारतैं आत्माकूं नहीं देखै है सो अज्ञानी पुरुष तौ स्वप्नदर्शी पुरुषकी न्याईं भ्रांतिकरिकै विपरीत देखताहुआभी नहींही देखैहै। काहेतैं जो

जो भ्रम होवैहै सो सो भ्रम अदर्शनरूप ही होवैहै । भ्रमविषे दर्शनरूपता संभवती नहीं। जैसे रज्जुकूं सर्परूपकरिकै देखताहुआभी भ्रांतपुरुष यह देखता है या प्रकारतैं कह्या जावै नहीं किंतु यह नहीं देखता है या प्रकारतैं ही कह्या जावैहै । काहेतैं ता कल्पितसर्पका जो दर्शन है सो दर्शन ता रज्जुका अदर्शनरूप ही है। ता रज्जुके अदर्शनतैं सो सर्पका दर्शन भिन्न नहीं है यातैं ता सर्पकूं देखताहुआभी सो भ्रांतपुरुष नहींही देखैहै यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । इस प्रकारके सर्व उपाधियोंतैं रहित शुद्ध आत्माके दर्शनतैं सा आत्माका अदर्शनरूप अविद्या निवृत्त होइ जावैहै ता अविद्यारूप कारणकी निवृत्तितैं अनंतर ताके कार्यरूप संसारकीभी निवृत्ति होइजावैहै । ऐसा आत्मज्ञान इस अधिकारी पुरुषनैं अवश्यकरिकै संपादन करणा इति । तहां इस श्लोकविषे यद्यपि श्रीभगवान्नैं (आत्मानम्) या प्रकारका आत्मारूप विशेष्यका वाचक पद कथन कर्‍या नहीं तथापि जहां विशेषणवाचक पद होवैहै तहां विशेष्यवाच पदकी अर्थतैं ही प्राप्ति होवैहै यह शास्त्रवेत्ता पुरुषोंका नियम है। ते विशेषणवाचक पद इहांभी (समं तिष्ठंतं परमेश्वरम्। अविनश्यन्तम्) यह विद्यमान हैं। यातैं आत्मारूप विशेष्यका लाभ इहां अर्थतैं ही प्राप्त होवैहै । अथवा (परमेश्वरम्) यह पद ही ता आत्मारूप विशेष्यका वाचक जानणा ॥ २७ ॥

अब अधिकारी जनोंकी ता आत्मदर्शनविषे रुचि उत्पन्न करणेवासतै इस पूर्वश्लोकउक्त आत्मदर्शनकी श्रीभगवान् फलकरिकै स्तुति करैंहैं—

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ॥
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥

(पदच्छेदः) समम् । पश्यन् । हि । सर्वत्र । समवस्थितम् । ईश्वरम् । न । हिनस्ति । आत्मना । आत्मानम् । ततः । याति । पराम् । गतिम् ॥ २८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! सर्वभूतोंविषे सम तथा समवस्थित तथा ईश्वररूप ऐसे आत्माकूं देखताहुआ यह विद्वान् पुरुष जिसकारणतैं आत्माकरिकै आत्माकूं नहीं हननकरै है तिसकारणतैं परम गतिकूं प्राप्त होवै है ॥ २८ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! स्थावरजंगमरूप सर्व भूतोंविषे जो आत्मा सम है अर्थात् सर्वत्र एकरूप है तथा जो आत्मा समवस्थित है अर्थात् जन्मतैं आदिलैके

विनाशपर्यंत सर्वभावविकारोंतैं रहित हुआ स्थित है। तथा जो आत्मा ईश्वर है अर्थात् सर्वप्राणियोंके प्रवृत्तिका कारण है। इस प्रकारके पूर्वउक्त सर्व विशेषणोंकरिकै विशिष्ट जो आत्मा है तिस आत्माकूं देखताहुआ अर्थात् इस प्रकारका आत्मादेव मैं हूं या प्रकारतैं शास्त्रदृष्टिकरिकै तिस आत्माकूं साक्षात्कार करताहुआ यह विद्वान् पुरुष जिस कारणतैं आपणे आत्माकरिकै आपणे आत्माकूं हनन करता नहीं तिस कारणतैं सो विद्वान् पुरुष परम गतिकूं प्राप्त होवै है। और इस लोकविषे जितनेक अज्ञानी जन हैं ते सर्वही अज्ञानी जन परमार्थतैं सत्रूप तथा एक अद्वितीयरूप तथा अकर्त्ता अभोक्तारूप तथा परमानंदरूप ऐसे आत्माकूं अस्ति भाति रूप वस्तुविषेभी नास्ति न भाति इस प्रकारकी प्रतीति करावणेविषे समर्थ ऐसी अविद्याकरिकै आपही तिरस्कार करतेहुए न हुए जैसा करैंहैं। यातैं ते सर्व अज्ञानी जन ता आत्माकूं हनन ही करैं हैं। अथवा अविद्याकरिकै आत्मत्वरूपकरिकै ग्रहण कऱ्या जो देहइंद्रियादिकोंका संघातरूप आत्मा है तिस संघातरूप पुरातन आत्माकूं हननकरिकै पुण्यपापकर्मके वशतैं पुनः नवीन संघातरूप आत्माकूं ग्रहण करैं हैं। या कारणतैंभी ते अज्ञानी जन ता आत्माकूं हननही करैंहैं। यातैं दोनों प्रकारतैं ते सर्व अज्ञानी जन आत्महत्यारे ही हैं। ऐसे आत्महत्यारे अज्ञानी जनोंकूं लक्ष्यकरिकै ही यह शकुंतलाका वचनरूप स्मृति प्रवृत्त हुई है। तहां श्लोक-(किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा। योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ॥) अर्थ यह-जो पुरुष सत, चित, आनंद, विभु आत्माकूं असत, जड, दुःख, परिच्छिन्नरूप मानैहै तिस आत्माके अपहरण करणेहारे चौर पुरुषनैं कौन पाप नहीं कऱ्याहै किंतु तिस पुरुषनैं सर्व पाप करेहैं इति। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति-(असुर्या नाम ते लोका अंधेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छंति ये के चात्महनो जनाः ॥) अर्थ यह-दंभदर्पादिक आसुरी संपदावाले पुरुषोंकूं प्राप्त होणेहारे तथा अंधतमकरिकै आवृत ऐसे जे नरकादिक लोक हैं तिन लोकोंकूं ते पुरुष मरिकै प्राप्त होवैंहैं जे पुरुष आत्महन हैं। तहां देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे जे पुरुष आत्मअभिमान करैंहैं तिन पुरुषोंका नाम आत्महन है इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जो पुरुष आत्माकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं साक्षात्कार करैंहै सो पुरुष देहादिक अनात्मपदार्थोंविषे आत्मअभिमानकूं शुद्धआत्माके दर्शनकरिकै नाश

करैहै । यातैं आपणे वास्तवस्वरूपके लाभतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष आपणे आपणे आत्माकूं आपणे आत्माकरिकै नाश करता नहीं । इसी कारणतैं ही सो तत्त्ववेत्ता पुरुष परा गतिकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिपूर्वक परमानन्दकी प्राप्तिरूप मुक्तिकूं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष प्राप्त होवैहै ॥ २८ ॥

हे भगवन् ! शुभ अशुभ कर्मोंकूं करणेहारे देहदेहविषे भिन्नभिन्न ही आत्मा हैं । तथा तिसतिस सुखदुःखादिरूप विचित्रफलके भोक्ता होणेतैं ते आत्मा विषमस्वभाववालेभी हैं । यातैं सर्वभूतोंविषे स्थित एक आत्माकूं सम देखताहुआ यह पुरुष आपणे आत्माकरिकै आपणे आत्माकूं नहीं हनन करैहै यह आपका वचन कैसे संगत होवैगा ? ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहैहैं—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ॥
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

(पदच्छेदः) प्रकृत्या । एव । च । कर्माणि । क्रियमाणानि । सर्वशः । यः । पश्यति । तथा । आत्मानम् । अकर्त्तारम् । सः । पश्यति ॥२९॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! मायारूपप्रकृतिनैंही सर्वप्रकारकरिकै सर्वकर्म करीते हैं इसप्रकार जो विवेकीपुरुष देखताहै तथा क्षेत्रज्ञआत्माकूं जो अकर्त्ता देखैहै सोईही पुरुष सम्यक् देखता है ॥ २९ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! शरीरकरिकै तथा मनकरिकै तथा वाणीकरिकै आरंभ करणे योग्य जे लौकिक वैदिककर्म हैं ते सर्व कर्म सर्वप्रकारकरिकै प्रकृतिनैंही करीते हैं अर्थात् देहइंद्रियादिरूप संघातके आकारपरिणामकूं प्राप्त हुई तथा सर्वविकारोंका कारणरूप ऐसी जा त्रिगुणात्मक भगवत्की माया है तिस मायारूप प्रकृतिनैं ही ते सर्व कर्म करीते हैं । सर्व विकारोंतैं शून्य क्षेत्रज्ञनामा पुरुषनैं ते कर्म करीते नहीं । इस प्रकारतैं जो विवेकी पुरुष शास्त्ररूप चक्षुकरिकै देखै है । इस प्रकार तिस प्रकृतिरूप क्षेत्रनैं करेहुए जे कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंविषे जो पुरुष क्षेत्रज्ञ आत्माकूं अकर्त्तारूप देखैहै तथा सर्व उपाधियोंतैं रहित देखैहै तथा असंग देखै है तथा सर्वत्र एक देखैहै तथा सर्वत्र सम देखैहै सो पुरुषही परमार्थदर्शी होणेतैं देखता है । ऐसे आत्माके स्वरूपकूं न जानणेहारे सर्व अज्ञानी जन अंधही हैं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जन्ममरणादिक विकारवाले क्षेत्रका तिसतिस विचित्र कर्मका कर्त्ता-

पणेकारिकै देहदेहविषे भेद हुएभी तथा विषमता हुएभी निर्विशेष अकर्त्ता आत्माके भेदविषे तथा विषमताविषे किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है । जैसे घटमठादिक सर्व उपाधियोंतैं रहित आकाशके भेदविषे तथा विषमताविषे किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है तैसे निर्विशेष अकर्त्ता आत्माके भेदविषे तथा विषमताविषे किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है । यह वार्त्ता पूर्व अनेकवार प्रतिपादन करि आये हैं ॥ २९ ॥

तहां पूर्व आपादतैं क्षेत्रके भेददर्शनका कथन करिकै क्षेत्रज्ञके भेददर्शनका निषेध कऱ्या । अब श्रीभगवान् तिस क्षेत्रके भेददर्शनकूंभी मायिकत्वरूप हेतुकारिकै निषेध करैं हैं-

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

(पदच्छेदः) यदा । भूतपृथग्भावम् । एकस्थम् । अनुपश्यति । ततः । एव । च । विस्तारम् । ब्रह्म । संपद्यते । तदा ॥ ३० ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! यह अधिकारीपुरुष जिसकालविषे भूतोंके पृथक्भावकूं एकआत्माविषे स्थित देखताहै तथा तिस एकआत्मातैं ही तिन भूतोंके विस्तारकूं देखताहै तिस कालविषे एकब्रह्मही होवेहै ॥ ३० ॥

भा॰ टी॰-हे अर्जुन ! यह अधिकारी पुरुष जिस कालविषे स्थावर जंगमरूप सर्वजडभूतोंके परस्पर भिन्नत्वरूप पृथक्भावकूं एकविषे स्थित देखता है अर्थात् एकही सत्रूप अधिष्ठान आत्माविषे तिस भूतोंके पृथक्भावकूं कल्पित देखता है । तात्पर्य यह-जो जो वस्तु कल्पित होवै है सो सो कल्पितवस्तु अधिष्ठानतैं भिन्न होवै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्पदंडादिक तिस रज्जुरूप अधिष्ठानतैं भिन्न होवैं नहीं तथा जैसे कनकविषे कल्पित कुंडलकंकणादिक भूषण तिस कनकतैं भिन्न होवैं नहीं । तैसे सत्रूप आत्माविषे कल्पित यह सर्व भूतोंका पृथक्भावभी तिस अधिष्ठान आत्मातैं भिन्न है नहीं । इस प्रकार गुरुशास्त्रके उपदेशतैं अनंतर जो पुरुष आपणे स्वरूपका विचार करै है अर्थात् यह सर्व जगत् आत्मारूपही है आत्मातैं भिन्न सत्तावाला यह जगत् नहीं है इस प्रकारतैं जो पुरुष विचारकारिकै देखै है । इस प्रकार तिस अधिष्ठान आत्मातैं सर्व भूतोंके अपृथक्हुएभी जो पुरुष तिस एक आत्मातैं ही मायाके वशतैं तिन सर्वभूतोंके विस्तारकूं तथा पृथक्भावकूं स्वप्नमाया-

की न्याई विचार करिकै देखैहै तिस कालविषे सजातीयभेद दर्शनके अभावतैं सर्व अनर्थोंतैं शून्य एकब्रह्मरूपही होवैहै। यह वार्त्ता श्रुतिविषेभी कथन करीहै। तहां श्रुति–(यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।) अर्थ यह–जिस ज्ञानअवस्थाविषे इस विद्वान् पुरुषकूं स्थावर जंगमरूप सर्वभूत आपणा आत्मारूप ही होतेभयेहैं तिस ज्ञानअवस्थाविषे आत्माके एक अद्वितीयभावकूं देखणेहारे तिस तत्त्ववेत्तापुरुषकूं शोक तथा मोह कदाचित्भी होवै नहीं इति। तहां (प्रकृत्यैव च कर्माणि) इस पूर्वश्लोकविषे तौ श्रीभगवान्नैं क्षेत्रज्ञ आत्माके भेदका निषेध कऱ्याथा। और (यदा भूतपृथग्भावम्) इस श्लोकविषे तौ श्रीभगवान्नैं क्षेत्ररूप आत्मपदार्थोंके भेदकाभी निषेध कऱ्या है इतनी इन दोनों श्लोकोंविषे विशेषता है ॥ ३० ॥

हे भगवन् ! आत्माकूं स्वभावतैं अकर्त्तापणा हुएभी शरीरका संबंधरूप उपाधिकरिकै कर्त्तापणा होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाकूं निवृत्त करतेहुए श्रीभगवान् (यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ।) इस पूर्वउक्त वचनके अर्थकूं अब स्पष्ट करिकै वर्णन करैं हैं–

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ॥
शरीरस्थोपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

(पदच्छेदः) अनादित्वात् । निर्गुणत्वात् । परमात्मा । अयम् । अव्ययः । शरीरस्थः । अपि । कौंतेय । न । करोति । न । लिप्यते ॥ ३१ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! अनादि होणेतैं तथा निर्गुण होणेतैं यह परमात्मा अव्यय है ऐसा आत्मा इसशरीरविषे स्थित हुआ भी नहीं करै है नहीं लिपायमान होवै है ॥ ३१ ॥

भा० टी०–हे अर्जुन ! परमेश्वरतैं अभिन्न होणेतैं परमात्मारूप जो यह अपरोक्ष प्रत्यक् आत्मा है सो यह आत्मा अव्यय है। तहां जन्ममरणादिक विकारोंका नाम व्यय है ता विकाररूप व्ययकूं जो नहीं प्राप्त होवैहै ताका नाम अव्यय है। अर्थात् जन्ममरणादिक सर्व विकारोंतैं रहित वस्तुका नाम अव्यय है। सो व्यय दो प्रकारका होवै है। एक तौ धर्मोंके स्वरूपकूं ही उत्पत्तिवाला होणेतैं व्यय होवैहै। और दूसरा ता धर्मोंके स्वरूपकी अनुत्पत्ति हुएभी ताके धर्मोंकूं

उत्पत्तिवाला होणेतैं व्यय होवै है । तहां श्रीभगवान् आत्माविषे प्रथम व्ययका निषेध करैं हैं (अनादित्वात् इति) तहां पूर्व असत्त्वअवस्थाका नाम आदि है जैसे घटादिक पदार्थोंकी आपणी उत्पत्तितैं पूर्व जा असत्त्वअवस्था है सा असत्त्वअवस्थाही तिन घटादिकोंकी आदि है सा आदि जिस वस्तुकी नहीं होवै ता वस्तुका नाम अनादि है । ऐसा अनादि सर्वकालविषे सत्य आत्मा है । ऐसा अनादि होणेतैंही यह आत्मादेव कारणके अभाववाला होणेतैं जन्मकूं प्राप्त होवै नहीं । काहेतैं जो वस्तु तिस आदिवाला होवैहै तिस वस्तुका ही जन्म होवैहै । जैसे घटादिक पदार्थ तिस आदिवाले होणेतैं जन्मकूं प्राप्त होवैंहैं । और आत्माकी सा आदि है नहीं । यातैं आत्माका जन्मभी होवै नहीं । और ता जन्मतैं पश्चात् ही मरणपर्यंत सर्व भावविकार प्राप्त होवैं हैं । ता जन्मरूप आदिविकारके अभाव हुए इस आत्मादेवकूं ते मरणपर्यंत सर्व भावविकारभी प्राप्त होवैं नहीं । यातैं यह आत्मादेव आपणे स्वरूपतैं तिस जन्मादिविकाररूप व्ययकूं प्राप्त होवै नहीं । तहां श्रुति-(न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः) अर्थ यह- तिस आत्मादेवका कोईभी उत्पन्न करणेहारा कारण नहीं है तथा तिस आत्मादेवका कोईभी अधिष्ठाता नहीं है इति । अब दूसरे व्ययका निषेध करैं हैं (निर्गुणत्वात् इति ।) हे अर्जुन ! यह आत्मादेव सर्वधर्मोंतैं रहित होणेतैंभी अव्यय है । काहेतैं इस लोकविषे जितनेक रूपरसादिक धर्म हैं तिन सर्वधर्मोंका आपणे धर्मीके साथि तादात्म्यही होवैहै यातैं ते रूपादिक धर्म आपणे धर्मीकूं विकारभावकी नहीं प्राप्तिकरिकै उत्पन्न वा नाश होवैं नहीं किंतु आपणे धर्मीकूं विकारभावकी प्राप्तिकरिकै ही ते धर्म उत्पन्न होवैंहैं तथा नष्ट होवैंहैं । और यह आत्मादेव तौ तिन सर्व धर्मोंतैं रहित है । यातैं यह आत्मादेव तिन धर्मोंके व्ययकरिकैभी व्ययकूं प्राप्त होवै नहीं । तहां श्रुति-(अविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा ।) अर्थ यह-हे मैत्रेयि ! यह आत्मादेव स्वरूपतैंभी नाशादिकविकारोंतैं रहित है । तथा धर्मोंके नाशादिक विकारोंकरिकैभी नाशादिक विकारोंकूं प्राप्त होवै नहीं । जिस कारणतैं यह आत्मादेव सर्वधर्मोंतैं रहित है इति । हे अर्जुन ! जिस कारणतैं यह आत्मादेव जन्म, अस्ति, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश इन षट्भावविकारोंतैं रहित इस कारणतैं यह आत्मादेव आध्यासिक संबंधकरिकै इस शरीरविषे स्थित हुआभी तिस शरीरके प्रवृत्तहुएभी यह आत्मादेव किंचित्मात्रभी करता नहीं ।

जैसे आध्यासिक संबंधकरिकै जलविषे स्थित हुआभी सूर्य ता जलके चलायमान हुएभी चलायमान होवै नहीं। तैसे आध्यासिक संबंधकरिकै इस शरीरविषे स्थित हुआभी यह आत्मादेव ता शरीरके प्रवृत्त हुएभी किंचितमात्रभी करता नहीं। हे अर्जुन ! जिस कारणतैं यह आत्मादेव किसीभी लौकिक वैदिक कर्मकूं करता नहीं तिस कारणतैं यह आत्मादेव किसीभी कर्मके फलकरिकै लिपायमान होवै नहीं। काहेतैं इस लोकविषे जो जो पुरुष जिसजिस शुभ अशुभ कर्मकूं करैहै सोसो पुरुष ही तिसतिस कर्मके सुखदुःखरूप फलकरिकै लिपायमान होवै है। तिसतिस कर्मकूं नहीं करताहुआ पुरुष तिसतिस कर्मके फलकरिकै लिपायमान होवै नहीं। और यह आत्माभी कर्मकूं करता नहीं। यातैं यह आत्मादेव किसीभी कर्मके फलकरिकै लिपायमान होवै नहीं। तहां (इच्छा द्वेषः सुखं दुःखम्) इत्यादिक वचनकरिकै तिन इच्छाद्वेषादिकोंविषे क्षेत्रकाही धर्मपणा कथन कऱ्या है। और (प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि) इस वचनकरिकै सर्व कर्मोंविषे मायाकाही कार्यपणा कथन कऱ्या है। असंग आत्माका कोई धर्म नहीं है तथा कोई कार्य नहीं है। या कारणतैं ही परमार्थदर्शी विद्वान् पुरुषोंकूं सर्वकर्मोंके अधिकारका अभाव पूर्व कथन करिआयेहैं। इतने करिकै आत्माविषे सर्वधर्मोंतैं रहितपणा कथन करिकै स्वगतभेदभी निवृत्त करे। और (प्रकृत्यैव च कर्माणि) इस श्लोकविषे तौ पूर्व सजातीय भेद निवृत्त कऱ्याथा। और (यदा भूतपृथग्भावम्) इस श्लोकविषे तौ पूर्व विजातीयभेद निवृत्त कऱ्याथा। और (अनादित्वान्निर्गुणत्वात्) इस श्लोकविषे तौ स्वगतभेद निवृत्त कऱ्या है। यातैं सजातीयभेद, विजातीयभेद, स्वगतभेद इन तीन भेदोंतैं रहित होणेतैं अद्वितीय ब्रह्मरूप ही यह आत्मा है यह अर्थ सिद्ध भया इति। तहां समान जातिवाले पदार्थोंका जो परस्पर भेद है ताका नाम सजातीयभेद है जैसे एकवृक्षविषे दूसरे वृक्षका भेद है। और विरुद्धजातिवाले पदार्थोंका जो परस्पर भेद है ताका नाम विजातीय भेद है। जैसे तिसी वृक्षविषे पाषाणका भेद है। और एकही वस्तुविषे आपणे अवयवोंकरिकै जो भेद है ताका नाम स्वगतभेद है। जैसे तिस एकही वृक्षविषे शाखा, पत्र, पुष्प, फल इत्यादिक अवयवोंकरिकै भेद है। और (एको देवः सर्वभूतेषु गूढः।) यह श्रुति सर्व भूतोंविषे एकही आत्मा कहै है। ता आत्माके समानजातिवाला दूसरा कोई आत्मा है नहीं। यातैं आत्माविषे सजा-

तीयभेद संभवै नहीं। और (अतोऽन्यदार्त्तम्) यह श्रुति आत्मातें भिन्न सर्व जगत्कूं कल्पित कहैहै । और कल्पितवस्तुकी अधिष्ठानतें भिन्न सत्ता होवै नहीं । यातें आत्माविषे विजातीयभेदभी संभवै नहीं। और (निष्कलम्, निर्गुणम्, निष्क्रियम्, शांतम्) यह श्रुति आत्माकूं निरवयव निर्गुण निष्क्रिय कहै है। यातें आत्माविषे स्वगतभेदभी संभवै नहीं॥ ३१ ॥

तहां शरीरविषे स्थित हुआभी यह आत्मादेव आप असंग होणेतैं तिस शरीरके कर्मोंकरिकै लिपायमान होवा नहीं यह अर्थ पूर्वश्लोकविषे कथन कऱ्या । अब श्रीभगवान् तिस पूर्वउक्त अर्थविषे दृष्टांतकूं कथन करैं हैं-

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

(पदच्छेदः) यथा। सर्वगतम् । सौक्ष्म्यात् । आकाशम् । न। उपलिप्यते । सर्वत्र । अवस्थितः । देहे । तथा । आत्मा । न। उपलिप्यते ॥ ३२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे सर्वत्र व्यापकभी आकाश असंगस्वभाववाला होणेतैं नहीं लिपायमान होवै है तैसे सर्व देहोंविषे स्थितहुआभी यह आत्मादेव असंगस्वभाववाला होणेतैं नहीं लिपायमान होवैहै ॥ ३२ ॥

भा० टी०-हे अर्जुन ! जैसे घटमठतैं आदिलैके जितनेक दुष्ट तथा अदुष्ट मूर्त द्रव्य हैं तिन सर्व द्रव्योंविषे अंतर तथा बाह्य व्याप्यकरिकै वर्त्तमान हुआभी यह आकाश सूक्ष्म होणेतैं अर्थात् असंगस्वभाववाला होणेतैं तिन मूर्त्तद्रव्योंके सुगंध,दुर्गंध, वर्षा, आतप, अग्नि, धूम, रज, पंक इत्यादिक गुणदोषोंकरिकै लिपायमान होता नहीं। तैसे देव, मनुष्य, पशु इत्यादिक उच्च नीच सर्व देहोंविषे अंतर बाह्य सर्वत्र व्याप्यकरिकै स्थित हुआभी यह आत्मादेव असंग स्वभाववाला होणेतैं तिन देहादिकृत शुभ अशुभ कर्मोंकरिकै लिपायमान होता नहीं । तहां श्रुति-(असंगो न हि सज्जते) अर्थ यह-यह आत्मादेव असंग होणेतैं किसीभी वस्तुके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै नहीं ॥ ३२ ॥

किंवा इस आत्मादेवविषे केवल असंगतारूप हेतुतैं ही अलेपता नहीं है किंतु प्रकाशकत्वरूप हेतुतैंभी इस आत्मादेवविषे सा अलेपता है। इस अर्थकूं अब श्रीभगवान् दृष्टांतकरिकै कथन करैहैं-

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

(पदच्छेदः) यथा । प्रकाशयति । एकः । कृत्स्नम् । लोकम् । इमम् । रविः । क्षेत्रम् । क्षेत्री । तथा । कृत्स्नम् । प्रकाशयति । भारत ॥ ३३ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जैसे एकही सूर्य इस सर्व लोककूं प्रकाश करैहै तेसे क्षेत्रज्ञनामा आत्मा इस सर्व क्षेत्रकूं प्रकाश करैहै ॥ ३३ ॥

भा०टी०—हे अर्जुन ! जैसे एकही सूर्य इस रूपवान् देहादिक सर्व वस्तुवोंकूं प्रकाश करै है परंतु तिन प्रकाश्यरूप देहादिक वस्तुवोंके धर्मोंकारिकै सो सूर्य लिपायमान होता नहीं । तथा तिन प्रकाशरूप देहादिक वस्तुवोंके भेदकारिकै सो सूर्य भेदकूंभी प्राप्त होता नहीं । तैसे सो एक ही क्षेत्रज्ञ आत्मा पूर्वउक्त सर्व क्षेत्रकूं प्रकाश करै है । इस कारणतैंही सो क्षेत्रज्ञ आत्मा तिस प्रकाश्यरूप क्षेत्रके धर्मों कारिकै लिपायमान होवै नहीं । तथा तिस प्रकाश्यरूप क्षेत्रके भेदकारिकै सो क्षेत्रज्ञ आत्मा भेदकूं प्राप्त होवै नहीं । इतने कहणेकारिकै श्रीभगवान्नैं यह अनुमान सूचन कऱ्या । क्षेत्रज्ञ आत्मा क्षेत्रके धर्मोंकारिकै लिपायमान होवै नहीं । तथा ता क्षेत्रज्ञके भेदकारिकै भेदकूं प्राप्त होवै नहीं तिस क्षेत्रका प्रकाश होणेतैं । जो जिस वस्तुका प्रकाशक होवैहै सो तिस प्रकाश्य वस्तुके धर्मोंकारिकै लिपायमान होवै नहीं । तथा तिस प्रकाश्य वस्तुभेदकारिकैभी भेदकूं प्राप्त होवै नहीं जैसे सूर्य है इति । किंवा क्षेत्रज्ञ आत्मा क्षेत्रके धर्मोंकारिकै लिपायमान नहीं होवै है यह वार्त्ता केवल अनुमान प्रमाणकारिकै ही सिद्ध नहीं है किंतु साक्षात् श्रुति भगवतीभी इस अर्थकूं कथन करै है । तहां श्रुति—(सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥) अर्थ यह—जैसे सर्वलोकका चक्षुरूप सूर्य चक्षुके विषयरूप बाह्यपदार्थोंके दोषोंकारिकै लिपायमान होवै नहीं तैसे सर्व पदार्थोंका प्रकाश करणेहारा तथा देहादिक संघाततैं भिन्न ऐसा जो सर्वभूतोंका अंतर आत्मा है सो एक अद्वितीय आत्माभी प्रकाश्यरूप देहादिकोंके दुःखोंकारिकै लिपायमान होवै नहीं ३३॥

अब श्रीभगवान् इस त्रयोदश अध्यायके अर्थका फलसहित उपसंहार करैहैं—

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(पदच्छेदः) क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः । एवम् । अंतरम् । ज्ञानचक्षुषा । भूतप्रकृतिमोक्षम् । च । ये । विदुः । यांति । ते । परम् ॥ ३४ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन ! जे पुरुष क्षेत्रक्षेत्रज्ञदोनोंके विलक्षणताकूं पूर्वउक्तप्रकारतैं ज्ञानरूपचक्षुकरिकै जानतेहैं तथा भूतोंके कारणरूप मायाके अत्यंताभावकूं जानते हैं ते अधिकारीपुरुष कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होवैं हैं ॥ ३४ ॥

भा० टी०—हे अर्जुन ! पूर्व कथन कऱ्या जो क्षेत्र है तथा क्षेत्रज्ञ है तिन दोनोंके विलक्षणताकूं जे पुरुष ज्ञानरूप चक्षुकरिकै जानते हैं अर्थात् यह क्षेत्र तौ जड है तथा कर्त्ता है तथा विकारी है तथा परिच्छन्न है । और यह क्षेत्रज्ञ आत्मा तौ चेतन है तथा अकर्त्ता है तथा अविकारी है तथा अपरिच्छिन्न है । इस प्रकारकी दोनोंकी विलक्षणताकूं जे अधिकारी पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशजन्य आत्मज्ञानरूप चक्षुकरिकै जानते हैं । तथा जे अधिकारी पुरुष भूतप्रकृतिके मोक्षकूं जानते हैं । तहां आकाशादिक सर्व भूतोंका कारणरूप जा माया, अविद्या, अज्ञान इत्यादिक नामोंवाली परमेश्वरकी शक्ति है जिस मायाशक्तिकूं (मायां तु प्रकृतिं विद्यात्) इत्यादिक श्रुतियां कथन करै हैं । ता मायाशक्तिका नाम भूतप्रकृति है । ता भूतप्रकृतिकी जा मैं ब्रह्मरूप हूं याप्रकारकी परमार्थभूत आत्मविद्याकरिकै आत्यंतिक निवृत्ति है ताका नाम भूतप्रकृतिमोक्ष है । ऐसे भूतप्रकृतिमोक्षकूंभी जे अधिकारी पुरुष तिस ज्ञानरूप चक्षुकरिकै जानतेहैं ते अधिकारी जनही परमार्थ आत्मवस्तुस्वरूप कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होवैंहैं । ऐसी कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होइकै ते अधिकारी जन पुनः देहकूं ग्रहण करैं नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जो पुरुष पूर्वउक्त अमानित्वादिक साधनोंकरिकै संपन्न है तथा पूर्वउक्त क्षेत्रक्षेत्रज्ञ दोनोंके विलक्षणता ज्ञानवाला है तिस अधिकारी पुरुषकूंही सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करिकै परम पुरुषार्थकी प्राप्ति

